1. 00 छायावदोत्तर हिंदी कविता: संदर्भ एवं प्रकृति

इकाई की रुपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 छायावादोत्तर शब्द का अर्थ और व्यंग्य
1.4 छायावदोत्तर कविता के विभिन्न चरण
क- स्वतंत्रता पूर्व
1.7.1 राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता
1.7.2 हालावाद एवं व्यक्ति स्वछंदतावाद
1.7.3 प्रगतिवाद
ख- स्वतंत्रता पश्चात
1.7.4 प्रयोगवाद
1.5 छायावादोत्तर कविता: अन्य सन्दर्भ
1.6 छायावादोत्तर कविता की उपलब्धियां
1.8 सारांश
1.9 शब्दावली
1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.12 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

छायावादोत्तर शब्द अपने आप में एक बड़ा पद है, क्योंकि इस शब्द से यह बोध होता है कि छायावाद के बाद की कविता | यानी छायावाद के बाद की कविता का स्वरुप व उसकी प्रवृत्तियां, काव्य आंदोलन व उसकी उपलब्धियां| इस ढंग से देखें तो छायावाद के बाद से लेकर अब तक की सम्पूर्ण कविता इसके घेरे में आ जाती है| किंतु छायावादोत्तर शब्द प्राय: स्वतंत्रता से पूर्व की हिंदी कविता के लिए ज्यादा रूढ़ है या प्रयुक्त है| इस इकाई में हम परिचयात्मक रूप में छायावाद के बाद की कविता का परिचय प्राप्त करेंगे तथा उसके ठीक बाद की कविता व काव्यांदोलन को विस्तारपूर्वक समझने का प्रयास करेंगे| इस कारण ही हमने इस इकाई को क एवं ख के अंतर्गत विभाजित किया है|

छायावाद कविता आंदोलन, हिंदी कविता के लिए एक सन्धि बिंदु है| छायावाद से पूर्व की कविता का तेवर अलग है व उसके बाद की कविता का तेवर अलग है| छायावाद से पूर्व की कविता पर भारतीय धर्म, दर्श न व विचार का गहरा प्रभाव है और उसके बाद की कविता पर पश्चिमी विचार सरणि का प्रभाव स्पष्ट है| छायावाद में भारतीय धर्म-दर्शन व पश्चिमी वैचारिकी, दोनों की गहरी गूँज है| यही कारण है कि छायावादी कविता हर पाठक व आलोचक को अपनी ओर आकृष्ट करती है|

प्रस्तुत इकाई में हम छायावादोत्तर कविता की प्रकृति को समझने का प्रयास करेंगे|

1.2 उद्देश्य

छायावादोत्तर कविता सम्बन्धी इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप-

* छायावादोत्तर शब्द का अर्थ समझ सकेंगे|

* छायावादोत्तर हिंदी कविता का परिचय प्राप्त कर सकेंगे|

* छायावादोत्तर हिंदी कविता के प्रमुख आंदोलनों से परिचित हो सकेंगे|

* छायावादोत्तर हिंदी कविता की प्रवृत्तियों को जान सकेंगे|

छायावादोत्तर हिंदी कविता के प्रदेय को जान सकेंगे|

1.3 छायावादोत्तर शब्द का अर्थ और व्यंग्य

छायावादोत्तर शब्द का सीदा-सादा अर्थ छायावाद के बाद से लिया जा सकता है| किंतु यह शब्द अतिव्याप्त है, क्योंकि इसमें आजतक की सभी काव्य प्रवृत्तिया शामिल हो जाती हैं| इसलिए यह शब्द सीमित अर्थ में या संकोच के साथ प्रयुक्त होता है| स्वतंत्रता से पूर्व तक की हिंदी कविता को मोटे रूप में, स्थूल रूप में छायावादोत्तर शब्द से व्याख्यायित किया जाता रहा है| इसलिए इस शब्द की अर्थ व्यंजना को गहरे रूप में समझे जाने की आवश्यकता है|

छायावादोत्तर शब्द दो अर्थो में समझना चाहिए| एक, छायावाद के बाद के साहित्य के अर्थ में, दूसरे; छायावाद की प्रवृत्तियों से मुक्ति के सन्दर्भ में| छायावादी कविता या साहित्य एक समय के बाद अतिशय भावुकता में व्यंजित होने लगा था, छायावादोत्तर साहित्य को इस ढंग से भी समझे जाने की आवश्यकता है| छायावादोत्तर साहित्य को इस ढंग से भी पढ़ा जाना चाहिए|

डॉ बच्चन सिंह ने अपने इतिहास में छायावादोत्तर शब्द के लिए उत्तर-स्वच्छन्दतावाद-युग शब्द प्रस्तावित किया है| इस प्रस्ताव का कारण यही है कि वे छायावाद को स्वच्छन्दतावाद कहते हैं| वस्तुतः उत्तर स्वच्छन्दतावाद-युग नाम की अपेक्षा छायावादोत्तर नाम अधिक संप्रेषण युक्त है, कारण यह कि छायावाद शब्द रूढ़ हो चुका है|

1.4 छायावादोत्तर कविता के विभिन्न चरण

छायावादोत्तर कविता के कई चरण हैं| कई बार तो विभिन्न काव्य प्रवृत्तियां एक-दूसरे से टकराती हुई चलती हैं या समानांतर रूप में चलती हैं| जैसे राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता और हालावाद का समय लगभग एक है| इन कविता आंदोलनों की शरुआत भी छायावादी कविता के गतिशील रहते ही होती है, जैसे 1930 के आसपास; किंतु फिर भी सुविधा की दृष्टि से हम इन कविता आंदोलनों को छायावाद के बाद के कविता आंदोलन में विश्लेषित करते हैं| क्योंकि ये कविता आंदोलन छायावादी कविता की प्रवृत्तियों से टकराकर विकसित होते हैं| इसलिए हम छायावादोत्तर कविता आंदोलन के तौर पर राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता आंदोलन को भी देखते हैं और हालावाद की कविता को भी| यही बात प्रगतिवादी कविता आंदोलन के सन्दर्भ में भी कही जा सकती है| प्रगतिशील कविताएं भी 1930 के आसपास लिखी जाने लगी थीं| अर्थ यह कि छायावाद के उत्तर समय में कई धारायें सक्रिय थीं| यहाँ हम प्रमुख काव्यांदोलनों का परिचय प्राप्त करने का प्रयास करेंगे|

क. स्वतंत्रता से पूर्व

1.7.1 राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता

राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता छायावाद का विस्तार है या कहें कि मुखर रूप है| छायावादी कविता में राष्ट्रीयता के तत्व नवजागरण की सूक्ष्म दृष्टि में छिप कर आये थे| यही कारण है कि छायावाद की कविता में सीधे -सीधे राष्ट्रीय गीत नहीं मिलते| हालांकि जयशंकर प्रसाद ने अपने नाटकों में राष्ट्रीय गीत लिखकर इस कमी की पूर्ति करने की कोशिश की| बावजूद कविता में राष्ट्रीय गीत, नवजागरण की छाया में छिप कर ही आये हैं| इसी कमी की पूर्ति राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता करती है|

साहित्य में राष्ट्रीय भावधारा की अभिव्यक्ति भारतेन्दु काल से प्रारम्भ होती है| लेकिन भारतेन्दु में राष्ट्र भक्ति, राज भक्ति के माध्यम से प्रकट हुई थी| आगे चलकर रामनरेश त्रिपाठी आदि कवियों ने राष्ट्रीय कविताओं की सृष्टि की, किंतु छायावादी आंदोलन में यह भाव धारा दबी-सी रही या उपेक्षित रही| इस दबी अभिव्यक्ति को रामधारी सिंह दिनकर, सोहनलाल द्विवेदी, बाल कृष्ण शर्मा नवीन, माखनलाल चतुर्वेदी, श्याम नारायण पांडेय ने स्वर प्रदान किया |

राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविताओं/ कृतियों को देखें तो 'नहुष', 'कुणालगीत', 'अजीत', 'जयभारत' (मैथिलीशरण गुप्त), 'माता', 'समर्पण', 'युगचरण' (माखनलाल चतुर्वेदी), 'अपलक', 'क्वासि', 'विनोबा-स्तवन', 'हम विषपायी जनम के' (बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'), 'नकुल', 'नोआखाली', 'जयहिंद', 'आत्मोत्सर्ग', 'उन्मुक्त', 'गोपिका' (सियारामशरण गुप्त), 'हुंकार', 'द्वंद्वगीत', 'कुरुक्षेत्र', 'इतिहास के आंसू', 'रश्मिरथी', 'धूप और धुआं', 'दिल्ली' (दिनकर), 'वासवदत्ता', 'भैरवी', 'कुणाल', 'चित्रा', 'युगाधार' (सोहनलाल द्विवेदी), 'सूत की माला' (बच्चन), 'हल्दीघाटी', 'जौहर' (श्यामनारायण पांडेय), 'विक्रमादित्य' (गुरुभक्तसिंह 'भक्त'), 'विसर्जन', 'मानसी', 'अमृत और

विष', 'युगदीप', 'यथार्थ और कल्पना', 'एकला चलो रे', 'विजयपथ' (उदयशंकर भट्ट), 'काल-दहन', 'तप्तगृह', 'कैकेयी', 'दानवीर कर्ण' (केदारनाथ मिश्र प्रभात) राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा की कृतियां हैं। इस सूची में मैथिली शरण गुप्त, बच्चन आदि कवियों के नाम भी हैं| हालांकि ये कवि मूल रूप से राष्ट्रीय भावधारा के कवि नहीं हैं, बावजूद इन्होने राष्ट्रीय वृत्ति की रचना की है|

माखन लाल चतुर्वेदी इस भावधारा के केंद्रीय कवि हैं| आपकी प्रमुख रचनाएँ हैं -

हिमकिरीटिनी, हिम तरंगिणी, युग चारण, समर्पण, मरण ज्वार, माता, वेणु लो गूंजे धरा, बीजुरी काजल आँज रही आदि इनकी प्रसिद्ध काव्य कृतियाँ हैं। आपकी कविताओं का मूल स्वर राष्ट्र प्रेम और सांस्कृतिक जागरण रहा है| कुछ पंक्ति देखें -

चाह नहीं, मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ।
चाह नहीं, प्रेमी-माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ॥
चाह नहीं, सम्राटों के शव पर, हे हरि, डाला जाऊँ।
चाह नहीं, देवों के सिर पर चढ़ूँ, भाग्य पर इठलाऊँ॥
मुझे तोड़ लेना वनमाली!
उस पथ में देना तुम फेंक॥
मातृ-भूमि पर शीश चढ़ाने।
जिस पथ जावें वीर अनेक॥ (पुष्प की अभिलाषा)

****

छोड़ चले, ले तेरी कुटिया,
यह लुटिया-डोरी ले अपनी,
फिर वह पापड़ नहीं बेलने,
फिर वह माला
पड़े न जपनी।
यह जाग्रति तेरी तू ले-ले,
मुझको मेरा दे-दे सपना,
तेरे शीतल सिंहासन से
सुखकर सौ युग ज्वाला तपना।
सूली का पथ ही सीखा हूँ,
सुविधा सदा बचाता आया,
मैं बलि-पथ का अंगारा हूँ,
जीवन-ज्वाल जलाता आया।
एक फूँक, मेरा अभिमत है,

फूँक चलूँ जिससे नभ जल थल,
मैं तो हूँ बलि-धारा-पंथी,
फेंक चुका कब का गंगाजल।
इस चढ़ाव पर चढ़ न सकोगे,
इस उतार से जा न सकोगे,
तो तुम मरने का घर ढूँढ़ो,
जीवन-पथ अपना न सकोगे।
श्वेत केश?—भाई होने को—
हैं ये श्वेत पुतलियाँ बाक़ी,
आया था इस घर एकाकी,
जाने दो मुझको एकाकी।
अपना कृपा-दान एकत्रित
कर लो, उससे जी
बहला लें
युग की होली माँग रही है,
लाओ उसमें आग लगा दें।
मत बोलो वे रस की बातें,
रस उसका जिसकी तरुणाई,
रस उसका जिसने सिर सौंपा,
आगी लगा भभूत रमायी।
जिस रस में कीड़े पड़ते हों,
उस रस पर विष हँस-हँस डालो;
आओ गले लगो, ऐ साजन!
रेतो तीर, कमान सँभालो।
हाय, राष्ट्र-मंदिर में जाकर,
तुमने पत्थर का प्रभु खोजा!
लगे माँगने जाकर रक्षा
और स्वर्ण-रूपे का बोझा?
मैं यह चला पत्थरों पर चढ़,
/मेरा दिलबर वहीं मिलेगा,
फूँक जला दें सेना-चाँदी,
तभी क्रांति का सुमन खिलेगा।
चट्टानें चिंघाड़ें हँस-हँस,

सागर गरजे मस्ताना-सा,प्रलय राग अपना भी उसमें,

बालकृष्ण शर्मा नवीन की कविता में राष्ट्र प्रेम और आवेगात्मक अभिव्यक्ति अपने उन्नत रूप में मिलती है| राष्ट्र प्रेम की आवेगात्मक अभिव्यक्ति के लिए आपकी निम्न पंक्तियों को भी देखा जाना चाहिए-

कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाये
एक हिलोर इधर से आये, एक हिलोर उधर से आये
प्राणों के लाले पड़ जायें, त्राहि-त्राहि स्वर नभ में छाये
बरसे आग, जलद जल जाये, भस्मसात भूधर हो जाये

रामधारी सिंह दिनकर को इस काव्यधारा का ओज कवि कहा जा सकता है| हुंकार, रेणुका, सामधेनी, रश्मि रथी आदि में दिनकर की राष्ट्रीय कविताएं संग्रहित हैं| दिनकर की कविताओं में ओज गुण की प्रधानता है और इसी कारण आप बहुत जल्दी लोकप्रिय हो गए| आपकी कुछ पंक्ति देखें -

सदियों की ठण्डी-बुझी राख सुगबुगा उठी
मिट्टी सोने का ताज पहन इठलाती है
दो राह, समय के रथ का घर्घर-नाद सुनो
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है
जनता ? हाँ, मिट्टी की अबोध मूरतें वही
जाड़े-पाले की कसक सदा सहनेवाली
जब अँग-अँग में लगे साँप हो चूस रहे
तब भी न कभी मुँह खोल दर्द कहनेवाली
जनता ? हाँ, लम्बी-बडी जीभ की वही कसम
"जनता, सचमुच ही, बडी वेदना सहती है।"
"सो ठीक, मगर, आखिर, इस पर जनमत क्या है?"
'है प्रश्न गूढ़ जनता इस पर क्या कहती है?"
मानो,जनता ही फूल जिसे अहसास नहीं
जब चाहो तभी उतार सजा लो दोनों में
अथवा कोई दूधमुँही जिसे बहलाने के
जन्तर-मन्तर सीमित हों चार खिलौनों में
लेकिन होता भूडोल, बवण्डर उठते हैं
जनता जब कोपाकुल हो भृकुटि चढाती है
दो राह, समय के रथ का घर्घर-नाद सुनो
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है
हुँकारों से महलों की नींव उखड़ जाती

साँसों के बल से ताज हवा में उड़ता है
जनता की रोके राह, समय में ताव कहाँ ?
वह जिधर चाहती, काल उधर ही मुड़ता है
अब्दों, शताब्दियों, सहस्राब्द का अन्धकार
बीता; गवाक्ष अम्बर के दहके जाते हैं
यह और नहीं कोई, जनता के स्वप्न अजय
चीरते तिमिर का वक्ष उमड़ते जाते हैं
सब से विराट जनतन्त्र जगत का आ पहुँचा
तैंतीस कोटि-हित सिंहासन तय करो
अभिषेक आज राजा का नहीं, प्रजा का है
तैंतीस कोटि जनता के सिर पर मुकुट धरो
आरती लिए तू किसे ढूँढ़ता है मूरख
मन्दिरों, राजप्रासादों में, तहखानों में ?
देवता कहीं सड़कों पर गिट्टी तोड़ रहे
देवता मिलेंगे खेतों में, खलिहानों में
फावड़े और हल राजदण्ड बनने को हैं
धूसरता सोने से शृँगार सजाती है
दो राह, समय के रथ का घर्घर-नाद सुनो
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है

विज्ञापन

कलम, आज उनकी जय बोल
जला अस्थियाँ बारी-बारी
चिटकाई जिनमें चिंगारी,
जो चढ़ गये पुण्यवेदी पर
लिए बिना गर्दन का मोल
कलम, आज उनकी जय बोल।
जो अगणित लघु दीप हमारे
तूफानों में एक किनारे,
जल-जलाकर बुझ गए किसी दिन
माँगा नहीं स्नेह मुँह खोल
कलम, आज उनकी जय बोल।
पीकर जिनकी लाल शिखाएँ
उगल रही सौ लपट दिशाएं,

जिनके सिंहनाद से सहमी
धरती रही अभी तक डोल
कलम, आज उनकी जय बोल।
अंधा चकाचौंध का मारा
क्या जाने इतिहास बेचारा,
साखी हैं उनकी महिमा के
सूर्य चन्द्र भूगोल खगोल
कलम, आज उनकी जय बोल

***

कृष्ण की चेतावनी
वर्षों तक वन में घूम-घूम,
बाधा-विघ्नों को चूम-चूम,
सह धूप-घाम, पानी-पत्थर,
पांडव आये कुछ और निखर।
सौभाग्य न सब दिन सोता है,
देखें, आगे क्या होता है।
मैत्री की राह बताने को,
सबको सुमार्ग पर लाने को,
दुर्योधन को समझाने को,
भीषण विध्वंस बचाने को,
भगवान् हस्तिनापुर आये,
पांडव का संदेशा लाये।
'दो न्याय अगर तो आधा दो,
पर, इसमें भी यदि बाधा हो,
तो दे दो केवल पाँच ग्राम,
रक्खो अपनी धरती तमाम।
हम वहीं खुशी से खायेंगे,
परिजन पर असि न उठायेंगे!
दुर्योधन वह भी दे ना सका,
आशीष समाज की ले न सका,
उलटे, हरि को बाँधने चला,
जो था असाध्य, साधने चला।
जब नाश मनुज पर छाता है,

पहले विवेक मर जाता है।
हरि ने भीषण हुंकार किया,
अपना स्वरूप-विस्तार किया,
डगमग-डगमग दिग्गज डोले,
भगवान् कुपित होकर बोले-
'जंजीर बढ़ा कर साध मुझे,
हाँ, हाँ दुर्योधन! बाँध मुझे।
यह देख, गगन मुझमें लय है,
यह देख, पवन मुझमें लय है,
मुझमें विलीन झंकार सकल,
मुझमें लय है संसार सकल।
अमरत्व फूलता है मुझमें,
संहार झूलता है मुझमें।
'उदयाचल मेरा दीप्त भाल,
भूमंडल वक्षस्थल विशाल,
भुज परिधि-बन्ध को घेरे हैं,
मैनाक-मेरु पग मेरे हैं।
दिपते जो ग्रह नक्षत्र निकर,
सब हैं मेरे मुख के अन्दर।
'दृग हों तो दृश्य अकाण्ड देख,
मुझमें सारा ब्रह्माण्ड देख,
चर-अचर जीव, जग, क्षर-अक्षर,
नश्वर मनुष्य सुरजाति अमर।
शत कोटि सूर्य, शत कोटि चन्द्र,
शत कोटि सरित, सर, सिन्धु मन्द्र।
'शत कोटि विष्णु, ब्रह्मा, महेश,
शत कोटि जिष्णु, जलपति, धनेश,
शत कोटि रुद्र, शत कोटि काल,
शत कोटि दण्डधर लोकपाल।
जञ्जीर बढ़ाकर साध इन्हें,
हाँ-हाँ दुर्योधन! बाँध इन्हें।
'भूलोक, अतल, पाताल देख,
गत और अनागत काल देख,

यह देख जगत का आदि-सृजन,
यह देख, महाभारत का रण,
मृतकों से पटी हुई भू है,
पहचान, इसमें कहाँ तू है।
'अम्बर में कुन्तल-जाल देख,
पद के नीचे पाताल देख,
मुट्ठी में तीनों काल देख,
मेरा स्वरूप विकराल देख।
सब जन्म मुझी से पाते हैं,
फिर लौट मुझी में आते हैं।
'जिह्वा से कढ़ती ज्वाल सघन,
साँसों में पाता जन्म पवन,
पड़ जाती मेरी दृष्टि जिधर,
हँसने लगती है सृष्टि उधर!
मैं जभी मूँदता हूँ लोचन,
छा जाता चारों ओर मरण।
'बाँधने मुझे तो आया है,
जंजीर बड़ी क्या लाया है?
यदि मुझे बाँधना चाहे मन,
पहले तो बाँध अनन्त गगन।
सूने को साध न सकता है,
वह मुझे बाँध कब सकता है?
'हित-वचन नहीं तूने माना,
मैत्री का मूल्य न पहचाना,
तो ले, मैं भी अब जाता हूँ,
अन्तिम संकल्प सुनाता हूँ।
याचना नहीं, अब रण होगा,
जीवन-जय या कि मरण होगा।
'टकरायेंगे नक्षत्र-निकर,
बरसेगी भू पर वह्नि प्रखर,
फण शेषनाग का डोलेगा,
विकराल काल मुँह खोलेगा।
दुर्योधन! रण ऐसा होगा।

फिर कभी नहीं जैसा होगा।
'भाई पर भाई टूटेंगे,
विष-बाण बूँद-से छूटेंगे,
वायस-श्रृगाल सुख लूटेंगे,
सौभाग्य मनुज के फूटेंगे।
आखिर तू भूशायी होगा,
हिंसा का पर, दायी होगा।'
थी सभा सन्न, सब लोग डरे,
चुप थे या थे बेहोश पड़े।
केवल दो नर ना अघाते थे,
धृतराष्ट्र-विदुर सुख पाते थे।
कर जोड़ खड़े प्रमुदित,
निर्भय, दोनों पुकारते थे 'जय-जय'!

उपर्युक्त कविताओं को देखने से यह बात स्पष्ट है कि दिनकर इस काव्यधारा के महत्वपूर्ण कवि हैं| दिनकर बाद के समय में प्रेम और राजनीति की कविताओं की ओर मुड़ गए, किंतु उनका प्रस्थान राष्ट्रीय कविताओं से ही हुआ था|

दिनकर के अतिरिक्त सियाराम शरण गुप्त, श्यामनारायण पांडेय, सोहनलाल द्विवेदी आदि की रचनाएँ भी इस काव्यधारा को समृद्ध करती हैं | उदयशंकर भट्ट की विसर्जन, मानसी, अमृत और विष, युगदीप, यथार्थ, एकला चलो रे, विजयपथ आदि रचनाएँ राष्ट्रीय भावधारा की अभिव्यक्ति करती हैं | सोहनलाल द्विवेदी की भैरवी, वासवदत्ता, कुणाल, चित्रा, प्रभाती, युगधारा और पूजागीत जैसी रचनाएँ राष्ट्र प्रेम को प्रगाढ़ करती हैं| श्यामनारायण पांडेय की हल्दीघाटी रचना काफ़ी चर्चित रही है | यूँ तो यह रचना महाराणा प्रताप पर रचित है, किंतु अपनी व्यापकता में यह राष्ट्रीय भाव धारा को भी अपने में समेट लेती है|

सुभद्रा कुमारी चौहान (1904-1948) की कविताओं के दो सिरे हैं| एक सिरा, राष्ट्रीय आंदोलन पर आधारित कविताओं का है तो दूसरा सिरा पारिवारिक या वात्सल्य पूर्ण कविताओं से जुड़ा हुआ है| झाँसी की रानी कविता से आपको प्रसिद्धि मिली, किंतु वात्सल्य की कविताएं भी कम आत्मिक नहीं हैं-

मैं बचपन को बुला रही थी, बोल उठी बिटिया मेरी/ नन्दनवन-सी फूल उठी, यह छोटी-सी कुटिया मेरी/ 'माँ ओ' कह कर बुला रही थी, मिट्टी खाकर आई थी, /कुछ मुँह में, कुछ लिये हाथ में मुझे खिलाने आई थी/ मैंने पूछा 'यह क्या लाई ?' बोल उठी वह, 'माँ, खाओ !' /हुआ प्रफुल्लित हृदय खुशी से, मैंने कहा, 'तुम्हीं खाओ !'

1.7.2 हालावाद एवं व्यक्ति स्वच्छन्दतावाद

हालावाद एवं व्यक्ति स्वच्छन्दतावाद की वृत्ति का एक सिरा छायावाद से जुड़ा हुआ है तो दूसरा सिरा युगीन राष्ट्रीय परिस्थितियों से| सन 1930 तक आते-आते छायावादी कवि भी अपने को बदलने लगे थे| छायावाद की वैक्तिकता अब दूसरे ढंग से अभिव्यक्ति का द्वार तलाशने लगी| छायावादी वैक्तिकता नवजागरण की फलश्रुति थी, किंतु इस कविता धारा की वैक्तिकता दर्शन से परे मध्यमवर्गीय व्यक्तित्व की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति से जुड़ी हुई थी, जिसमें एक ओर रूढ़ियों को तोड़ने का प्रयास था तो दूसरी ओर सब कुछ को अस्वीकार करने का आग्रह| इस धारा के कवि अपनी निजी अनुभूति को बिना दार्शनिकता या सूक्ष्मता में व्यक्त कर सकते थे| बच्चन की कविता की कुछ पंक्तियाँ देखें-

शत्रु बन गया है छल रहित व्यवहार मेरा/ यदि अपनी भावना छिपा सकता तो जग मुझे साधु समझता*** कह रहा है जग वासनामय हो रहा उदगार मेरा *** वृद्ध जगको क्यों अखरती है क्षणिक मेरी जवानी*** मुझमें है देवत्व जहां पर/ झुक जायेगा लोक वहीं पर/ पर न मिलेंगे मेरी दुर्बलता को दुलराने वाले!

आदि पंक्तियों में एक वैक्तिकता, प्रतिरोध और निराशा सब एक साथ आये हैं| बच्चन की ही एकांत संगीत की कुछ पंक्ति देखें-

कितना अकेला आज मैं/ संघर्ष में टूटा हुआ/ दुर्भाग्य से लूटा हुआ/ परिवार से छूटा हुआ, कितना अकेला आज मैं|

जीवन की यह निराशा कभी तो प्रतिरोध की ओर जाती है तो कभी सामूहिकता व असाम्प्रदायिक वृत्ति की ओर| हालावाद की प्रतिष्ठा इसी का परिणाम है| मधुशाला, मधुबाला आदि कृतियाँ इसी दर्शन का परिणाम हैं|

मुसलमान औ' हिन्दू है दो, एक, मगर, उनका प्याला
एक, मगर, उनका मदिरालय, एक, मगर, उनकी हाला
दोनों रहते एक न जब तक मस्जिद मन्दिर में जाते
बैर बढ़ाते मस्जिद मन्दिर मेल कराती मधुशाला
यम आएगा लेने जब, तब खूब चलूंगा पी हाला
पीड़ा, संकट, कष्ट नरक के क्या समझेगा मतवाला
क्रूर, कठोर, कुटिल, कुविचारी, अन्यायी यमराजों के
डंडों की जब मार पड़ेगी, आड़ करेगी मधुशाला

यह भाव असाम्प्रदायिक आग्रह का भी है और तत्कालीन परिस्थितियों का भी |

नरेन्द्र शर्मा के गीतों में आत्मीयता है | एक उदाहरण देखें -

तुम से जीवन का क्षण-क्षण गुंजित,
कण-कण अनुरंजित है!
तुम मानस में स्वर-रूप-रंग-रस
बन कर लहराई हो,
अनदेखे अंतर्शतदल पर
परिमल बन कर छाई हो;
मेरे उर का सर्वस्व आज
उन नयनों में सस्मित है!
तुम से जीवन का क्षण-क्षण गुंजित,
कण-कण अनुरंजित है!
जब मुस्कानों के हंस दूत
संदेश हृदय का लाए,
पहचान प्राण को प्राण—
सहज मधुबंधन में बँध पाए!
दो पथिक अपरिचित दूरागत,
अंतर्चित चिर-परिचित है!
तुम से जीवन का क्षण-क्षण गुंजित,
कण-कण अनुरंजित है!

रामेश्वर शुक्ल अंचल को मांसलवादी धारा का कवि कहा गया है| किंतु व्यापक स्तर पर इन्हें भी वैयक्तिक -स्वच्छन्दतावादी धारा के कवियों के अंतर्गत ही शामिल किया जा सकता है| मधुलिका', 'अपराजिता', 'किरणबाला', 'करील', 'लाल चुनर', 'वर्षांत के बादल', 'विराम-चिह्न' आपके प्रमुख काव्य-संग्रह हैं। आपकी कविताओं में उद्दाम वासना, रूप की आसक्ति प्रमुख रूप से अभिव्यक्त हुई है| एक उदाहरण देखें -
बाहर के आँधी पानी से मन का तूफ़ान कहीं बढ़ कर,
बाहर के सब आघातों से, मन का अवसान कहीं बढ़कर,
फिर भी मेरे मरते मन ने, तुम तक उड़ने की गति चाही,
तुमने अपनी लौ से मेरे सपनो की चंचलता दाही,
इस अनदेखी लौ ने मेरी बुझती पूजा में रूप गढ़ा,
जितनी तुमने व्याकुलता दी उतना तुम पर विश्वास बढ़ा.

प्राणों में उमड़ी थी कितने अनगाये गीतों की हलचल,
जो बह न सके थे वह आँसू भीतर भीतर ही तप्त विकल,
रुकते रुकते ही सीख गये थे सुधि के सुमिरन में बहना,

तुम जान सकोगे क्या न कभी मेरे अर्पित मन का सहना,
तुमने सब दिन असफलता दी मैंने उसमे वरदान पढ़ा,
जितनी तुमने व्याकुलता दी उतना तुम पर विश्वास बढ़ा.

मैंने चाहा तुम में लय हो साँसों के स्वर सा खो जाना,
मैं प्रतिक्षण तुममें ही बीतूँ हो पूर्ण समर्पण का बाना,
तुमने ना जाने क्या करके मुझको भंवरो में भरमाया,
मैंने अगणित मझधारों मैं तुमको साकार खड़े पाया,
भयकारी लहरों में भी तो तुम तक आने का चाव चढ़ा,
जितनी तुमने व्याकुलता दी उतना तुम पर विश्वास बढ़ा.

मेरे मन को आधार यही यह सब कुछ तुम ही देते हो,
दुःख मैं तन्मयता देकर सुख की मदिरा हर लेते हो,
मैंने सारे अभिमान तजे लेकिन न तुम्हारा गर्व गया,
संचार तुम्हारी करुणा का मेरे मन में ही नित्य नया,
मैंने इतनी दूरी मैं भी तुम तक आने का स्वप्न गढ़ा,
जितनी तुमने व्याकुलता दी उतना तुम पर विश्वास बढ़ा.

आभास तुम्हारी महिमा का कर देता है पूजा मुश्किल,
परिपूर्ण तुम्हारी वत्सलता करती मन की निष्ठा मुश्किल,
मैं सब कुछ तुममें हीं देखूँ सब कुछ तुममें ही हो अनुभव,
मेरा यह दुर्बल मन किन्तु कहाँ होने देता यह सुख संभव,
जितनी तन की धरती डूबी उतना मन का आकाश बढ़ा,
जितनी तुमने व्याकुलता दी उतना तुम पर विश्वास बढ़ा.

भगवती चरण वर्मा को एक कहानीकार व उपन्यासकार के रूप में ज्यादा ख्याति मिली, किंतु अपनी रचनाधर्मिता के प्रारंभिक चरण में आप एक कवि के रूप में काफ़ी लोकप्रिय हुए थे| मधु कण, प्रेम- संगीत, मानव और एक दिन आपके प्रमुख कविता संग्रह हैं| आपकी कुछ कविताएं बहुत प्रसिद्ध रही हैं -

हम दीवानों की क्या हस्ती, आज यहाँ कल वहाँ चले।
मस्ती का आलम साथ चला, हम धूल उड़ाते जहाँ चले।
सब कहते ही रह गए, अरे, तुम कैसे आए, कहाँ चले।
जग से उसका कुछ लिए चले, जग को अपना कुछ दिए चले

इसके अतिरिक्त आपकी भैंसागाड़ी कविता काफ़ी चर्चित रही है -

चरमर- चरमर- चूँ- चरर- मरर जा रही चली भैंसागाड़ी !
गति के पागलपन से प्रेरित चलती रहती संसृति महान,
सागर पर चलते हैं जहाज़, अम्बर पर चलते वायुयान.
भूतल के कोने-कोने में रेलों-ट्रामों का जाल बिछा,
हैं दौड़ रही मोटर-बसें लेकर मानव का वृहत ज्ञान !

1.7.3 प्रगतिवाद

दर्शन में जो मार्क्सवाद है, वही साहित्य में प्रगतिवाद है| अर्थ यह कि मार्क्सवाद की प्रेरणा से प्रगतिवादी साहित्य जन्म लेता है| लेकिन प्रगतिवाद के प्रारंभ का सीदा-सादा मार्ग नहीं है| प्रगतिवाद का साहित्यिक आंदोलन सन 1936 तक की सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों की देन था| एक ओर इसमें, भारत की बदलती राजनीतिक परिस्थितियां थीं तो दूसरी ओर सामाजिक-साहित्यिक बदलाव की तीव्र प्रक्रिया| छायावादी कवि पंत ने युगान्त की घोषणा कर दी थी| निराला प्रगतिशील विचारों से प्रभावित हो चले थे| छायावाद का उत्तर काल भी तेजी से यथार्थवादी आग्रह से युक्त होता चला जा रहा था| इसी बीच पेरिस में 1935 में ई एम फोस्टर के नेतृत्व में प्रगतिशील लेखकों की एक समिति बनी| सज्जाद जहीर और मुल्कराज आनंद ने 1935-36 में लन्दन में प्रोग्रेसिव राईटरस एसोसिएशन की स्थापना की| 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ का पहला अधिवेशन लखनऊ में हुआ, जिसकी अध्यक्षता प्रेमचंद ने की| प्रगतिवाद का प्रगतिशील लेखक संघ से दूर तक का संबंध है| प्रारंभ में प्रगतिशील और प्रयोगवाद शब्द समानार्थी रूप में चलते रहे, किंतु धीरे-धीरे प्रगतिवाद मार्क्सवादी विचारधारा से समर्थित रचनाकारों के लिए रूढ़ होता चला गया|

1938 में सुमित्रानंदन पंत ने रूपाभ पत्र का प्रकाशन किया| इसे पहला प्रगतिशील पत्र कहा गया| पंत ने युगवाणी और ग्राम्या नामक काव्य संग्रहों के माध्यम से प्रगतिशील कविताएं लिखीं| यहाँ प्रगतिवाद और प्रगतिशील शब्द के भेद को भी समझना उचित होगा| प्रगतिवाद एक काव्यांदोलन था, जबकि प्रगतिशील शब्द एक वृत्ति का सूचक है| प्रेमचंद ने एक जगह लिखा है कि 'साहित्य मूलत: प्रगतिशील होता है' | इस ढंग से प्रगतिशील साहित्य का अर्थ हुआ, ऐसा साहित्य जो समाज को आगे बढ़ाये| किंतु साहित्य में कुछ शब्द किसी ख़ास अर्थ को ही व्यंजित करने लगते हैं| प्रगतिवाद के साथ भी ऐसा ही हुआ| मार्क्सवादी विचार धारा से युक्त रचनाकार ही प्रगतिवादी कहे जाने लगे...और यह रूढ़ि स्थिर हो गयी|

प्रगतिवादी काव्य आंदोलन 1936-1943 के बीच माना जाता है, क्योंकि 1943 से तारसप्तक के माध्यम से प्रयोगवादी काव्यांदोलन की शुरुआत हो जाती है| किंतु यह आंदोलन की दृष्टि से सुविधाजनक विभाजन है| क्योंकि 1943 के बाद भी प्रगतिवादी कवि रचना कर रहे थे| एक अन्य तथ्य भी ध्यान देने योग्य है कि प्रगतिवाद रचना समय की दृष्टि से अल्प अवधि का आंदोलन था,

किंतु अपने प्रभाव की दृष्टि से व्यापक था | कारण यह कि जनवादी से लेकर मोहभंग की कविताओं तक मार्क्सवाद की वैचारिकी का गहरा असर रहा| इस ढंग से प्रगतिवाद का विस्तृत रूप ही आगे चलकर दूसरे काव्यांदोलनों में ढल जाता है|

प्रगतिवाद की त्रयी प्रसिद्ध रही है| इस त्रयी के सदस्य हैं - नागार्जुन, त्रिलोचन व केदार नाथ अग्रवाल | इसके अतिरिक्त भी भी अमृत राय, भैरव प्रसाद गुप्त आदि कवि इस धारा में आते हैं|

नागार्जुन इस काव्य धारा के सर्वाधिक चर्चित व आंदोलनधर्मी कवि रहे हैं| नागार्जुन की घोषणा है -' प्रतिबद्ध हूँ / सम्बद्ध हूँ /आबद्ध हूँ '| यह प्रतिबद्धता जनता के प्रति है और अपने वैचारिक दर्शन के प्रति | नागार्जुन की कविता में आंदोलन है, संघर्ष है और व्यंग्य है | उन्होंने लिखा है -

'कैसे लिखूँ शांति की कविता/अमन-चैन को कैसे कड़ियों में बाहूँ मैं दरिद्र हूँ, पुश्त-पुश्त की यह दरिद्रता/कटहल के छिलके जैसी खुरदरी जीभ से मेरा लहू चाटती आई/ मैं न अकेला/मुझ जैसे तो लाख हैं, कोटि-कोटि हैं।'

शिक्षा व्यवस्था के यथार्थ पर नागार्जुन ने लिखा है-

घुन खाये शहतीरों पर बारहखड़ी विधाता बाँचे फटी भीत है, छत चूती है, आले पर बिसतुइया नाचे बरसा कर बेबस बच्चों पर मिनट-मिनट में पाँच तमाचे इसी तरह दुखहरन मास्टर गढ़ता आदम के साँचे

इसी प्रकार अकाल पर नागार्जुन की सूक्ष्म दृष्टि उसके चित्र हमें पकड़ा देती है -
कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उसके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गस्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त

नागार्जुन ने ठीक ही लिखा है - 'जन -जन में जो ऊर्जा भर दे, मैं उदगाता हूँ उस रवि का' | किंतु जब नागार्जुन प्राकृतिक व आत्मिक दृश्यों की ओर मुड़ते हैं, तब उनकी कविता का स्वर ज्यादा रचनात्मक हो उठता है| बादल को घिरते देखा है कविता में वे लिखते हैं -
अमल धवल गिरि के शिखरों पर,
बादल को घिरते देखा है।
छोटे-छोटे मोती जैसे
उसके शीतल तुहिन कणों को,
मानसरोवर के उन स्वर्णिम
कमलों पर गिरते देखा है,
बादल को घिरते देखा है।
तुंग हिमालय के कंधों पर

छोटी बड़ी कई झीलें हैं,
उनके श्यामल नील सलिल में
समतल देशों से आ-आकर
पावस की उमस से आकुल
तिक्त-मधुर विषतंतु खोजते
हंसों को तिरते देखा है।
बादल को घिरते देखा है।
ऋतु वसंत का सुप्रभात था
मंद-मंद था अनिल बह रहा
बालारुण की मृदु किरणें थीं
अगल-बगल स्वर्णाभ शिखर थे
एक-दूसरे से विरहित हो
अलग-अलग रहकर ही जिनको
सारी रात बितानी होती,
निशा-काल से चिर-अभिशापित
बेबस उस चकवा-चकई का
बंद हुआ क्रंदन, फिर उनमें
उस महान् सरवर के तीरे
शैवालों की हरी दरी पर
प्रणय-कलह छिड़ते देखा है।
बादल को घिरते देखा है।
शत-सहस्र फुट ऊँचाई पर
दुर्गम बर्फानी घाटी में
अलख नाभि से उठने वाले
निज के ही उन्मादक परिमल-
के पीछे धावित हो-होकर
तरल-तरुण कस्तूरी मृग को
अपने पर चिढ़ते देखा है,
बादल को घिरते देखा है।
कहाँ गय धनपति कुबेर वह
कहाँ गई उसकी वह अलका
नहीं ठिकाना कालिदास के
व्योम-प्रवाही गंगाजल का,

ढूँढ़ा बहुत किन्तु लगा क्या
मेघदूत का पता कहीं पर,
कौन बताए वह छायामय
बरस पड़ा होगा न यहीं पर,
जाने दो वह कवि-कल्पित था,
मैंने तो भीषण जाड़ों में
नभ-चुंबी कैलाश शीर्ष पर,
महामेघ को झंझानिल से
गरज-गरज भिड़ते देखा है,
बादल को घिरते देखा है।
शत-शत निर्झर-निर्झरणी कल
मुखरित देवदारु कनन में,
शोणित धवल भोज पत्रों से
छाई हुई कुटी के भीतर,
रंग-बिरंगे और सुगंधित
फूलों की कुंतल को साजे,
इंद्रनील की माला डाले
शंख-सरीखे सुघड़ गलों में,
कानों में कुवलय लटकाए,
शतदल लाल कमल वेणी में,
रजत-रचित मणि खचित कलामय
पान पात्र द्राक्षासव पूरित
रखे सामने अपने-अपने
लोहित चंदन की त्रिपटी पर,
नरम निदाग बाल कस्तूरी
मृगछालों पर पलथी मारे
मदिरारुण आखों वाले उन
उन्मद किन्नर-किन्नरियों की
मृदुल मनोरम अँगुलियों को
वंशी पर फिरते देखा है।
बादल को घिरते देखा है।

इसी प्रकार कालिदास सच-सच बतलाना कविता में वे रचना समस्या के प्रश्न को उठाते हैं -
कालिदास, सच-सच बतलाना!

इंदुमती के मृत्युशोक से
अज रोया या तुम रोए थे?
कालिदास, सच-सच बतलाना!
शिवजी की तीसरी आँख से
निकली हुई महाज्वाला में
घृत-मिश्रित सूखी समिधा-सम
कामदेव जब भस्म हो गया
रति का क्रंदन सुन आँसू से
तुमने ही तो दृग धोए थे?
कालिदास, सच-सच बतलाना!
रति रोई या तुम रोए थे?
वर्षा ऋतु की स्निग्ध भूमिका
प्रथम दिवस आषाढ़ मास का
देख गगन में श्याम घन-घटा
विधुर यक्ष का मन जब उचटा
खड़े-खड़े तब हाथ जोड़कर
चित्रकूट से सुभग शिखर पर
उस बेचारे ने भेजा था
जिनके ही द्वारा संदेशा
उन पुष्करावर्त मेघों का
साथी बनकर उड़ने वाले
कालिदास, सच-सच बतलाना!
पर पीड़ा से पूर-पूर हो
थक-थक कर औ' चूर-चूर हो
अमल-धवलगिरि के शिखरों पर
प्रियवर, तुम कब तक सोये थे?
रोया यक्ष कि तुम रोए थे!
कालिदास, सच-सच बतलाना !

नागार्जुन की व्यंग्य कविताएं भी अपने ढंग से काफ़ी चर्चित रही हैं | सत्ता वर्ग पर व्यंग्य की दृष्टि से इन्हें रेखांकित किया जाता रहा है| रानी आओ हम ढोयेंगे पालकी / जय जवाहर लाल की *** इंदु जी, इंदु जी / क्या हुआ आपको |

नागार्जुन की ऐसी कविताओं को पोस्टर कविता कहा गया | बावजूद हम कह सकते हैं कि नागार्जुन एक प्रतिबद्ध कवि हैं|

केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवाद के महत्वपूर्ण कवि हैं| केदारनाथ अग्रवाल की कविताएं दो दृष्टियों से चर्चित रही हैं - एक, अपनी राजनीतिक चेतना की दृष्टि से ; और दूसरे प्राकृतिक बिम्बौं की दृष्टि से | किंतु केदार की प्राकृतिक कविताएं भी छायावादी प्रकृति की तरह कोमल नहीं हैं, अपितु इनमें केदार का किसानी मन रचा-पगा हुआ है| वासंती हवा कविता को देखें -

हवा हूँ, हवा, मैं बसंती हवा हूँ!
वही हाँ, वही जो युगों से गगन को
बिना कष्ट-श्रम के सम्हाले हुए हूँ;
हवा हूँ, हवा, मैं बसंती हवा हूँ|
वही हाँ, वही जो धरा का बसंती
सुसंगीत मीठा गुँजाती फिरी हूँ;
हवा हूँ, हवा, मैं बसंती हवा हूँ|
वही हाँ, वही जो सभी प्राणियों को
पिला प्रेम-आसव जिलाए हुए हूँ,
हवा हूँ, हवा, मैं बसंती हवा हूँ|
क़सम रूप की है, क़सम प्रेम की है,
क़सम इस हृदय की, सुनो बात मेरी—
अनोखी हवा हूँ, बड़ी बावली हूँ!
बड़ी मस्तमौला, नहीं कुछ फ़िकर है,
बड़ी ही निडर हूँ, जिधर चाहती हूँ
उधर घूमती हूँ, मुसाफ़िर अजब हूँ!
न घर-बार मेरा, न उद्देश्य मेरा,
न इच्छा किसी की, न आशा किसी की,
न प्रेमी, न दुश्मन,
जिधर चाहती हूँ उधर घूमती हूँ!
हवा हूँ, हवा, मैं बसंती हवा हूँ|
जहाँ से चली मैं जहाँ को गई मैं,
शहर, गाँव, बस्ती,
नदी, रेत, निर्जन, हरे खेत, पोखर,
झुलाती चली मैं, झुमाती चली मैं,
हवा हूँ, हवा, मैं बसंती हवा हूँ|
चढ़ी पेड़ महुआ, थपाथप मचाया,

गिरी धम्म से फिर, चढ़ी आम ऊपर,
उसे भी झकोरा, किया कान में 'कू'
उतर कर भगी मैं हरे खेत पहुँची—
वहाँ गेहुँओं में लहर ख़ूब मारी,
पहर दो पहर क्या, अनेकों पहर तक
इसी में रही मैं।
खड़ी देख अलसी लिए शीश कलसी,
मुझे ख़ूब सूझी!
हिलाया-झुलाया, गिरी पर न कलसी!
इसी हार को पा,
हिलाई न सरसों, झुलाई न सरसों,
मज़ा आ गया तब,
न सुध-बुध रही कुछ,
बसंती नवेली भरे गात में थी!
हवा हूँ, हवा, मैं बसंती हवा हूँ!
मुझे देखते ही अरहरी लजायी,
मनाया-बनाया, न मानी, न मानी,
उसे भी न छोड़ा—
पथिक आ रहा था, उसी पर ढकेला,
लगी जा हृदय से, कमर से चिपक कर,
हँसी ज़ोर से मैं, हँसी सब दिशाएँ,
हँसे लहलहाते हरे खेत सारे,
हँसी चमचमाती भरी धूप प्यारी,
बसंती हवा में हँसी सृष्टि सारी!
हवा हूँ, हवा, मैं बसंती हवा हूँ।

इसी प्रकार लोहा कविता देखें -
मैंने उसको
जब जब देखा
लोहा देखा
लोहे जैसा
गलते देखा
ढलते देखा
गोली जैसे

चलते देखा

मजदूर वर्ग की कर्मठता, संघर्ष व प्रतिरोध को केदार ने इस छोटी कविता में सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त कर दिया है |

त्रिलोचन

त्रिलोचन को सॉनेट का कवि कहा गया है | 14 पंक्ति के सॉनेट छंद में रचना करने के कारण आप को हिंदी में सॉनेट का जनक कहा गया | किंतु त्रिलोचन की मूल विशेषता आपका जनपदीय काव्य है | त्रिलोचन सीधे-सादे ढंग से बड़ी बात कह जाते हैं| एक कविता देखना उचित होगा –

चम्पा काले काले अच्छर नहीं चीन्हती
मैं जब पढ़ने लगता हूँ वह आ जाती है
खड़ी खड़ी चुपचाप सुना करती है
उसे बड़ा अचरज होता है:
इन काले चिन्हों से कैसे ये सब स्वर
निकला करते हैं|

चम्पा सुन्दर की लड़की है
सुन्दर ग्वाला है : गाय भैसे रखता है
चम्पा चौपायों को लेकर
चरवाही करने जाती है

चम्पा अच्छी है
चंचल है
न ट ख ट भी है
कभी कभी ऊधम करेती है
कभी कभी वह कलम चुरा देती है
जैसे तैसे उसे ढूंढ कर जब लाता हूँ
पाता हूँ - अब कागज गायब
परेशान फिर हो जाता हूँ

चम्पा कहती है:
तुम कागद ही गोदा करते हो दिन भर
क्या यह काम बहुत अच्छा है
यह सुनकर मैं हँस देता हूँ
फिर चम्पा चुप हो जाती है

उस दिन चम्पा आई , मैने कहा कि
चम्पा, तुम भी पढ़ लो
हारे गाढ़े काम सरेगा
गांधी बाबा की इच्छा है -
सब जन पढ़ना लिखना सीखें
चम्पा ने यह कहा कि
मैं तो नहीं पढ़ुंगी
तुम तो कहते थे गांधी बाबा अच्छे हैं
वे पढ़ने लिखने की कैसे बात कहेंगे
मैं तो नहीं पढ़ुंगी

मैने कहा चम्पा, पढ़ लेना अच्छा है
ब्याह तुम्हारा होगा , तुम गौने जाओगी,
कुछ दिन बालम सँग साथ रह चला जायेगा जब कलकत्ता
बड़ी दूर है वह कलकत्ता
कैसे उसे सँदेसा दोगी
कैसे उसके पत्र पढ़ोगी
चम्पा पढ़ लेना अच्छा है!

चम्पा बोली : तुम कितने झूठे हो , देखा ,
हाय राम , तुम पढ़-लिख कर इतने झूठे हो
मैं तो ब्याह कभी न करुंगी
और कहीं जो ब्याह हो गया
तो मैं अपने बालम को संग साथ रखूंगी
कलकत्ता में कभी न जाने दुंगी
कलकती पर बजर गिरे।

अभ्यास प्रश्न) 1

सही / गलत का चयन कीजिए

1- रामधारी सिंह दिनकर को ओज का कवि कहा गया है|

2- हरिवंश राय बच्चन हालावाद के प्रवर्तक हैं|

3- तारसप्तक का प्रकाशन 1940 में हुआ था|

4- प्रगतिवाद का संबंध मार्क्सवाद से रहा है|

5- नयी कविता, प्रयोगवाद का अगला चरण है|

1.7.4 प्रयोगवाद

प्रयोगवाद के माध्यम से हिंदी कविता आधुनिक बनती है, समृद्ध बनती है| प्रयोगवाद का आरम्भ 1943 के तारसप्तक कविता संग्रह के प्रकाशन से प्रारंभ होता है | तारसप्तक का संपादन अज्ञेय करते हैं | तार सप्तक वस्तुतः सात कवियों का संग्रह था | अज्ञेय, मुक्तिबोध, नेमिचंद्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, गिरिजा कुमार माथुर, रामविलास शर्मा इसके कवि हैं | तार सप्तक के सात कवियों में से पाँच कवि मार्क्सवादी विचार धारा के ही समर्थक थे | इसे फिर प्रगतिवाद का विस्तार कह सकते हैं | हालांकि तार सप्तक की भूमिका में अज्ञेय ने सप्तक के कवियों को राहों का अंवेषी कहा था | व्यक्ति स्वतंत्रता, प्रायोगशीलता आदि पर इन कवियों का बहुत बल था, खासतौर पर अज्ञेय का | अज्ञेय ने प्रयोग को स्पष्ट करते हुए उसे नये सत्य के उद्घाटन के लिए अनिवार्य बताया | अज्ञेय की कलगी बाजरे की कविता को देखना उचित होगा -

हरी बिछली घास।

दोलती कलगी छरहरी बाजरे की।

अगर मैं तुमको ललाती साँझ के नभ की अकेली तारिका

अब नहीं कहता,

या शरद के भोर की नीहार-न्हायी कुँई,

टटकी कली चंपे की, वग़ैरह, तो

नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या कि सूना है

या कि मेरा प्यार मैला है।

बल्कि केवल यही : ये उपमान मैले हो गए हैं।

देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच।

कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।

मगर क्या तुम नहीं पहचान पाओगी :

तुम्हारे रूप के—तुम हो, निकट हो, इसी जादू के—

निजी किस सहज, गहरे बाँध से, किस प्यार से मैं कह रहा हूँ—

अगर मैं यह कहूँ—

बिछली घास हो तुम

लहलहाती हवा में कलगी छरहरी बाजरे की?

आज हम शहरातियों को

पालतू मालंच पर सँवरी जुही के फूल से

सृष्टि के विस्तार का—ऐश्वर्य का—औदार्य का—

कहीं सच्चा, कहीं प्यारा एक प्रतीक

बिछली घास है,

या शरद की साँझ के सूने गगन की पीठिका पर दोलती कलगी

अकेली

बाजरे की।

और सचमुच, इन्हें जब-जब देखता हूँ

यह खुला वीरान संसृति का घना हो सिमट आता है—

और मैं एकांत होता हूँ समर्पित।

शब्द जादू हैं—

मगर क्या यह समर्पण कुछ नहीं है?

प्रयोगवाद में व्यक्ति सत्य और अनुभूति की प्रामाणिकता का नारा खूब उछला| अज्ञेय ने लिखा है-'जितना तुम्हारा सच है/ उतना ही कहो'| व्यक्ति की निजी अनुभूति को सहानुभूति देना और उससे ऊर्जा ग्रहण करना प्रयोग वादी कविता की विशेषता है| अज्ञेय ने लिखा है-

दुःख सबको माँजता है

और

चाहे स्वयं सब को मुक्ति देना वह न जाने, किंतु

जिनको माँजता है

उन्हें वह सीख देता है कि सब को मुक्त रखें|

प्रयोगवादी कविता पर फ्रायड के मनोविश्लेषण और अस्तित्ववाद का प्रभाव स्वीकार किया गया है| 'आज का मनुष्य यौन वर्जनाओं का पुंज है' अज्ञेय ने कहा ही था| किंतु एक दूसरे कारण से भी प्रयोगवादी कविता को हिंदी साहित्य में स्मरण किया जाता है| प्रयोगवाद से ही हिंदी कविता में आधुनिक वृत्तियों यथा, विसंगति, विडंबना, अंतर्विरोध, संत्रास आदि का आगमन होता है|

मुक्तिबोध की कविताओं में आधुनिक वृत्तियां अपने रचनात्मक रूप में आयी हैं| मुक्तिबोध का काव्य संग्रह 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुआ, किंतु उनकी कविताएं पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही थीं| उनकी कविता में आया ब्रह्मराक्षस निष्क्रिय बौद्धिकता का प्रतीक है| अँधेरे में कविता सत्ता व्यवस्था और व्यक्ति की अभिव्यक्ति के द्वन्द्व से बुनी गयी है| भूल गलती, दिमागी गुहान्धकार, ब्रह्म राक्षस जैसी कविताएं मध्यम वर्गीय ट्रेजडी पर लिखी गयी कविताएं हैं| मुक्तिबोध तार सप्तक के कवि भी हैं और नयी कविता के भी|

ख- स्वतंत्रता पश्चात

1.7.5 नयी कविता

नयी कविता को प्रयोग वाद का ही उत्तरचरण कहा जाता है| दूसरा सप्तक के प्रकाशन (1951) से नयी कविता का प्रारंभ माना जाता है| कुछ लोग इसका उत्स ब्रिटेन के न्यू पोएट्री आंदोलन से मानते हैं| साहित्य में किसी घटना/प्रवृत्ति के बनने के एकाधिक कारण हो सकते हैं| मुख्य बात यह है कि नयी कविता ने अपने को प्रयोगवादी आग्रह से मुक्त किया और अपने कथ्य को सामाजिक गहराई प्रदान की| यही कारण है कि बहुत से आलोचक नयी कविता को प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के कट्टर पन से मुक्त मानते हैं|

दूसरा सप्तक में भवानी प्रसाद मिश्र, शकुन्तला माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय एवं धर्मवीर भारती की रचनाएँ संकलित हैं|

नयी कविता के सभी कवि किसी एक रेखा पर रचना नहीं करते, अपितु वे अपनी रचनाधर्मिता में पर्याप्त रचनात्मक हैं| शमशेर जहाँ प्रेम और सौंदर्य के चित्र अंकित करते हैं तो भवानी प्रसाद मिश्र नाटकीय ढंग से जीवन को पकड़ना चाहते हैं | भवानी प्रसाद मिश्र की एक कविता है -

जी हां हुज़ूर, मैं गीत बेचता हूं,

मैं तरह-तरह के गीत बेचता हूं,

मैं किसिम-किसिम के गीत बेचता हूं !

जी, माल देखिये दाम बताऊंगा,

बेकाम नहीं हैं काम बताऊंगा,

कुछ गीत लिखे हैं मस्ती में मैंने,

कुछ गीत लिखे हैं पस्ती में मैंने,

यह गीत सख़्त सर-दर्द भुलाएगा,

यह गीत पिया को पास बुलाएगा !
जी, पहले कुछ दिन शर्म लगी मुझको,
पर बाद-बाद में अक़्ल जगी मुझको,
जी, लोगों ने तो बेच दिये ईमान,
जी, आप न हों सुनकर ज़्यादा हैरान-
मैं सोच-समझकर आख़िर,
अपने गीत बेचता हूं,
जी हां हुजूर, मैं गीत बेचता हूं,
मैं किसिम-किसिम के गीत बेचता हूं !
यह गीत सुबह का है, गाकर देखें,
यह गीत ग़ज़ब का है, ढाकर देखें,
यह गीत ज़रा सूने में लिक्खा था,
यह गीत वहां पूने में लिक्खा था,
यह गीत पहाड़ी पर चढ़ जाता है,
यह गीत बढ़ाए से बढ़ जाता है !
यह गीत भूख और प्यास भगाता है,
जी, यह मसान में भूख जगाता है,
यह गीत भुवाली की है हवा हुज़ूर,
यह गीत तपेदिक की है दवा हुजूर,
जी, और गीत भी हैं दिखलाता हूं,
जी, सुनना चाहें आप तो गाता हूं।
जी, छन्द और बेछन्द पसंद करें,
जी अमर गीत और वे जो तुरत मरें !
ना, बुरा मानने की इसमें क्या बात,
मैं ले आता हूं क़लम और दावात,

इनमें से भाए नहीं , नए लिख दूं,
मैं नए पुराने सभी तरह के गीत बेचता हूं
मैं किसिम-किसिम के गीत बेचता हूं!
जी, छन्द और बेछन्द पसंद करें,
जी अमर गीत और वे जो तुरत मरें !
ना, बुरा मानने की इसमें क्या बात,
मैं ले आता हूं क़लम और दावात,
इनमें से भाए नहीं, नए लिख दूं,
मैं नए पुराने सभी तरह के गीत बेचता हूं
मैं किसिम-किसिम के गीत बेचता हूं!
जी, गीत जनम का लिखूं, मरण का लिखूं
जी, गीत जीत का लिखूं, शरण का लिखूं,
यह गीत रेशमी है, यह खादी का,
यह गीत पित्त का है, यह बादी का !
कुछ और डिजाइन भी हैं, यह इल्मी
यह लीजे चलती चीज़, नई फ़िल्मी,
यह सोच-सोचकर मर जाने का गीत,
मैं लिखता ही तो रहता हूं दिन-रात,
तो तरह-तरह के बन जाते हैं गीत !
जी, बहुत ढेर लग गया, हटाता हूं,
ग्राहक की मर्जी, अच्छा जाता हूं,
या भीतर जाकर पूछ आइये आप,
है गीत बेचना वैसे बिलकुल पाप,
क्या करूं मगर लाचार
हारकर गीत बेचता हूं !

जी हां, हुज़ूर मैं गीत बेचता हूं !

धर्मवीर भारती ने अंधा युग में जीवन के संत्रास को पकड़ने की कोशिश की तो कुंवर नारायण ने मिथक के माध्यम से सत्य का प्रश्न उठाया| विजय देव नारायण साही ने इसी समय लघु मानव का प्रश्न उठाया | रघुवीर सहाय की कविता में राजनीतिक विद्रुपता की स्थिति देखने को मिलती है | सर्वेश्वर दयाल सक्सेना व लक्ष्मीकांत वर्मा की कविताएं सामाजिक विडंबना को पकड़ती हैं| सर्वेश्वर की भेड़िया कविता को देखें -

भेड़िया ग़ुर्राता है

तुम मशाल जलाओ।

उसमें और तुममें

यही बुनियादी फ़र्क़ है

भेड़िया मशाल नहीं जला सकता।

अब तुम मशाल उठा

भेड़िए के क़रीब जाओ

भेड़िया भागेगा।

करोड़ों हाथों में मशाल लेकर

एक-एक झाड़ी की ओर बढ़ो

सब भेड़िए भागेंगे।

फिर उन्हें जंगल के बाहर निकाल

बर्फ़ में छोड़ दो

भूखे भेड़िए आपस में ग़ुर्राएँगे

एक-दूसरे को चीथ खाएँगे।

भेड़िए मर चुके होंगे

और तुम?

तीन

भेड़िए फिर आएँगे।

अचानक

तुममें से ही कोई एक दिन

भेड़िया बन जाएगा

उसका वंश बढ़ने लगेगा।

भेड़िए का आना ज़रूरी है

तुम्हें ख़ुद को चहानने के लिए

निर्भय होने का सुख जानने के लिए

मशाल उठाना सीखने के लिए।

इतिहास के जंगल में

हर बार भेड़िया माँद से निकाला जाएगा।

आदमी साहस से, एक होकर,

मशाल लिए खड़ा होगा।

इतिहास ज़िंदा रहेगा

और तुम भी

और भेड़िया?

लक्ष्मीकांत वर्मा की कविता की पंक्ति देखें -

महाराज बधाई हो! महाराज की जय हो।

युद्ध नहीं हुआ—

लौट गए शत्रु।

वैसे हमारी तैयारी पूरी थी

चार अक्षौहिणी थीं सेनाएँ,

दस सहस्त्र अश्व,

लगभग इतने ही हाथी।

कोई कसर न थी!

युद्ध होता भी तो

नतीजा यही होता।

न उनके पास अस्त्र थे,

न अश्व,

न हाथी,

युद्ध हो भी कैसे सकता था?

निहत्थे थे वे।

उनमें से हरेक अकेला था

और हरेक यह कहता था

प्रत्येक अकेला होता है!

जो भी हो,

जय यह आपकी है!

बधाई हो!

राजसूय पूरा हुआ,

आप चक्रवर्ती हुए—

वे सिर्फ़ कुछ प्रश्न छोड़ गए हैं

जैसे कि यह—

कोसल अधिक दिन नहीं टिक सकता,

कोसल में विचारों की कमी है!

अर्थ यह है कि नयी कविता अपनी व्याप्ति में जीवन के बड़े प्रश्नों को समेट लेती है|

1.5 छायावादोत्तर कविता: अन्य संदर्भ

छायावादोत्तर कविता के सन्दर्भ में दो मत हैं, एक छायावाद से ठीक बाद की कविता का; यानी 1947 या 1950 तक की कविता का... और दूसरे, छायावाद के बाद लिखी गयी कविता का| पहला मत ज्यादा उचित है, क्योंकि छायावाद के बाद रची गयी सभी कविताओं का छायावाद से सीधा कोई संबंध नहीं बैठ पाता| दूसरे छायावादोत्तर शब्द से छायावाद की अर्थ संगति बैठती है...और राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता, हालावाद, प्रगतिवाद या प्रयोगवाद से इसकी संगति बैठ जाती है|

साठोत्तरी कविता /अ-कविता

1960 के बाद की कविता को साठोत्तरी कविता व अ कविता के नाम से सम्बोधित किया गया| एंटी पोएट्री आंदोलन की नकल पर ही इसे अ कविता कह दिया गया| अ कविता में एक विद्रोह और अस्वीकार का भाव है| जगदीश गुप्त ने इस दौर में चले 40 काव्य आंदोलन की सूची दी है | ये छोटे -छोटे कविता आंदोलन थे... और इनका ध्येय स्थापित मान्यताओं पर प्रश्न खड़ा करना था, न कि नयी स्थापनाएं देना| यानी यह नकारवादी आंदोलन था |

मोहभंग की कविता

सन 1965-66 तक आते -आते हिंदी कविता में मोहभंग की स्थिति मुखर हो चली थी| इस दौर के कवियों पर अमेरिकी कवि इलेन गलिंसबर्ग का प्रभाव भी पड़ा और नक्सलबाड़ी आंदोलन का भी | देश की आजादी के बाद युवाओं का सरकार के प्रति मोहभंग हुआ| इस मोहभंग ने एक आक्रोश, विद्रोह को जन्म दिया | हिंदी कविता के मुहावरे बदले| नयी भाषा बनी...और हिंदी कविता जनवाद के नये रूप में हमारे सामने उपस्थित हुई|

मोहभंग की कविता का नेतृत्व राजकमल चौधरी ने किया| राजकमल चौधरी की कविताएं विद्रोह, आक्रोश से युक्त हैं | राजकमल चौधरी की पंक्ति है -'व्यवस्था /मारती नहीं है / बस / झुका देती है / धीरे /धीरे '| राजकमल चौधरी का प्रभाव उस युग के दूसरे कवियों पर पड़ा| धूमिल, चंद्रकांत देवताले, अरुण कमल, मंगलेश डबराल, लीला धर जगूड़ी आदि इस आंदोलन की ही उपज हैं|

धूमिल अपने मुहावरे और व्यंग्य के कारण इस धारा के सबसे चर्चित कवि हैं | धूमिल को दूसरे प्रजातंत्र की तलाश है - यह जनतंत्र/ जिसकी

रोज सैकड़ों बार हत्या होती है और हर बार वह भेड़ियों की जुबान पर जिन्दा है।' जनतन्त्र जल रहा है, उसका नक्शा ट्रैफिक पुलिस के चेहरे पर अक्स है। सुरक्षा का सवाल व्यर्थ हो गया है क्योंकि 'और वह सुरक्षित नहीं है/जिसका नाम हत्यारों की सूची में नहीं है।' संसद के बारे में उसका विचार है- 'अपने यहाँ संसद- तेली की वह घानी है/जिसमें आधा तेल है/आधा पानी है।' 'प्रजातन्त्र के विरुद्ध' स्वयं एक कविता है।

दूसरे प्रजातन्त्र को खोज रहा है। कोई रास्ता नहीं मिलता। वह वामपंथ की संभावनाएँ टटोलता है, बायें हाथ का समर्थन करता है। एक अन्य स्थान पर कवि कहता है- 'लोकतन्त्र के इस अमानवीय संकट के समय/कविता के जरिए/मैं भारतीय/वामपंथ के चरित्र को/भ्रष्ट होने से बचा सकता हूँ।' एक जगह धूमिल लिखते हैं - 'अपने यहाँ संसद / तेली की वह घानी है / जिसमें आधा तेल है /आधा पानी है '| नक्सलबाड़ी के प्रति धूमिल आशावादी है - भूख से /तनी हुई / मुट्ठी का नाम / नक्सलबाड़ी है '|

मोहभंग के सभी कवि व्यवस्था के प्रति विद्रोही हैं |

जनवाद और विमर्श

1975 तक आते-आते मोहभंग की कविता जनवाद के नारे में ढल जाती है| जनवादी लेखक संघ, जन संस्कृति मंच आदि लेखक संगठनों की स्थापना भी इसी समय होती है और नुक्कड़ नाटकों के व्यापक मंचन भी| कविता में राजेश जोशी, ज्ञानेंद्रपति, असद जैदी, अरुण कमल आदि कवि जनवाद से प्रभावित हैं| जनवादी कविता आंदोलन व्यापक तौर पर प्रगतिवादी कविता आंदोलन का ही विस्तार समझना चाहिए|

1990 के बाद की हिंदी कविता विमर्श केंद्रित होती चली गयी| इस विमर्श का व्यापक या आधार कारण भूमण्डल की स्थितियाँ थीं| उत्तर आधुनिक सैद्धांतिकी में हाशिया, केंद्र में आ जाता है| विमर्श केंद्रित साहित्य के केंद्र में आने की भी सामाजिक-सांस्कृतिक स्थितियाँ थीं| दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श जैसे कई विमर्श साहित्य के केंद्र में आते चले गए|

21 वीं सदी की कविता

21 वीं सदी की कविता विमर्श केंद्रित तो थी ही, साथ ही विभिन्न मनोवृतियों की भंगिमाओं की कविता भी बनती है| इस समय की कविता में न तो कोई नायक है और न कोई केंद्रीय थीम| इसे कोलाज की कविता कहा जा सकता है| इस समय की कविता पर लोकप्रिय साहित्य का प्रभाव भी पड़ा| आँचलिक साहित्य के कवि भी मुख्यधारा की कविता में अपना हस्तक्षेप करने लगे| इससे केंद्र टूटे|

कविता में अनुभूति की व्यापक वृत्ति की बजाय छोटे-छोटे अनुभव खंड प्रभावी होते चले गए| गद्य और यँत्र के प्रभाव ने कविता को व्यापक प्रभावित किया| विचार का प्रभाव तो कविता पर पड़ा, किंतु विचारधारा की कमी महसूस की गयी| कविता, आंदोलन से कट कर स्वयं विमर्श बन गयी|

अभ्यास प्रश्न)2

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिये |

1- माखन लाल चतुर्वेदी....... धारा के कवि हैं| (प्रगतिवाद / प्रयोगवाद / हालावाद / राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता धारा)

2- अज्ञेय ने....... का संपादन किया| (तार सप्तक / रूपाभ /हंस)

3- अँधेरे में कविता के रचनाकार........ हैं | (मुक्तिबोध / अज्ञेय / दिनकर)

4- कलगी बाजरे की कविता........ धारा की कविता है | (प्रगतिवाद / प्रयोगवाद / हालावाद / छायावाद)

5- धूमिल......... कविता आंदोलन के कवि हैं| (अ-कविता / जनवादी कविता / मोहभंग / प्रयोगवाद)

1.6 छायावादोत्तर कविता: भाषाई प्रयोग

छायावाद और छायावादोत्तर ये दो पद हिंदी कविता के दो महत्वपूर्ण पद हैं| छायावादी कविता के माध्यम से हिंदी कविता आधुनिक बन रही थी| छायावाद के माध्यम से हिंदी कविता ब्रजभाषा को छोड़कर खड़ी बोली में अपना अस्तित्व ग्रहण कर रही थी| छायावाद ने नये बिम्ब, प्रतीक और भंगिमा, हिंदी कविता को दिये ; किंतु छायावादी कविता एक अलग मन मिजाज़ की कविता थी| छायावादी कविता में अतिशय भावुकता के तत्व थे| इसकी भाषा भी आलंकारिक थी| छायावादोत्तर कविता ने भाषा को नये तेवर दिये| छायावाद की रुमानी भाषा अब ज्यादा यथार्थ के क़रीब आयी | दिनकर की भाषा देखें -

देह डूबने चली अतल मन के अकूल सागर में

X X X

वह विद्युन्मय स्पर्श तिमिर है पाकर जिसे त्वचा की नींद टूट जाती, रोमों में दीपक जल उठते हैं|

X XX

रेंगने लगते सहस्रों साँप सोने के रुधिर में

X X

रूप की आराधना को मार्ग/आलिंगन नहीं तो और क्या है ?

हरिवंश राय बच्चन की भाषा देखें -

क्षतशीश मगर, नतशीश नहीं **** अग्निपथ, अग्निपथ, अग्निपथ

बालकृष्ण शर्मा नवीन की पंक्ति देखें -

कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाये एक हिलोर इधर से आये, एक हिलोर उधर से आये प्राणों के लाले पड़ जायें, त्राहि-त्राहि स्वर नभ में छाये बरसे आग, जलद जल जाये, भस्मसात भूधर हो जाये

भगवती चरण वर्मा की पंक्ति देखें -

हम दीवानों की क्या हस्ती

हैं आज यहाँ कल वहाँ चले

मस्ती का आलम साथ चला

हम धूल उड़ाते जहाँ चले

स्पष्ट तौर पर यह भाषा छायावादी रोमानी भाषा से भिन्न है| अपने भावों को सीधे-सीधे कह देना छायावादोत्तर कविता की विशेषता है| इसी प्रकार छायावादोत्तर भाषा भी प्रयुक्त हुई है| इसी प्रकार प्रगतिवादी और प्रयोगवादी कविता की भाषा को भी देखा जा सकता है|

अभ्यास प्रश्न) 3

टिप्पणी कीजिये-

1. प्रगतिवाद और प्रगतिशील

....
....

2. छायावाद और राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता

....
....
....
....
....

3. नयी कविता

....
....
....

1.7 छायावादोत्तर कविता की उपलब्धियां

छायावादोत्तर कविता की अनेक उपलब्धियां थीं, जिनके कारण इस धारा को विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ| यहाँ हम संक्षेप में कुछ प्रमुख बिंदुओं के माध्यम से इसे समझने का प्रयास करेंगे|

* छायावादोत्तर साहित्य ने हिंदी कविता को आधुनिक बनाने का रास्ता तैयार किया| प्रगतिवादी एवं प्रयोगवादी साहित्य धारा के माध्यम से हिंदी कविता मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद से आधुनिक वैचारिक दर्शनों की ओर मुड़ी| हिंदी कविता में तार्किकता आयी और वह आधुनिक मन मिजाज़ की कविता बन सकी|

* प्रगतिवादी काव्य आंदोलन, यूँ तो महज कुछ वर्ष ही चला, किंतु इसने हिंदी कविता को बहुत दूर तक प्रभावित किया| प्रगतिवाद का ही विस्तार अ कविता, मोहभंग की कविता, जनवादी कविता व विमर्श केंद्रित कविता में अपने-अपने ढंग से हुआ| प्रगतिवादी साहित्य के माध्यम से ही प्रगतिशील साहित्य का प्रश्न हिंदी साहित्य में आया... और हिंदी कविता का अनिवार्य अंग बन गया|

* प्रयोगवादी कविता का प्रभाव भी बहुत लम्बे समय तक रहा| प्रयोगवाद का ही विस्तार नयी कविता और तीसरे, चौथे सप्तक में हुआ| प्रयोगवादी कविता आंदोलन ने साहित्य और सत्य के प्रश्न को प्रयोग से जोड़ा| अज्ञेय ने नये उपमान का प्रश्न उठाया| नये सत्य के लिए नये भाषा प्रयोग अनिवार्य होते हैं, यह समझ प्रयोगवादी साहित्य ने किया|

* प्रयोगवादी साहित्य ने हिंदी कविता में विसंगति, विडंबना, अंतर्विरोध व संत्रास आदि पदों को हिंदी कविता से परिचित कराया तथा हिंदी कविता को आधुनिक वृत्ति से परिचित कराया|

* हालावाद आंदोलन ने साहित्य में वैयक्तिक मनोवृत्ति को प्रतिष्ठित किया| छायावाद ने वैयक्तिक वृत्ति की प्रतिष्ठा की थी, किंतु यह वैक्तिकता रोमानी थी| हालावाद ने वैयक्तिक वृत्ति को ज्यादा सहज बनाया|

* हालावाद ने साहित्य में असाम्प्रदायिक मनोवृत्ति को प्रतिष्ठित किया| बैर कराते मंदिर-मस्जिद/ मेल कराती मधुशाला जैसी पंक्तियों के माध्यम से बच्चन ने हिंदी कविता को व्यस्क बनाया|

* राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता ने हिंदी कविता को राष्ट्रीय संस्कृति से जोड़ा| छायावाद के दौर की राष्ट्रीयता नवजागरण की पोशाक में प्रकट हुई थी, किंतु राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता आंदोलन ने

राष्ट्रीय तत्वों को, भावों को सीधे तौर पर प्रत्यक्ष किया| छायावादी कवि जिस प्रकार अपने भावों में अमूर्तन किया करते थे, इस धारा के कवियों ने ऐसा नहीं किया| माखन लाल चतुर्वेदी ने लिखा-

मुझे तोड़ लेना बनमाली !

उस पथ में देना तुम फेंक

मातृभूमि पर शीश चढ़ाने

जिस पथ जावें वीर अनेक।

छायावादी कविता तक ऐसी अभिव्यक्ति देखने को नहीं मिलती|

1.8 सारांश

छायावादोत्तर काव्य संग्रह की यह प्रथम इकाई है| इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपने जाना कि -

* छायावाद के पश्चात हिंदी कविता अनेक काव्य धाराओं की ओर मुड़ चली| छायावाद के उत्तर काल में ही छायावादी कवि प्रगतिवाद और प्रयोगवादी वृत्तियों की ओर मुड़ चले थे| सुमित्रानंदन पंत ने प्रगतिवादी पत्र रूपाभ का संपादन प्रारंभ कर दिया था तो निराला भी छायावादी वृत्तियों से अलग प्रकार की कविताएं लिखने लगे थे|

* राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता ने हिंदी कविता में राष्ट्रीय तत्वों को मुखरित किया...और कविता को अमूर्त तत्वों से मुक्त किया| दिनकर, माखन लाल चतुर्वेदी आदि कवियों ने भाषा को प्रांजल बनाया|

* हालावाद के कवियों ने कविता में व्यक्ति स्वतंत्रता को नया आयाम प्रदान किया| कविता अब व्यक्ति मनोभाव को बिना दार्शनिक छाया के व्यक्त कर सकती थी| बच्चन आदि कवियों ने अपने मनोभावों को अकुंठ रूप में व्यक्त किया|

* प्रगतिवादी कविता ने हिंदी साहित्य को प्रगतिशील दृष्टि प्रदान की| साहित्य अब यथार्थ के क़रीब आया और तार्किक दृष्टि से संपन्न हुआ| प्रगतिवादी साहित्य ने पहली बार कविता में पक्षधरता का प्रश्न उठाया| प्रगतिवादी साहित्य के बाद जनता के साहित्य की वर्गीय दृष्टि ज्यादा स्पष्ट हुई|

* प्रयोगवादी साहित्य ने कविता में भाषा और प्रयोग के संबंध को नये ढंग से देखने की दृष्टि विकसित की| नया सत्य नई भाषा और नये उपमान में ही कहा जा सकता है, इस तथ्य को प्रयोगवादी कविता ने स्थापित किया|

* प्रयोगवाद के बाद की कविता के अनेक रूप देखने को मिलते हैं, किंतु ये कविताएं छायावादोत्तर कविता के अंतर्गत शामिल नहीं की जा सकतीं;

1.9 शब्दावली

* छायावादोत्तर कविता - छायावाद के बाद की कविता के लिए प्रचलित शब्द

* उत्तर छायावाद - छायावाद का उत्तर काल (1930-1936)

* राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता - राष्ट्रीयता को मुखरित करने वाला आंदोलन

* कुंतल - बाल, केश

* नक्षत्र- निकर - नक्षत्र की राशि, समूह

* श्रृंगाल - सियार, गीदड़

* प्रफुल्लित - आनंद की स्थिति

* स्वच्छन्दतावाद - समाज की रूढ़ियों को तोड़ने की वृत्ति

* मांसलवादी - शारीरिक प्रेम को केंद्र में रखकर लिखी गयी कविता

* हालावाद - प्रेम और मस्ती का काव्य, बच्चन द्वारा प्रवर्तित आंदोलन

*प्रगतिशील - समाज को आगे बढ़ाने वाली वृत्ति

*प्रयोगवाद - प्रयोग के आग्रह को लेकर चला कविता आंदोलन

*अ-कविता - एंटी पोएट्री का हिंदी अनुवाद, निषेधपूर्ण कविता धारा

1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1)

1. सही

2.सही

3. गलत

7.सही

5.सही

2)

1. राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता धारा

2. तार सप्तक

3. मुक्तिबोध

7. प्रयोगवाद

5. मोहभंग

1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिंदी साहित्य का इतिहास (सम्पादित)- डॉ नगेंद्र, मयूर पेपर बैक्स

2. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास - डॉ बच्चन सिंह, राधाकृष्णन प्रकाशन

3. हिंदी साहित्य का इतिहास - रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा

7. प्रगतिवाद, रेखा अवस्थी, राजकमल प्रकाशन

5. तारसप्तक- (सम्पादित) अज्ञेय

1.12 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियां - नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन

2. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी, राधाकृष्णन प्रकाशन

1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रगतिवाद पर निबंध लिखिए
2. प्रयोगवादी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों पर विचार कीजिये

इकाई 2 राष्ट्रीय भावना और हिन्दी कविता

इकाई की रुपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 राष्ट्रीय भावना और हिन्दी कविताः राजनीतिक, सांस्कृतिक साहित्यिक संदर्भ

 2.3.2. राजनीतिक सदर्भ

 2.3.2. सांस्कृतिक संदर्भ

 2.3.3 साहित्यिक संदर्भ

2.4 राष्ट्रीय भावना और हिन्दी कविता

 2.7.1 राष्ट्रीयता की अवधारणा

 2.7.2 राष्ट्रीय भावना और हिंदी कविता

 2.7.3 आधुनिक साहित्य में राष्ट्रीयता

2.5 राष्ट्रीय भावना और हिन्दी कविता की मूल संवेदना

 2.5.1 राष्ट्र प्रेम

 2.5.2 समाज सुधार

 2.5.3 विद्रोह/क्रान्ति

 2.5.4 नये विमर्श

2.6 सारांश

2.7 शब्दावली

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.1 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

राष्ट्रीयता साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है, जिसमे राष्ट्र की आशा - आकांक्षाओं को सशक्त अभिव्यक्ति प्राप्त हुई हो। राष्ट्रीय शब्द राष्ट्र का सूचक है, विशेषण है। राष्ट्रीय साहित्य हम किसे कहें? यह विचारणीय प्रश्न है। सर्वप्रथम तो राष्ट्रीय साहित्य में समस्त राष्ट्र के जन - चित्रण पर बल दिया जाता है, लेकिन यह जरूरी नहीं है। किसी एक जाति - सभ्यता - संस्कृति को अपनी संपूर्णता में चित्रित करना भी राष्ट्रीय कविता के अंतर्गत आ सकता है। राष्ट्रीय के संदर्भ में

कभी - कभी क्लासिकल साहित्य की बात भी उठती है। यूनान - रोम का साहित्य हो या भारत में संस्कृत साहित्य सभी राष्ट्रीय साहित्य का ही बोध कराते हैं। राष्ट्रीय साहित्य के पर्याय के रूप में कभी - कभी जातीय सहित्य में सभ्यता संस्कृति भाषा - त्यौहार पर बल होता है जबकि राष्ट्रीय साहित्य में सभ्यता - संस्कृति - भाषा को आधार बना करके राष्ट्रीय संवेदना-यानी राष्ट्रीय अनुभूति या भावना को चित्रित करने का प्रयास किया जाता है। अपने व्यापक रूप में किसी देश - भाषा में लिखित साहित्य भी राष्ट्रीय साहित्य के अंतर्गत आ सकता है, लेकिन राष्ट्रीय साहित्य को हम इतने व्यापक संदर्भ में प्रयोग नहीं करते । अपने संकुचित रूप में राष्ट्रीय साहित्य से तात्पर्य उद्बोधन परक स्वातंत्रय चेतना से युक्त गीत से है।

हिन्दी कविता में राष्ट्रीयता के तत्व यत्र - तत्र बिखरे हुए हैं। आदिकालीन साहित्य में युद्ध एवं श्रृंगार की अभिव्यक्ति मिलती है, जिसमें राष्ट्रीयता के तत्व दब से गए हैं। आदिकालीन साहित्य के ऊपर यह आरोप लगाया गया है कि वह ऐतिहासिक बोध से हीन साहित्य हैं, उसमें जातीय चेतना का अभाव हैं। हमें यह स्मरण रखना होगा कि भारत में राष्ट्रीयता की अवधारण आदिकाल तक विकसित नहीं हो पाई थी। भक्तिकालीन साहित्य प्रथम भारतीय नवजागरण का साहित्य कहा गया हे। किन्तु भक्तिकाल का नाजागरण भी धार्मिक -सांस्कृतिक धरातलों पर ज्यादा विकसित होता है। राष्ट्रीय गीत हमेशा राष्ट्रीय समस्याओं या राष्ट्रीय समाधान की खोज में तत्पर होते हैं। रीतिकालीन साहित्य ज्यादातर श्रृंगारिक मनोभावना की ऊपज है, किन्तु भूषण सूदन जैसे कवियों ने वीरगाथात्मक कविताएँ रचकर अलग परम्परा का पालन किया है। भूषण की शिवाजी एवं छत्रसाल पर लिखी गई कविताएँ व्यापक रूप से जातीय चेतना की रचनाएँ हैं, किन्तु उनमें सामंती या दरबारीपन भी कम नहीं हैं। आधुनिक रूप में राष्ट्रीयता के बीज हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु की रचनाओं में सुरक्षित हैं। भारतेन्दु में राजभक्ति एवं राष्ट्र भक्ति का द्धन्द्ध कम नहीं है, किन्तु उनकी कविता का प्रधान स्वर राष्ट्रीय चेतना ही है। द्विवेदीकालीन साहित्य की मूल चेतना राष्ट्रीय नवजागरण ही है। इस संदर्भ मे छायावाद युग का साहित्य विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। जयशंकर प्रसाद के नाटक एवं निराला एवं प्रसाद की लम्बी कविताएँ राष्ट्रीय साहित्य के अंतर्गत ही आयेंगे। छायावाद के पश्चात् राष्ट्रीय - सांस्कृतिक कविता अपने राष्ट्रीय भाव बोध के कारण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प्रगतिवादी साहित्य अपनी जनपक्षधरता के कारण राष्ट्रीय साहित्य का ही अगं कहा जायेगा। आइये अब हम राष्ट्रीयता की अवधारणा को विस्तार से साहित्यिक संदर्भ में समझें।

2.2 उद्देश्य

आधुनिकता एंव समकालील कविता से संबंधित खण्ड की यह पहली इकाई है, इस इकाई में हिन्दी कविता के संदर्भ में राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति की खोज की गई है। इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप:

- राष्ट्रीय की अवधारणा से परिचित हो सकेंगे।

- राष्ट्रीय साहित्य की जानकारी प्राप्त का सकेंगे।
- विभिन्न राष्ट्रीय साहित्यकारों के साहित्य से परिचित हो सकेंगे।
- समकालीन राष्ट्रीय साहित्य की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दावलियों से परिचित हो सकेंगे।

2.3 राष्ट्रीय भावना और हिन्दी कविता: राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक संदर्भ

राष्ट्रीय भावना का जन्म क्यों होता है ? वह कौन सी परिस्थितियाँ हैं, जिसके कारण राष्ट्रीयता के तत्व प्रभावी हो जाते हैं ? मध्यकाल तक की कविता का स्वरूप आधुनिक काल तक आते - आते परिवर्तित क्यों हो जाता है ? राष्ट्रीयता की भावना को कविता अपनी किन शर्तों पर स्वीकार करती है ? इन प्रश्नों का समुचित समाधान हमें तभी मिल सकता है जब हम हिन्दी कविता के राजनीतिक, सांस्कृमिकस ,साहित्यिक ,संदर्भो कर जानकारी प्राप्त कर लें।

2.3.1 राजनीतिक संदर्भ

जैसा कि पूर्व में सूचित किया गया है कि राष्ट्रीयता की आधुनिक अवधारणा का संबंध आधुनिक नवजागरणवादी मनोवृत्ति से है। लेकिन इस मनोवृत्ति तक पहुँचने के लिए भारतीय समाज को लम्बे ऐतिहासिक दायित्व से गुजरना पड़ा है। मुगल सत्ता के पतन के दौर में ब्रिटिश सत्ता का आविर्भाव नयी राजनीतिक परिस्थितियों का सूचक था। मुगल सत्ता अपने उत्तरार्द्ध में पतनोन्मुख हो चुकी थी। औरंगजेब की कट्टर नीति ने आगे अंग्रेजो को फूट डालो राज करो' की नीति को बनाने में अपना योगदान दिया। ब्रिटिश पराधीनताके समय में राष्ट्र के सचेत राजनीतिज्ञों ने महसूस किया कि बिना राजीतिक आजादी के राष्ट्रीयता की अवधारणा फलीभूत नहीं हो सकती।

2.3.2. सांस्कृतिक संदर्भ

भारतवर्ष विश्व के प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है। जाहिर है इसकी संस्कृति भी विश्व की प्राचीन संस्कृतियों में से एक है, किसी संस्कृति का प्राचीन होना महानता की कसौटी नहीं है । महानता की कसौटी है उस देश की संस्कृति का महान् विचारो एवं मूल्यों को धारण करने की शक्ति के होने से। भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता इसकी व्यापकता, उदारता एवं महान् जीवन - मूल्यों से जुड़ाव ही है। भारतीय संस्कृति के भीतर अपने दर्शनिक मत (अद्वैत/सांख्य/मीमांसा/योग, बोद्ध - जैन इत्यादि) तो हैं ही , इसके अतिरिक्त मुस्लिम, ईसाई , पारसी जैसे बाहरी मत भी इसमे शामिल हैं। संस्कृति राष्ट्र को एक सूत्रमें जोड़ती है। प्रश्न यह है कि संस्कृति का राष्ट्रीयता भाव बोध से क्या सम्बन्ध है? या संस्कृति राष्ट्रीयता के विकासमें अपना योगदान किस प्रकार देती है ? उच्च संस्कृति अपने भीतर राष्ट्रीयता बोध को धारण किये होती है। सांस्कृति क्षरणशीलता के दौर में राष्ट्रीयता बोध का भी क्षरण होता है। कभी - कभी राष्ट्रीयता

भाव - बोध को उन्नत करने में सांस्कृतिक बोध प्रभावी भूमिका निभाता है। भारतीय आधुनिक इतिहास हमें बताता है कि पुनरूत्थान वादी भावना ने राष्ट्रीयता बोध को उन्नत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

2.3.3 साहित्यिक पृष्ठभूमि

राष्ट्रीयता भावना की तीव्रता से साहित्य का क्या सम्बन्ध है? राष्ट्रीयता भावना के इतिहास में हम देखते हैं कि प्रायः देशों का जातीय ग्रन्थ उस देश का साहित्य ही है। महाभारत, रामायण, इलियड, ओडिसी इत्यादि ग्रनथ हमें संकेत करते हैं कि उस देश की राष्ट्रीय संस्कृति वहाँ के साहित्यिक ग्रन्थ ही हैं। चूँकि किसी भी देश का क्लासिक साहित्य वहाँ की समस्त संभावनाओं का निचोड़ होता है, इसलिए वह हर युग में उस समाज को दिशा देता रहता है। और इसीलिए उस देश की जातीय चेतना निर्मित करने में उस देश का श्रेष्ठ साहित्य हमेशा प्रेरक भूमिका निभाता करता है।

अभ्यास प्रश्न 1)

(क) नीचे दिये गये शब्दों 10 पंक्तियों में टिप्पणी लिखिए।

1) राष्ट्रीयता

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) राष्ट्रीयता और कविता

....
....
....
....

....

....

....

....

....

....

(ख) सत्य/ असत्य बताइए :-

2. राष्ट्रीयता साहित्य के संदर्भ मे क्लासिकल साहित्य की गणना की जाती है।

2. उद्बोधन परक सवातंत्रय चेतना युमृगीत राष्ट्रीयता गीत है।

3. भूषण भक्तिकालीन कवि थे।

7. राष्ट्र गीत और राष्ट्रीय कविता एक है।

5. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की कविता राष्ट्रीय भाव बोध से पूर्ण है।

2.4 राष्ट्रीय भावना और हिन्दी कविता

कोई भी देश , जाति, साहित्य, साहित्यकार, बिना राष्ट्रीय भाव धारा को आत्मसात किए बिना लम्बे समय तक जीवित नहीं रह सकता। राष्ट्रीय भावना कभी - कभी प्रकट रूप में दिखती है कभी वह सूक्ष्म रूप में अभिव्यक्त होती है। राष्ट्रीयता का संस्कृति - विचार एवं जातीय चेतना से गहरा संबंध है। इसीलिए राष्ट्रीय साहित्य भी किसी देश के आचार - विचार, भावधारा, कल्पना, संस्कृति को अभिव्यक्त करता है। राष्ट्रीयता की अवधारणा अपने आप में इतनी विविधता लिए हुए है कि सहज ही इसको विश्लेषित करना आसान नहीं है। राष्ट्रीय साहित्य की अवधारणा भी काफी जटिलता धारण किए हुए है। आधुनिक युग एवं साहित्य मे राष्ट्रीयता की अवधारणा प्राचीन एवं मध्यकालीन अवधारणा से भिन्न हो जाती है। हिन्दी कविता के संदर्भ्र में हम राष्ट्रीयता की अवधारणा को समझें, इससे पूर्व आइए हम राष्ट्रीयता को समझने का प्रयास करें।

2.7.1 राष्ट्रीयता की अवधारणा

राष्ट्रीय शब्द ’ राष्ट्र’ का सूचक है । राष्ट्र अंग्रेजी शब्द ’नेशन’ के पर्याय में हिन्दी साहित्य या भारतीय समाज में प्रयोग होता है। जिमर ने राष्ट्रीयता को विश्लेषित करते हुए लिखा है - मेरी दृष्टि मे राष्ट्रीयता का प्रश्न सामूहिक जीवन, सामूहिक विकास और सामूहिक आत्मसम्मान से सम्बद्ध है। स्पष्ट है कि जिमर राष्ट्रीयता को सामूहिक जीवन आकांक्षा से जोड़ने की बात करता है। सामूहिकता का सही अर्थ यह हो सकता है कि जब संपूर्ण राष्ट्र को एक इकाई मानकर देखने की

बात की जाती है। एक इकाई के रूप में उभारने का तात्पर्य यह हो सकता है कि कोई राष्ट्र की संस्कृति के प्रतिनिधि विशेषताओं को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करे। संस्कृति के साथ ही जातीय चेतना शब्द भी जुड़ा हुआ है। इस दृष्टि से किसी समृद्ध संस्कृति में महाकाव्य और लोक गीतों का पाया जाना स्वाभाविक है। राष्ट्रीयता की अवधारणा का एक संबंध देशभक्ति की चेतना से भी है। देशभक्ति की चेतना का संबंध देश में फैली असमानता और सत्ता पक्ष द्वारा किया जा रहा कूर एवं अमानवीय आचारण से है। देशभक्ति पूर्ण रचनाएँ अधिकांशत: परतंत्र देशों में लिखी जाती है, क्योंकि इनमें भावात्मक तीव्रता का होना अनिवार्य है। किन्तु देशभक्ति की कविताओं का संबंध जीवन के शाश्वत भावों एवं विचारों से कम होता है। इस प्रकार की रचनाओं का ऐतिहासिक महत्व ज्यादा होता है। राष्ट्रीयता की इस अवधारणा में अपने देश की संस्कृति - उपलब्धि के प्रति सम्मोहन का भाव पाया जाता है। साम्रराज्यवादी देशों में कभी - कभी राष्ट्रीय गीत की रचना अपनी उपलब्धि एवं वर्चस्व बनाये रखनें के लिए भी होता है। लेकिन सही रूप में राष्ट्रीय साहित्य या राष्ट्रीयता की अवधारणा देश की एकता अखण्डता एवं समता की भावना पर टिकी होती है। इस प्रकार राष्ट्रीयता की अवधारणा के दो संदर्भ हो सकते है। एक राष्ट्रीयता का व्यापक संदर्भ जिसमें राष्ट्र में निहित समस्त असमानताओं का चित्रण किया जाता है। दूसरे राष्ट्रीयता का सीमित संदर्भ जिसमे उद्बोधन के माध्यम से राष्ट्र के व्यक्तियों में राष्ट्रीयता की भावना तीव्र की जाती है।

2.7.2 राष्ट्रीय भावना और हिंदी कविता

जैसे कि पूर्व में कहा गया कि किसी भी देश, जाति, सभ्यता-सांस्कृतिक, चेतना आदि के निर्माणमें मुख्य प्रेरक शक्ति राष्ट्रीयता का भाव बोध होता है। जो संस्कृति राष्ट्रीय बोध से संचालित होती है, ऊर्जा प्राप्त करती है वह प्राणवान होती है। समृद्ध संस्कृतियाँ राष्ट्रीय भावधारा को अपने भीतर अनिवार्य रूप से धारण किए होती हैं। यूनान-रोम , भारत जैसे देशों की संस्कृति में राष्ट्रीयता के तत्व घुल -मिल गए है। रामायाण, महाभारत, जैसे महाकाव्य हों या इलियड, ओडिसी, ये क्या राष्ट्रीय भावबोध से अछुते हैं? लेकिन प्रश्न यह भी है कि राष्ट्रीयता का साहित्यिक भावबोध से क्या संबंध है? साहित्य में राष्ट्रीयता का स्वरूप क्या हो, यह प्रश्न भी महत्वपूर्ण है। आचार्य रामस्वरूप चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास में यह प्रश्न उठाया हे कि हर राष्ट्रीयता कविता नहीं होती। उन्होंने लिखा है - 'झंडा ऊँचा रहे हमारा' में राष्ट्रीयता ही राष्ट्रीयता है, कविता नहीं ; यह अलग बात है कि इस गान को गाते - गाते न जाने कितने स्वतंत्रता - सेनानियों ने अपनी जान की बाजी लगा दी। राष्ट्रीयता जहाँ कविता बनी है वे प्रसाद और निराला के गीत हैं। '' ;पृष्ठ 40) स्पष्ट है राष्ट्रीयता को भी कविता की शर्त पर ही स्वीकार किया जा सकताहै । 'वंदे मातनम्' या 'जनगण मन अधिनायक जय हे' राष्ट्र गीत है, राष्ट्रीय कविता नहीं इस भेद को हमें समझना होगा। राष्ट्र गीत में सामूहिक भावनात्मक उद्रेग होता है, जबकि राष्ट्रीय कविता में व्यैक्तिक - जातीय चेतना की अभिव्यक्ति । यानी व्यैक्तिक संवेदना के माध्यम से जातीय-

सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति। हिन्दी साहित्य के संदर्भ में भी राष्ट्रीयता के विभिन्न् पहलुओं को ध्यानमें रखना होगा।

हिन्दी साहित्य का आदिकाल अपने वीरता पूर्ण साहित्य के लिए स्मरणीय है। आदिकालीन साहित्य जहाँ एक ओर वैराग्य - श्रृंगार की अभिव्यक्ति करता है, वहीं दूसरी ओर वीरता/युद्ध का वातावरण भी निर्मित करता हे। इसी वैविध्यता को ध्यान में रखकर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इसे 'अर्निदिष्ट लोकप्रवृत्ति का युग'कहते है। कुछ लोगो ने आदिकाल का मुख्य प्रतिपाद्य केवल युद्ध माना है तो कुछ लोगों ने श्रृंगार। हांलाकि ज्यादा व्यवस्थित मत यह हैं कि आदिकाल की मुख्य प्रवृत्ति वीरता एवं श्रृंगार है। यहाँ हम 'वीरता' की प्रवृत्ति को राष्ट्रीयता के संदर्भ में विश्लेषित करेंगे। 'वीरता' प्रवृत्ति का प्रेरक भाव उत्साह है। लेकिन यह उत्साह सात्विक होता है। राष्ट्रीय कविताओं में भी उत्साह की अधिकता होती है, खासतौर से राष्ट्र गीतों में। राष्ट्रीयता स्थायी मूल्य जातीय काव्यों यानी महाकाव्यों मे सुरक्षित रहता है लेकिन भावनात्मक उद्रेक गीतों में भी पाये जा सकते है। इस दृष्टि से आदिकालीन कविता का मूल्यांकन कियाजा सकता है। इस संदर्भ में आल्हाखंड की पंक्तियाँ देखें -

"बारह बरस तक कूकर जियें, तेरह बरस जियें सियार।

अठारह बरस तक क्षत्रिय जियें, आगे जीवन को धिक्कार।।"

यानी क्षत्रिय जाति ;हिन्दू सामंती व्यवस्था में जिसे शासन करने का,युद्ध लड़ने तथा जनता की सुरक्षा करने का दायित्व दिया गया था को 18 वर्ष से ज्यादा जीवित रहने का अधिकार नहीं है। क्योंकि आदिकालीन परिस्थितियों में युद्ध की अनिवार्यता एवं अधिकता इतनी ज्यादा थी कि वीर पुरूष का अठारह वर्ष से ज्यादा जिंदा रहना असंभव जैसा था। ज्यादा महत्वपूर्ण यह नहीं है कि युद्ध की अनिवार्यता के कारण वीर पुंरूषो की मृत्यु अनिवाय्र जैसी थी, कविता की मुख्य व्यंजना यह है कि 'आगे जीवन को धिक्कार ' यानी वीरता ही काम्य है, वीरता ही पुरूषार्थ है, वीरता ही धर्म है। हम सब जानते हैं कि आल्हाखंड के गीत राजस्थान, उत्तर प्रदेश समेत पूरे उत्तर भारत में अपनी वीरतापूर्ण ध्वनि के कारण कितने लोकप्रिय रहे हैं। एक दूसरा संदर्भ लें। हेमचन्द्र रचित यह दोहा देखें -

"भल्ला हुआ जो मारिया बहिणि म्हारा कंतु।

लज्जेअहु तु वयसिहअु, जे घर भग्गु एंतु।।

कविता के अनुसार एक स्त्री अपनी सखी से कह रही है कि अच्छा हुआ के मेरा पति युद्ध में मारा गया, अगर वह युद्धसे जीवित लौटता ;भागकर या बिना वीरतापूर्ण ढंग से लड़े, तो मैं अपनी समवयस्काओं ;सखियों के बीच बहुत लज्जित होती। संभवतः किसी भी देश के साहित्य में

वीरतापूर्ण ऐसी उक्ति का मिलना कठिन है। आदिकालीन साहित्य पर यह आरोप लगाया जाता है कि उसमें जातीय चेतना का अभाव है, ऐतिहासिक बोधका अभाव है। अशंतः यह बात सही भी है। राष्ट्रीयता की आधुनिक अवधारणा का विकास आधुनिक काल तक भारत वर्ष में नहीं हो पाया था। आदिकाल तक राज्य ही देश समझे जाते थे। अतः अपने राज्य ; देश के पर्याय रूप में, देश के लिए प्राणोत्सर्ग की कामना करना क्या राष्ट्रीय बोध नहीं है ? आदिकाल की पृष्ठभूमि में हम राष्ट्रीयता की अखिल भारतीय कल्पना/ कामना कैसे कर सकते हैं! भक्तिकालीन कविता का स्वरूप आदिकाल से भिन्न है। इसके कई कारण है। एक तो भक्तिकाल के कवि राजाश्रयी कवि है तो भक्तिकाल के कवि राज्य से दूर लोक के बीच कविता करने वाले। आदिकालीन कविता का प्रतिपाद्य वीरता-श्रृंगार है तो भक्तिकालीन कविता का प्रतिषाद्य समतापूर्ण समाज की स्थापना करना। युग - सन्दर्भ के अनुसार साहित्य में परिवर्तन आ जाना स्वाभाविक ही है। भक्तिकालीन साहित्य मे राष्ट्रीयता की अवधारणा का क्या स्वरूप हैं ? इस प्रश्न को समझना आवश्यक है। इस संदर्भ में हमें यह समझना होगा कि भक्तिकालीन कवि मुख्यतः संत एवं भक्त हैं। अतः उनमें उत्साहपूर्ण राष्ट्रीय उद्बोधनों को ढूँढ पाना व्यर्थ होगा। भक्तिकालीन कवियों की राष्ट्रीयता सूक्ष्म रूप में उनके जीवन - दर्शन में व्याप्त है। कबीरकी सामाजिक चेतना, सूर की रास लीला एवं गो-लोक समाज की रचना करना, तुलसी का रामराज्य एवं कवितावली में वर्णित यर्थाथवादी चित्रण, जायसी की प्रेम - साधना , मीराका प्रति-सामंती समाज बिना ऐतिहासिक बोध के संभव नहीं है। ऐतिहासिक बोध से युक्त रचनाकार अ- राष्ट्रीय कैसे हो सकता है ? यह जरूर है कि भक्तिकालीन कवि देश, जाति, परिवार धर्म से परे विश्व मानवतावाद की कामना करते हैं, जो सही ही ; क्योंकि कट्टर राष्ट्रीयता नाजीवाद को जन्म दे देती है।

रीतिकालीन कविता का मुख्य स्वर रीतिनिरूपण, श्रृंगार एवं दरबारीपन रहा है। महाकवि भूषण इस युग मे अपने वीरतापूर्ण कविता के कारण चर्चित रहें हैं। भूषण कविता में अतिश्योक्ति एवं अलंकारों के आग्रहपूर्ण प्रयोगों के बावजूद उनकी कविता का मूल स्वर जातीय चेतना है। औरंगजेब के विरूद्ध शिवाजी के संघर्ष को अधर्मी के विरूद्ध एक जननायक का संघर्ष बना दिया है। कुछ लोगो ने भूषण को हिन्दू चेतना का कवि भी कहा है। गहराईपूर्वक विचार करने पर यह बात असत्य प्रतीत होती है, क्योंकि हिन्दू होने के कारण भूषण में हिन्दू मिथकों का आना स्वाभाविक है परन्तु(वे एक ऐसे योद्धा के साथ खड़े हैं जो विधर्मी एवं अत्याचारी शासक के खिलाफ प्रतिरोध करता है। जो बात भक्तिकालीन कविताके बारे मे कही गई है, वही बात रीतिकालीन साहित्य पर भी लागू है कि उस समय तक राष्ट्रीयता की आधुनिक अवधारणा का विकास नहीं हो पाया था। आइए अब हम राष्ट्रीयता को आधुनिक साहित्य के संदर्भ में अध्ययन करें तथा उसके स्वरूप से परिचित हों ।

2.7.3 आधुनिक साहित्य में राष्ट्रीयता

राष्ट्रीयता की अवधारणा आधुनिक युग की देन है। नवजागरणवादी चेतना के मूल में राष्ट्रीय भावना महत्वपूर्ण प्रेरक शक्ति के रूप में रही है। सन् 1857 की क्रान्ति ने व्यापक रूप से भारतीय

समाज को सामाजिक सांस्कृतिक - आर्थिक एवं राजनैतिक रूप से प्रभावित किया। भारतेन्दु का साहित्य1857 की क्रान्ति से विशेष रूप से प्रभावित रहा है। डॉ. रामविलास शर्मा ने भारतेन्दु साहित्य को इसीलिए नवजागरण की प्रथम मंजिल कहा है। भारतेन्दु साहित्य की राष्ट्रीयता का भारतीय नवजागरण से गहरा संबंध है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अंग्रेजी राज की लूट का अपनी कविताओं के माध्यम से मार्मिक वर्णन किया है।

अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी।

पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी॥

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र में प्रारंभिक समय में राजभक्ति एवं राष्ट्रभक्ति का द्वन्द्व मिलता है, किन्तु क्रमश भारतेन्दु में राष्ट्रीयता का स्वर मुखर होता गया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी की राष्ट्रीयता अतीत गौरव एवं पुनरूत्थान की भावना से संबंधित है। इसे हम कुछ उदाहरणों के माध्यम से समझ सकते हैं -

''कह गउ विक्रम भोज राम बलि कर्ण युधिष्ठिर

चन्द्रगुप्त चाणक्य कहाँ नासे करिकै थिर

कहँ क्षत्री सब मरै जरे सब गए कितै गिर

कहाँ राज को तौन साज, जेहि जानत है चिर

कहँ दुर्गे सैन - धन, बल गयो, धुरहिधुर दिखात जग

जागो अब तौ खल-बल दलन,रक्षहु अपुनो आर्य मब''

× × ×

''सब भॉति दैन प्रतिकूल होई एहि नासा

अब तजहु बीरवर भारत को सब आसा''

× × ×

''रोअहु सब मिलकै आवहु भारत भाई

हा हा। भारत दुर्दशा न देखी जाई॥''

स्पष्ट है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की राष्ट्रीयता अतीत गौरव, पुनरूत्थान एवं समाज सुधार से संबंधित रही है।

हिंदी कविता में राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति द्विवेदी युग में आकर तीव्र हो जाती है। मैथिलीशरण गुप्त , रामनरेश त्रिपाठी जैसे कवियों की कविताओं में उसका विशेष रूप से निदर्शन देखने को मिलता है। मैथिलीशरण गुप्त मूलतः पौराणिक संदर्भो को राष्ट्रीय भाव बोधसे जोड़ने वाले कवि हैं। राष्ट्रीयता की दृष्टि से भारत - भारती ' पुस्तक की निम्न पंक्तियाँ काफी चर्चित रहीं हैं -

''हम क्या थे, क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी।

आओ मिलकर विचारें सभी।।''

× × ×

''कवियों ! उठो अब तो अहो! कवि-कर्म की रक्षा करो,

सब नीच भावों का हरण कर, उच्च भावों को भरो।।''

भारत - भारती में राष्ट्रीयता का आह्वान पूर्ण उद्बोधता पूर्ण स्वर इतना प्रभावी हुआ कि पुस्तक से अंग्रेज सरकार भयभीत हो गई ओर उस पर प्रतिबन्ध लगा दिया। 'भारत - भारती' कर राष्ट्रीयता से भिन्न

'साकेत' महाकाव्य जवनागरणवादी प्रश्नोंसे संचालित है। 'साकेत' के राम की उद्घोषणा है-

''मै नहीं यहाँ सन्देश स्वर्ग का लाया।

इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।।''

जाहिर है भूतल को स्वर्ग बनाने की आकांक्षा महावीर प्रसार द्विवेदी के सुधार - जागरण से ही संचालित रही है।

रामनरेश त्रिपाठी हिंदी साहित्य में स्वच्छन्दतावादी कवि के रूप् में चर्चित रहे हैं। देश -प्रेम एवं राष्ट्रीयता उनके संपूर्ण काव्य की केंद्रीय चिंता है। कुछ उदाहरण देखें -

''मस्तक ऊँचा हुआ तुम्हारा कभी जाति - गौरव से

अगर नहीं तो देह तुम्हारी तुच्छ अधम है शव से ।

× × ×

''एक घड़ी की भी परवशता कोटि नरक के सम है

पल भर की भी स्वतन्त्रता सौ स्वर्गी से उत्तम है।''

× × ×

जहाँ स्वतन्त्र विचार न बदलें मन में मुख में

जहाँ न बाधक बनें सबल निबलों के सुख में ।

सबको जहाँ समान निजोन्नति का अवसर हो

शान्तिदायिनी निशा हर्स सूचक वासर हो

सब भाँति सुशासित हों जहाँ समता के सुखकर नियम

बस उसी स्वतंत्र स्वदेश में, जागें हे जगदीश !हम!!

रामनरेश त्रिपाठी जी की राष्ट्रीयता सुशासन , सुधार एवं स्वतंत्रता पर आधारित रही है।

“लि त्रिशूल हाथ में करने चली देश - उद्धार।

गाँव गाँव में लगी घूमने सेवाव्रत उर धार।

× × ×

द्वार द्वार पर जाकर विजया करूणा - प्रेम - निधान।

सबको लगी जगाने गाकर देशभक्ति - मय गान।।’’

छायावाद तक आते - आते राष्ट्रीय भावना का स्वरूप हिंदी कविता में भिन्न स्वरूप धारण कर लेता है। द्विवेदी युग तक की राष्ट्रीयता सुधारवाद के आग्रहों से परिचालित रही है, (सांस्कृतिक जागरण) पर ज्यादा विकसित हुई है। छायावादी कविता में जयशंकर प्रसाद एवं सूर्यकान्त त्रिपाठी ’निराला’ की कविताओं में राष्ट्रीय भावना सूक्ष्म रूप में व्यक्त हुई है। जयंशकर प्रसाद की कविताएँ सांस्कृतिक जागरण उद्बोधन से परिपूर्ण हैं। प्रसाद के नाटकों के गीत भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। -

“अरूण यह मधुमय देश हमारा

जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा ।। (चन्द्रगुप्त)

× × ×

“हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती।

स्वतंत्रता पुकारती।। ’’

× × ×

“डरो मत अरे अमृत सन्तान

अग्रसर है मंगलमय बुद्धि

पूर्ण आकर्षण जीवन केंद्र

खिंची आवेगी सकल समृद्धि।’’

जयशंकर प्रसाद की कविताओं में उद्बोधन के माध्यम से राष्ट्रीय भावना की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है लेकिन हमें स्मरण रखना होगा कि वे कट्टर अर्थों में केवल राष्ट्रीय आन्दोलन के गायक नहीं है बल्कि उससे आगे जाकर के संपूर्ण मानवता की मुक्ति का मार्ग दिखाते हें। कामायनी की श्रद्धा का संदेश है -

“शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त

विकल निखरे हैं, हो निरूपाय

समन्वय उनका करे समस्त

विजयिनी मानवता हो जाय।’’

निराला ने भी अपने कविताओं के माध्यम से सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का ही स्वर व्यक्त किया है। ‘जागो फिर एक बार’ और ‘तुलसीदास’ जैसी कविताएँ सांस्कृतिक जागरण के आधार पर रची गई कविताएँ है।

राष्ट्रीय - सांस्कृतिक कविताओं में राष्ट्रीय भावना की सीधी अभिव्यक्ति हमें दूखने को मिलती है। सुभद्रा कुमारी चौहान, माखनलाल चतुर्वेदी, सियारामशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा ‘नवीन’, रामधारी सिंह ‘दिनकर’ , इत्यादि की कविताएँ राष्ट्रीय भावबोध से ही संचालित हुई हैं। माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में राष्ट्र प्रेम की अधिकता के ही कारण उन्हें ‘एक भारतीय आत्मा’ कहा गया है। माखनलाल चतुर्वेदी जी की ‘पुष्प् की अभिलाषा ’ कविता राष्ट्रीयता का कण्ठहार बन गई है। कविता की पंक्ति देखें -

“चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ

चाह नहीं , प्रेमी - माला में विंध प्यारी को ललचाऊँ

चाह नही, सम्राटों के शव पर हे हरि डाला जाऊ

चाह नहीं, देवों के सिर पर चढ़ूं भाग्य पर इठलाऊँ

मुझे तोड़ लेना बनवाली!

उस पथ में देना तुम फेंक।

मातृभूमि पर शीश चढ़ाने

जिस पथ पर जावें वीर अनेक।''

इसी प्रकार 'कवि का आह्वान' शीर्षक कविता में माखनलाल चतुर्वेदी ने लिखा है -

''राष्ट्र प्रेम की ध्वजा उठाओ, माता को समझाओ ।

षुष्प पुंज की भाँति शीश, सब चरणों बीच चढ़ाओ ।।''

इसी प्रकार सुभ्रद्रा कुमारी चौहान की कविताएँ 'झाँसी की रानी' 'वीरों का कैसा हो बसन्त', 'झासी की रानी की समाधि पर' 'जालियाँ वाले बाग में वसन्त' 'ठुकरा दो या प्यार करो, लोहे को पानी कर देना, राष्ट्रीय भावबोध की अमर कृतियाँ हैं

2.5 राष्ट्रीय भावना और हिन्दी कविता की मूल संवेदना

2.5.1 राष्ट्र - प्रेम

पिछले बिन्दुओ में हमने अध्ययन किया कि राष्ट्र प्रेम की अवधारणा व्यापक अवधारणा है। कभी - कभी राष्ट्र प्रेम प्रत्यक्ष रूप में प्रकट होता है और कभी - कभी यह पृष्ठभूमि में चला जाता है। चूँकि यह अपने आप में इतने बड़े वर्ण्य - क्षेत्र से जुड़ा हुआ है कि स्पष्टतया इसे सीदे - सादे ढंग से अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता । राष्ट्र प्रेम की अवधारण मूलभूल अवधारणा है। व्यक्ति अपने घर - परिवार, जाति, धर्म, समाज - परिवेश -संस्कृति, प्रदेश एवं राष्ट्र से जुड़ा हुआ होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है - जिस व्यक्ति को अपने राष्ट्र से प्रेम होगा, वह उस राष्ट्र के जीव -जंतु, पशु - पक्षी, पेड़ - पौधे सबको प्रेम से देखेगा, सबको चाह की दृष्टि से देखेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि राष्ट्र - प्रेम की अवधारणा में जीव -जतु , प्रकृति, मानव, राष्ट्र संस्कृति सभी आ जाते है। शर्त यह है कि साहित्य के इस चि़त्रण में लोकधर्मिता अनिवार्य रूप से होनी चाहिए।

2.5.2 समाज सुधार

हिन्दी कविता मं राष्ट्रीयता की भावना और समाज सुधार की भावना एक दूसरे से जुड़े हुए है। राष्ट्रीयता और समाज सुधार का क्या सम्बन्ध है ? इसे समझाते हुए अमरीकी विचारक एडमस ने लिखा है - राष्ट्रीयता की भावना से समान सुधार की भावना पैदा होती है। जबकि भारतीय साहित्य

के संदर्भ में इसके ठीक उल्टे होता है। हिंदी साहित्य के में राष्ट्रीयता का उदय सामाजिक सुधारों के माध्यम से हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग से संबंधित प्रतिज्ञा - पत्र हो या स्त्री - शिक्षा के प्रचारार्थ बालाबोधनी' पत्रिका का प्रकाशन , ये सभी सामाजिक सुधार की ही अभिव्यक्ति है। महावीर प्रसार द्विवेदी के साहित्य में सामाजिक सुधार की भावना आधार रूप में रही है। द्विवेदी युग के साहित्याकार, विशेषकर मैथिलीशरण गुप्त की कविता स्त्री सुधार ;अबला हाय तुम्हारी यही कहानी' जैसे वाक्य से जुड़ी रही है । महावीर प्रसार द्विवेदी की कविता 'हीरा डोम' वर्ण - व्यवस्था की विसंगतियों से जुड़ी हुई है। छायावाद के बाद का काव्य जैसे प्रगतिवाद एवं मोहभंग की कविता में सामाजिक - सुधार की भावना विशेष वर्ग के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करती सियारामशरण गुप्त की पंक्ति देखें - "करता है क्या ? अरे मूढ़ कवि, यह क्या करता?/ उत्पीड़ित के अश्रु लिये ये कहाँ विचरता ? '' इसी प्रकार बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के काव्य की पंक्ति देखें -

"और चाटते जूठे पत्ते उस दिन देखा मैनें नर को/उस दिन सोचा, क्यों न लगा दूँ आज आग दुनिया भर को?''

2.5.3 विद्रोह /क्रान्ति

राष्ट्रीयता की भावना जहाँ - जहाँ भावात्मक आवेग धारण कर लेती है, वहाँ वह विद्रोहात्मक रूप धारण कर लेती है, हिंदी कविता में विद्रोह - क्रान्ति को कविता के रूप में ढालने का काम कबीरदास जी के माध्यम से हुआ। कबीरदास जी की पंक्ति देखे-

'कबीरा खडा बाजार में लिए लुकाठी हाथ।/ जो घर

फूँके आपना सो चले हमारे साथ '

× × ×

'जे तूं बाभन बभनी जाया। तौ आंन बाट होइ काहे न आया।।'

× × ×

'पात्थर पूजै हरि मिले तो मैं पूजूँ पहाड़'

× × ×

निराला की कविता में भी विद्रोहात्मक वाणी की कमी नहीं है - 'होगा फिर से दुर्धर्ष समर उनकी कविताओं की मूल थीम है। 'जागो फिर एब बार' निराला की कविताओं की ऊर्जा है। राष्ट्रीय - सांस्कृतिक कविता और मोहभंग की कविताओं का ऊर्जा विद्रोह ही है।

'कवि' कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल - पुथल मच जाये' × × ×

काटो, काटो, काटो करबी/मारो मारो हँसिया/हिंसा और अहिंसा क्या है?/ जीवन से बढ़कर हिंसा क्या है? ! × × ×

सिपाही का डंडा/तोड़ता है अंडा/ शांति का दिया हुआ/ अंडे से निकल आया असंतोष /भमक उठा रोष /लहर अठा झंढ/ क्रान्ति का

× × ×

अपने यहाँ संसद -/तेली की वह धानी है/ जिसमें

आधा तेल है/आधा पानी है।'

ढेरो ऐसे वाक्य हें जो राष्ट्रीयता की विद्रोहमूलक चेतना से जुड़े हुए हैं/

2.5.4 विमर्श

विमर्श शब्द पश्चिम के 'डिस्कोर्स' का हिंदी अनुवाद है। 'विमर्श' का प्रयोग कविता के संदर्भ में तब होता है जब कवि बंधे - बंधाये रूप को तोड़ना चाहता है। वीसलदेव रासो' की पंक्ति 'अस्त्रीय जनम काइ दीधउ महेस' विमर्श नहीं तो और क्या है ? इसी प्रकार तुलसीदास की "पार्वती मंगल" की पंक्ति 'कत विधि' सृजी नारि जग माही/पराधीन सपने हुँ सुख नाहीं ।।'' विमर्श का ही भक्ति रूप है। कबीरदास का पूरा काव्य ही विमर्श खड़ा करता है। 'विमर्श' वह माध्यम है जब कवि प्रश्न पैदा करता है। इस दृष्टि से वर्तमान में स्त्री विमर्श दलित विमर्श एवं आदिवासी विमर्श विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

अभ्यास प्रश्न 2)

निर्देश: कोष्ठक में दिये गये शब्दों में से उचित विकल्प की तलाश कर रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए।

2. राष्ट्रीयता जहाँ कविता बनी है वे प्रसाद और निराला के गीत हैं। पंक्ति के लेखक .... हैं। (निराला, महादेवी रामस्वरूप चतुर्वेदी)

2. 'भल्ला हुआ जो मारिआ बहिणि म्हारा केतु' पंक्ति के लेखक ....है। (चन्द्रबरदाई, हेमचन्द्र, सरहपा)

3. .... ने भारतेन्दु साहित्य को नवजागरण की प्रथम मंजिल बताया है।

(रामचन्द्र शुक्ल/रामविलास शर्मा/हजारी प्रसाद द्विवेदी)

7. ‘भारत -भारती’ के लेखक .... है।

(महावीर प्रसाद द्विवेदी/ निराला/ हजारी प्रसाद द्विवेदी)

अभ्यास प्रश्न 3)

निर्देश: ’क’ और ’ख’ का सही मिलान कीजिए।

‘क’	‘ख’
2. महाभारत	भक्तिकाल
2. मैथिलीशरण गुप्त	मिलन
3. रामनरेश त्रिपाठी	कामायनी
7.जयशंकर प्रसाद	क्लासिक साहित्य
5 कबीरदास	साकेत

2.6 सारांश

- राष्ट्रीयता साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है, जिसमे राष्ट्र की आशा - आकांक्षाओ को सशक्त अभिव्यक्ति प्राप्त हुई हो।
- सुकुचित अर्थ में राष्ट्रीयता साहित्य से तात्पर्य उद्बोधन परक स्वातंत्र्य चेतना से युक्त गीत से है।
- राष्ट्रीयता भावबोध वैसे तो हर युग एवं काल की विशेषता है, किन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से यह आधुनिक अवधारणा है।
- आदिकालीन साहित्य वीरता की पृष्ठभूमि से व्यापक रूप से संचालित हुआ है। पृथ्वीराज राजो, हेमचन्द्र के दोहे व परमाल रासो ओजपूर्ण कवित्व की दृष्टि से प्रशंसनीय हैं। किन्तु इनमें व्यापक राष्ट्रीयता भाव-बोध का अभाव है।
- भक्तिकाल एवं रीतिकाल के साहित्य में भक्ति - नीति - श्रृंगार केंद्र में रहे हैं। भूषण एवं सूदन का काव्य इस दृष्टि से अपवाद कहा जा सकता है।
- आधुनिक कालीन चेतना के मूल में राष्ट्रवादी भावना ;1857 की क्रान्ति एवं स्वाधीनता संग्रामद्ध रही है। भारतेन्दु युग से लेकर राष्ट्रीय - सांस्कृतिक कविता तक राष्ट्रीयताका

एक धरातल रहा है ओर स्वातंत्रयोत्रर काव्य की राष्ट्रीयता आधुनिक विमशों की तरफ मुड़ जाती है फलस्वरूप उसका दूसरा धरातल हो जाता है।

- राष्ट्रीयता ओर कविता के अंतर्सम्बन्ध को लेकर बहुत कम बात की गई है। राष्ट्रीयता की सीदी - सादी अभिवयक्ति कविता नहीं है और बिना बिना राष्ट्रीय भाव - बोध के कविता सार्थक नहीं है।

2.7 शब्दावली

- क्लासिकल साहित्य - किसी भी देश-काल की संस्कृति से युक्त साहित्य
- जातीय साहित्य - किसी भाषा की संभावनाओं एवं लोक से जुड़ा साहित्य
- ऐतिहासिक बोध - देश-काल की गति का बोध होना।
- समूहिकता - समूह के प्रतिभावना
- साम्प्रराज्यवाद - राज्य के वर्चस्व का सिद्धान्त
- नाजीवाद - कट्टर राष्ट्रीयता, जर्मनी में इस शब्द का प्रयोग हिटलर की राष्ट्रीयता के सदंर्भ में हुआ है
- नवजागरण - अपने जातीय गौरव का पुन: स्मरण्
- राष्ट्रीयता - राष्ट्र के प्रति सचेत गौरव की भावना
- पुनरूत्थान - ऐतिहासिक गौरव को पुनः जीवित करने की भावना
- उद्बोधन - उत्साह एवं प्रेरणा युक्त गीत

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1) ख)

(1) सत्य (2) सत्य (3) असत्य (4) असत्य (5) सत्य

अभ्यास प्रश्न 2)

(1) - रामस्वरूप चतुर्वेदी (2) – हेमचन्द्र (3) - रामविलास शर्मा

(4) - मैथिलीशरण गुप्त

अभ्यास प्रश्न 3)

(1) - क्लासिक साहित्य (2) – साकेत (3) - मिलन

(4) – कामायनी (5) - भक्तिकाल

2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

2. वर्मा, (सं) धीरेन्द्र, हिन्दी साहित्य कोश भाग 1, ज्ञानमण्डल प्रकाशन।

2. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन।

3. शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिकी सभा।

2.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

2. सिंह, बच्चन, हिन्दी आलोचना के बीज शब्द, वाणी प्रकाशन।

2. तिवारी, रामचन्द्र, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल: आलोचना कोश, विश्वविद्यालय प्रकाशन।

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

2. राष्ट्रीयता की सामाजिक - सांस्कृतिक - आर्थिक पृष्ठभूमि निरूपित कीजिए।

2. राष्ट्रीयता और साहित्य पर टिप्पणी कीजिए।

3. हिन्दी कविता में राष्ट्रीयता की अवधारणा के संदर्भ स्पष्ट कीजिए।

इकाई-3 रामधारी सिंह दिनकर:पाठ एवं आलोचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 राष्ट्र कवि : 'दिनकर'
3.3.1 राष्ट्रीय कवि 'दिनकर' : परिचय
3.3.2 राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता और 'दिनकर'
3.4 रामधारी सिंह 'दिनकर' का कृतित्व
3.7.1 दिनकर कविता की वैचारिक भूमि
3.7.2 दिनकर कविता : संदर्भ सहित व्याख्या
3.5 रामधारी सिंह 'दिनकर' : काव्य का विश्लेषण एवं मूल्यांकन
3.6 'दिनकर' कविता के कलात्मक आयाम
3.7 सरांश
3.8 शब्दावली
3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.12 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने राष्ट्रीय भाषा और हिंदी कविता के बारे में ज्ञान प्राप्त किया अब आप जान गए हैं कि राष्ट्रीयता क्या होती है ? राष्ट्रीय भावों का उदय कैसे होता है? तथा हिंदी कविता में राष्ट्रीय भावना का चित्रण किस प्रकार हुआ है ? आप यह भी जान गए हैं कि राष्ट्रीय भावना और साहित्य का क्या संबंध है तथा राष्ट्रीयता कहाँ कविता बनीत है, आप इसे भी जान गए हैं। आपने पिछली इकाई में पढ़ा कि हिंदी कविता में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा के प्रतिनिधि कवि हैं। स्वाभाविक है कि 'दिनकर' जी की कविता में राष्ट्रीयता एवं सांस्कृतिक के तत्व अपने समुन्नत रूप में अभिव्यक्त हुए हैं। रामधारी सिंह 'दिनकर' का प्रारंभिक कृत्तित्व उग्र राष्ट्रवाद से शुरू होता है। तीव्रता, जोश एवं क्रान्ति आपने प्रारंभिक कविता में बखूबी मिलते हैं लेकिन क्रमश: 'दिनकर' की कविता राष्ट्रीयता से सांस्कृतिक की ओर झुकते गए हैं। कह सकते हैं कि 'दिनकर' राष्ट्रवाद से सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की ओर झुकते गए हैं। इस इकाई में हम रामधारी सिंह 'दिनकर' के कृत्तित्व की रूपरेखा को समझने का प्रयास करेंगे। 'दिनकर' कविता के कुछ अंशों की व्याख्या तथा 'दिनकर' साहित्य की आलोचना के माध्यम से उनके साहित्य को जानेंगे। इस दृष्टि से यह

इकाई मुख्यत: दो खण्डों में विभाजित है। मूल पाठ तथा दिनकर साहित्य की आलोचना ।इस इकाई के माध्यम से हम 'दिनकर' साहित्य की प्रमुख विशेषताओं को समझने का प्रयास करेंगे आइए इससे पूर्व हम रामधारी सिंह 'दिनकर' के संबंध में थोड़ी सी जानकारी प्राप्त करें।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

रामधारी सिंह 'दिनकर' के व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व से परिचित हो सकेंगे।

- रामधारी सिंह 'दिनकर' काव्य की पृष्ठभूमि से परिचित हो सकेंगे।
- 'दिनकर' साहित्य की काव्यभूमि से परिचित हो सकेंगे।
- राष्ट्रीय – सांस्कृतिक कविता को समझ सकेंगे।
- रामधारी सिंह 'दिनकर' के काव्य की मुख्य विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- रामधारी सिंह 'दिनकर' काव्य के मूल पाठ से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- 'दिनकर' काव्रू की पारिभाषिक शब्दावलियों को जान सकेंगे।
- रामधारी सिंह 'दिनकर' की कविता के भाषा-शिल्प से परिचित हो सकेंगे।
- हिंदी कविता में 'दिनकर' के काव्य प्रदेश का मूल्यांकन कर सकेंगे।

3.3 राष्ट्र कवि :'दिनकर'

रामधारी सिंह 'दिनकर' राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता धारा के महत्वपूर्ण कवि के रूप में समाहत रहे हैं। छायावादी काव्यान्दोलन सांस्कृतिक जागरण का आन्दोलन था। इस आन्दोलन में राष्ट्रीयता के तत्व सूक्ष्म रूप में विन्यस्त हुए हैं, लेकिन युगीन परिस्थिति ठीक इसके विपरीत थी। सन् 1930 ईसवी के बाद भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में तीव्रता आती है। भगतसिंह की फांसी के बाद युवा आक्रोश चरम सीमा पर पहुँचती हैं। संपूर्ण विश्व मंदी के दौर से गुजर रहा था, ऐसे समय में पराधीनता की पीड़ा और तीव्र हुई। छायावादी कल्पना लोक से हटकर स्वयं छायावादी कवि भी यर्थाथवादी कवि भी यर्थाथवादी रचना की ओर प्रवृन्त हुए। ऐसे समय में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविताधारा की उत्पत्ति का ही वस्तुगत कारण था। इसी काव्यधारा में 'दिनकर' का आगमन किसी क्रान्ति से कम नहीं था। दिनकर की कविताओं ने हिंदी कविता को नया तेवर प्रदान किया। हिंदी कविता की भाषा में शैली में, वस्तुतत्व एवं चेतना में दिनकर ने व्यापक परितर्वन उपस्थित किया। आगे के बिन्दुओं में हम दिनकर काव्य का विशेष अध्ययन करेंगे। आइए उसके पूर्व हम उनके जीवन संघर्ष का परिचय प्राप्त करें।

3.3.1 राष्ट्रीय कवि 'दिनकर' : परिचय

(क) जीवन परिचय - राष्ट्र कवि 'दिनकर' का जन्म 23 सितम्बर 1908 ईसवी को बिहार के मुंगेर जिला के सिमरिया गॉव में हुआ था। दिनकर की पारिवारिक स्थिति बहुत सुदृढ़ न थी। उसमें वाल्काल में ही पिता का देहान्त हो गया। तीनों भाईयों को उनकी मॉ ने बहुत ही संघर्ष के साथ पालन-पोषण किया। उनकी प्रारंभिक पढ़ाई गाँव के पाठशाला में हुई। पॉचवी श्रेणी पास करने के बाद सन् 1922 ई0 में बारो गॉव के नेशनल मिडिल स्कूल में नाम लिखाया गया। दो वर्ष बाद स्कूल बंद होने के उपरान्त आप सरकारी मिडिल स्कूल बारों में नामांकित हुए, जहॉं पुरस्कार स्वरूप 'रामचरितमानस' एवं 'सूरसागर' जैसे ग्रंथ प्राप्त होने के कारण आपके अंदर साहित्यिक संस्कारों की नींव पड़ी। जनवरी 1924 ई0 में मोकामा घाट के जेम्स वाकर हाईस्कूल में नामांकन हुआ। 1928 ई0 में 19-20 वर्ष की उम्र में आपने मैट्रिक परीक्षा पास की। सन् 1928 ई0 में आपने पटना कॉलेज में नाम लिखवाया तथा सन् 1932 में इतिहास विषय से बी0ए0 की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। बी0ए0 पास करने के बाद दिनकर कुछ काल तक स्कूल में प्राध्यापक रहे। तदुपरान्त सितम्बर 1934 ई0 में बिहार सरकार के राजस्व विभाग में आपकी नियुक्ति सब-रजिस्ट्रार के पद पर हुई। इसी समय 1934 ई0 में बिहार प्रांतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के छपरा अधिवेशन में कवि-सम्मेलन की आपने अध्यक्षता की। औपनिवेशिक सरकार की नौकरी करने का कटु अनुभव यहीं से उन्हें मिलने लगा। सन् 1942 ई0 में जब राष्ट्र के जीवन में उबाल आया, तब वे अंग्रेजी सरकार के युद्ध-प्रचार विभाग में थे। सितम्बर 1943 से 1945 ई0 तक सरकार द्वारा दिनकर जी को ऐसी जगह स्थापित कर दिया गया था जो राष्ट्रविरोधी कार्यों की जगह थी। लम्बे मानसिक संघर्ष के पश्चात् उन्होंने सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे दिया। सन् 1950 ई0 में बिहार सरकार ने उन्हें पटना विश्वविद्यालय के लंगट सिंह महाविद्यालय में हिंदी-विभाग का अध्यक्ष बनाया गया। सन् 1952 ई0 के अप्रैल में आप राज्यसभा का सदस्य चुन लिए गए। जनवरी 1964 ई0 में दिनकर जी भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति नियुक्त हुए। मई 1965 के आपने कुलपति के पद से इस्तीफा दे दिया और भारत सरकार के हिंदी सलाहाकर का पद ग्रहण किया। सन् 71 में आप इस पद से मुक्त होकर, पटना आकर रहने लगे। 24 अप्रैल 1974 ईसवी को मद्रास यात्रा के दौरान दिल का दौरा पड़ने से आपकी मृत्यु हुई। इस प्रकार एक महायात्रा का समापन हुआ।

(ख) दिनकर का कृतित्त्व परिचय - रामधारी सिंह दिनकर का कृतित्त्व पद्य एवं गद्य दोनों दृष्टियों से, कथ्य एवं परिमाण की दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध रहा है। उनके कृतित्त्व की व्याख्या एवं आलोचना हम आगे देखेंगे। यहाँ हम केवल उनके कृत्तित्व की सूची प्रस्तुत कर रहे हैं –

काव्य –

- विजय संदेश – 1928 ई0
- प्रणभंग – 1929 ई0

- रेणुका – 1935 ई0
- हुंकार – 1939 ई0
- रसवंती – 1940 ई0
- द्वंद गीत – 1940 ई0
- कुरक्षेत्र – 1946 ई0
- धूप-छाँह – 1946 ई0
- सामधेनी – 1947 ई0
- बापू – 1947 ई0
- इतिहास के ऑसू – 1951 ई0
- धूप और धुऑं – 1951 ई0
- मिर्च का मजा – 1951 ई0
- रश्मिरथी – 1952 ई0
- दिल्ली – 1954 ई0
- नीम के पत्ते – 1954 ई0
- नीलकुसुम – 1954 ई0
- पूरज का व्याह – 1955 ई0
- चक्रवाल – 1956 ई0
- कवि श्री – 1957 ई0
- सीपी और शंख – 1957 ई0
- नए सुभाषित – 1957 ई0
- उर्वशी – 1961 ई0
- परशुराम की प्रतीक्षा – 1963 ई0
- कोयला और कवित्व – 1964 ई0
- मृत्ति तिलक – 1964 ई0
- आत्मा की ऑखे – 1964 ई0
- दिनकर की सूक्तियॉं – 1965 ई0
- हारे को हरिनाम – 1970 ई0

- दिनकर के गीत – 1973 ई0
- रश्मिलोक – 1974 ई0

आलोचना

- मिट्टी की ओर – 1946 ई0
- अर्धनारीश्वर – 1952 ई0
- काव्य की भूमिका – 1958 ई0
- पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण – 1958 ई0
- वेणुवन – 1958 ई0
- शुद्ध कविता की खोज – 1966 ई0

अन्य गद्य रचनाएँ -

- चित्तौड़ का साका – 1949 ई0
- रेती के फूल – 1954 ई0
- हमारी सांस्कृतिक एकता –1954 ई0
- भारत की सांस्कृतिक कहानी – 1955 ई0
- भारत की सांस्कृतिक कहानी – 1955 ई0
- संस्कृति के चार अध्याय – 1956 ई0
- उजली आग – 1956 ई0
- देश-विदेश – 1957 ई0
- राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता – 1958 ई0
- धर्म, नैतिकता और विज्ञान – 1959 ई0
- वट – पीपल – 1961 ई0
- साहित्यमुखी – 1968 ई0
- राष्ट्रभाषा आन्दोलन और गॉधीजी – 1968 ई0
- हे राम – 1969 ई0
- संस्करण और श्रद्धांजलियां – 1969 ई0
- मेरी यात्राएॅं – 1970 ई0

- भारतीय एकता – 1970 ई0
- दिनकर की डायरी – 1973 ई0
- चेतना की शिखा – 1973 ई0
- आधुनिक बोध – 1973 ई0
- विवाह की मुसीबतें – 1974 ई0
- दिनकर के पत्र (सं0 कन्हैयालाल फूलफगर) – 1981 ई0
- शेष – नि:शेष (सं0 कन्हैयालाल फूलफगर) - 1985 ई0

3.3.2 राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता और 'दिनकर'

राष्ट्रीय- सांस्कृतिक कविता का आन्दोलनात्मक समय सन् 1935 से 1945 ईसवी के बीच स्थिर किया जा सकता हैं लेकिन वह भी सुविधाजनक समाधान होगा। माखनलाल चतुर्वेदी या रामधारी सिंह 'दिनकर' की प्रमुख रचनाएँ लगभग 34-35 तक प्रकाशित होने लगती हैं। सन् 1930 के बाद, जैसा कि पूर्व में बताया गया था, युवा आक्रोश अभिव्यक्ति के मार्ग तलाश रहा था। इस समय का सबसे बड़ा काव्यान्दोलन छायावाद भी कल्पना जगत से यर्थाथ की धरती पर आ खड़ा हुआ। लेकिन 'छायावाद' की मूल संरचना यर्थाथवादी-विल्लववादी अभिव्यक्ति के अनुकूल न थी। संभवत: राष्ट्रीय-सांस्कृतिक आन्दोलन की पृष्ठभूमि निर्मित करने में इन तथ्यों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। हिंदी साहित्य के विद्यार्थियों के सामने समस्या यह आती है कि छायावादोत्तर युग का काल विभाजन वह किस प्रकार करें ? सन् 1936 से 1943 तक का काल प्रगतिवाद कहा गया है। इसी समय में हरिवंशराय बच्चन द्वारा प्रवर्तित 'हालावाद' भी चला और यही समय राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता का भी है। ऐसी स्थिति में हिंदी साहित्य के सामान्य पाठकों के सामने उलझन आती है कि वह सन् 1936 के बाद किस काव्यधारा को केन्द्रित स्थिति में रखे। इस समय राजनीतिक दृष्टि से प्रगतिवाद, राष्ट्रीय-सांस्कृतिक दृष्टि से दिनकर आदि का काव्य तथा व्यैक्तिक अनुभूतियों एवं युग मन की स्थिति को व्यक्त करने की दृष्टि से 'हालावद' प्रमुख भूमिका निभाते हैं। एक तो वर्षों का अंतर छोड़ दें तो तीनों काव्याधाराएँ लगभग सामानान्तर रूप में विकसित होती हैं। छायावादोत्तर कविता का नेतृत्व कौन करेगा ? दिनकर या बच्चन ? यह प्रश्न भी उस समय उपस्थित हुआ था।

इस कविता धारा के नामकरण को कुछ लोगों ने स्वच्छंद धारा कहा है। किसी ने विव्लववादी और गॉंधीवादी काव्य धारा, किसी ने जोश की कविता तो किसी ने राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता। छायावादोत्तर कविता पर विचार करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने टिप्पणी की है : ''छायावादी कवियों के अतिरिक्त वर्तमानकाल में और भी कवि हैं जिनमें से कुछ ने यत्र-तत्र ही रहस्यात्मक भाव व्यक्त किये हैं। उनकी अधिक रचनाएँ छायावाद के अंतर्गत नहीं आतीं। उन सबकी अपनी

अलग-अलग विशेषता है। इस कारण उनको एक ही वर्ग में नहीं रखा जा सकता। सुभीते के लिए ऐसे कवियों की समष्टि रूप से, 'स्वच्छंद धारा' प्रवाहित होती है। इन कवियों में पं0 माखनलाल चतुर्वेदी, (एक भारतीय आत्मा) श्री सियाराम शरण गुप्त, पं0 बालकृष्ण शर्मा, नीवन, श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान, श्री हरिवंशराय बच्चन, श्री रामधारी सिंह दिनकर, ठाकुर गुरूभक्त सिंह सिंह और पं0 उदयप्रकाश भट्ट।'' स्पष्ट है कि आचार्य शुक्ल के समय तक दिनकर और हरिवंशराय बच्चन एक ही धारा के अंतर्गत माने जा रहे थे। दोनों को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'स्वच्छंद धारा, के अंतर्गत रखा है। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा पर टिप्पणी करते हुए डॉ0 बच्चन सिंह ने टिप्पणी की है – ''इस धारा पर व्यापक अर्थ में क्रान्तिकारी आन्दोलन और गॉधीवादी आन्दोलन का विशेष प्रभाव था। कुछ लोग इसे राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा कहते हैं। यदि यह राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा है तो स्वच्छंदतावादी (छायावादी) काव्य धारा क्या है ?'' इस काव्यधारा के नामकरण पर प्रश्नचिह्न लगाने के पश्चात् डॉ0 बच्चन सिंह ने टिप्पणी की है – ''इस धारा के अधिकांश कवियों ने क्रान्तिकारिता के विह्नावी रूप को वाणी दी। उनकी रचनाओं में आक्रोश और क्रान्ति का अत्यन्त विक्षोभकारी स्वर सुनाई पड़ता है..............इनके विप्लव-गान में एक फक्कड़ाना मस्ती, लापरवाही और बलिवेदी चढ़ने की गहरी ललक मिलती है।'' डॉ0 बच्चन सिहं स्पष्ट रूप से राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा का मूल स्वर आक्रोश और क्रान्ति कहते हैं, वहीं दूसरी ओर इस काव्यधारा का नामकरण विप्लववादी और गॉधीवादी-काव्य करते हैं। गॉधीवाद का विप्लव से बहुत दूर का रिश्ता है। महात्मा गॉधी उस युग के सबसे बड़े जननायक थे, स्वाभाविक था कि उसका प्रभाव उस युग के सचेत कवियों पर पड़ता। लेकिन गॉधीवादी होने और गॉधी का प्रभाव पड़ने में बहुत अंतर है।

राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता में राष्ट्रीयता क्रमश: संस्कृति की ओर अग्रसर हुई है। जैसे रामधारी सिंह दिनकर राष्ट्रीय गान से सांस्कृतिक विमर्शो की तरफ झुकते चले गये। लेकिन अन्य कवियों में राष्ट्रीयता एवं सांस्कृतिकता के तत्व उतने पृथक् नहीं किये जा सकते। रामधारी सिंह दिनकर पर टिप्पणी करते हुए डॉ0 बच्चन, अंचल आदि नव्य छायावादियों (व्यक्तिवादियों) से जुड़ पाते हैं और न प्रगतिवादियों से उनका अपना रास्ता है। वे कहीं दोनों धाराओं के बीच में पड़ते हैं। इसलिए कहीं वे गॉधीवाद का समर्थन करते हैं तो कहीं सशस्त्र क्रांति का, कहीं प्रकृति और नारी प्रेम की आकांक्षा व्यक्त करते हैं तो कहीं कर्वहारा के उदय की।'' वस्तुत: हर बड़े कवि में भावधारा की कई मन स्थितियॉं होती हैं।

अभ्यास प्रश्न 1

1. रामधारी सिंह 'दिनकर' का जीवन परिचय दस पंक्तियों में दीजिए।
2. रामधारी सिंह 'दिनकर' का कृतित्व परिचय सात पंक्तियों में प्रस्तुत कीजिए।

अभ्यास प्रश्न – 2

'हॉं', या 'नहीं' में उत्तर दीजिए –

3. राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता आन्दोलन में माखनलाल चतुर्वेदी नहीं हैं। ( )

3. राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविताधारा का समय सन् 1940 के बाद प्रारम्भ होता है। ( )

3. रामधारी सिंह 'दिनकर' का जम्न 1908 ई0 में हुआ था। ( )

7. 'रश्मिरथी' काव्य रूप की दृष्टि से महाकाव्य है। ( )

5. 'कुरूक्षेत्र' काव्य का आधार ग्रन्थ 'महाभारत' है। ( )

3.4 रामधारी सिंह 'दिनकर' का कृतित्व

रामधारी सिंह 'दिनकर' छायावादी अवसान काल के समय हिंदी कविता के मंच पर उपस्थित हुए। खुद दिनकर ने लिखा है कि वह छायादार की पीठ पर आए। दिनकर के कविता क्षेत्र में आगमन में समय देश गहरे राजनीतिक-आर्थिक संकट से गुजर रहा था। युवावों का बड़ा वर्ग हताश-निराश था। युवा वर्ग के भीतर अवसाद की स्थिति थी, ऐसे में कभी वह हग्लाव्याला की बात करता था तो कभी राजनीति पर चर्चा। राजनीति एवं राष्ट्रीयता को कविता बनाने की प्रक्रिया हिंदी कविता में चल तो रही थी, लेकिन जिस तिव्रता-ओजपूर्ण भाषा की जरूरत होती है, वह न आ पाई थी। दिनकर के सामने सर्वप्रथम प्रश्न यही उपस्थित हुआ कि वह रोमानी आदर्शों पर चलें, कल्पना जगत का आश्रय लें या स्वयं का रास्ता निर्मित करें। दिनकर ने युग धर्म-परिस्थिति का निर्वाह करते हुए रोमान की मनोभूमि से अलग उद्दाम, उत्साह तथा विप्लवी मनोभूमि पर राष्ट्रीय मनोभावों के प्रवक्ता बन कर उभरे।

3.7.1 दिनकर कविता की वैचारिक भूमि

जैसा कि पूर्व में कहा गया कि रामधारी सिंह 'दिनकर' के कवि-व्यक्तित्व पर रोमानियत, राष्ट्रीयता एवं सांस्कृतिकता का गहरा प्रभाव था। छायावादी आन्दोलन का प्रभाव भी दिनकर पर कम नहीं था, लेकिन युग-संदर्भ के दबाव से उन्होंने अपनी चेतना को राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया। बाद में यह चेतना क्रमश: सांस्कृतिक धरातल से कामाध्यात्मक तक चली जाती है। दिनकर को ख्याति उनके राष्ट्रीय गीतों के कारण मिली। लेकिन स्वयं कवि की आत्म स्वीकृति इसके विपरीत है – ''विप्ल और राष्ट्रीयता का वरण कभी मेरा उद्देश्य न था।....आत्मा मेरी अब भी 'रसवंती' में रमती है। राष्ट्रीयता मेरे व्यक्त्वि के भीतर से नहीं जन्मी, उसने बाहर से आकर मुझे आक्रान्त किया। ''प्रश्न किया जा सकता है कि राष्ट्रीयता उद्देश्य न होकर भी दिनकर की कविता का मुख्य स्वर

बन जाती है, इसे हम युग-संदर्भ का दबाव कह सकते हैं। लेकिन रोमानियत क्या दिनकर की मूल प्रवत्ति है ? रोमानियत की यही प्रवृत्ति क्या कामाध्यात्म में रूपान्तरित हो जाती है ?

दिनकर की मूल मनोवृत्ति चाहे श्रंगार रही हो (जैसा कि प्राय: लोगों की होती है) लेकिन यह तो स्पष्ट है कि राष्ट्रीय संवेदना को उनकी कविता के माध्यम से ऐतिहासिक अभिव्यक्ति मिली है। राष्ट्रीय भावना से युक्त कविता तथा ओजस्वी उद्बोधनों ने स्वतंत्रता पूर्व तथा पश्चात् राष्ट्र विरोधी शक्तियों को चंताया तथा सामान्य जनता को बल प्रदान करते रहे। दिनकर का प्रसिद्ध उद्बोधन देखें

''जनता की रोके राह, समय में ताव कहाॅं,

वह जिधर चाहती, काल उधर ही मुड़ता है,

दो राह, समय के रथ का धर्धर नाद सुनो,

सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।''

यह कविता दिनकर ने सन् 1950 में लिखी थी, जब देश स्वतंत्र हो चुका था। वस्तुत: भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन न केवल राजनीतिक-सत्ता प्राप्ति का आन्दोलन था न केवल पुराने गौरव को पाने का प्रयास था बल्कि गहरे-सूक्ष्म अर्थों में सांस्कृतिक एकता को पुन:सृजित करने का सांस्कृतिक उपक्रम भी था। भक्ति आन्दोलन, 1857 के स्वतंत्रता संग्राम की तरह राष्ट्रीय आन्दोलन भी अखिल भारतीय सांस्कृतिक आन्दोलन बना। 20वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में अनायास नहीं की साम्राज्यवादी इतिहासकारों द्वारा अनेक इतिहासग्रन्थ लिखे गये, जिसमें भारतीय संस्कृति को दोयम दर्जे की संस्कृति, पिछड़ी, संस्कृति घोषित किया गया। अखिल भारतीयता बिना सांस्कृतिक बैचेनी के पैदा हो ही नहीं सकती। रामधारी सिंह 'दिनकर' का काव्य 'संस्कृति के चार अध्याय' सांस्कृतिक प्रत्युत्तर का ही रचनात्मक प्रयास है।

'कुरूक्षेत्र' तथा 'रश्मि रथी' जैसी कृत्तियॉं तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याओं से निसृत हु हैं। 'कुरूक्षेत्र' का आधार ग्रंथ 'महाभारत' का 'शांति पर्व' है, लेकिन इस रचना पर तत्कालीन विश्वयुद्ध एवं राष्ट्रीय आन्दोलन के नरसंहार की प्रेरणा ही मुख्य रही हैं। तत्कालीन समस्या का समाधान क्या महाभारत कालीन पृष्ठभूमि के आधार पर खोजा जा सकता है ? वस्तुत: समाधान मुख्य होता है, पृष्ठभूमि चाहे किसी काल की हो। रचना की मुख्य समस्या में पौरूष और देव, स्वार्थ और लोकहित, पाप और धर्म तथा युद्ध और शांति की समस्या को उठाया गया है। मनुष्य से श्रेष्ठ संसार में कुछ भी नहीं है –

''यह मनुज, ब्रह्मंातु का सबसे सुरम्य प्रकाश

कुछ छिपा सकते न जिससे भूमि या आकाश

यह मनुज, जिसकी शिखा उद्दाम,

कर रहे जिसको चराचर भक्ति युक्त प्रणाम,

यह मनुज, जो सृष्टि का श्रृंगार,

ज्ञान का, विज्ञान का, आलोक का आगार,

वही मनुष्य पशु, हिंस्र , रक्त-पिपासु कैसे हो। जाता है ? यह दिनकर का मुख्य प्रश्न है। 'कुरूक्षेत्र' में ही दिनकर लिखते हैं –

''वह अभी पशु है, निरा पशु, हिंस्र , रक्त-पिवासु,

बुद्धि उसकी दानवी है स्थूल की जिज्ञासु।

यह मनुज ज्ञानी, श्रंगालों कुक्कुरों से हीन हो किया करता अनेकों क्रूर कर्म मलीन।

इस मनुज के हाथ से विज्ञान के भी फूल,

वज्र होकर छूटते शुभ धर्म अपना भूल।

'कुरूक्षेत्र' की उपरोक्त पंक्तियाँ विरोधाभासी प्रतीत हों रही है, जैसा कि हैं नहीं। दिनकर मानते हैं कि मनुष्य सृष्टि का सर्वोत्तम प्राणी है, लेकिन उसने अपनी समस्त संभावनाओं का सही उपयोगी नहीं किया है। विज्ञान की संभावना विनाश पैदा कर रही है, ऐसी स्थिति में इसे सही कैसे कहा जा सकता है। गॉधी से प्रभावित होते हुए भी दिनकर ने युद्ध संबंधी प्रसंग में उनसे पूर्ण सहमति नहीं दिखाई है. गांधी का दर्शन जहाँ युद्ध को पूरी तरह नकारता है वहीं दिनभर इस बात पर बल देते हैं कि न्याय के लिए युद्ध अनिवार्य हैं। मनुष्य की चेतना जब पूरी तरह विकसित हो जायेगी तब युद्ध की संभावना स्वत: ही नि:शेष हो जायेंगी। 'नहीं चाहता युद्ध लड़ाई, लेकिन अगर बनेगी/किसी तरह भी शांतिवाद से मेरी नहीं बनेगी।' जैसी पक्तियां में दिनकर की विचारधारा स्पष्ट है।

'रश्मिरथी' खण्ड काव्य तत्कालीन जाति प्रथा, वर्ग-वैषम्य पर प्रहार करता है। कह सकते हैं कि न्याय और समता का मूल दर्शन ही दिनकर का प्रतिपाद्य रहा है। कर्ण को काव्य नायक बना करके दिनकर ने जाति-पांति के मुकाबले पौरूष, त्याग एवं मानवीय गुणों को प्रतिष्ठित किया है। सही अर्थों में दिनकर मानवतावादी कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं। कविता की पक्तियां देखें –

''धँस जाये वह देश अतल में, गुण की जहाँ नहीं पहचान।

जाति-गोत्र के बल से ही आदर पाते हैं जहाँ सुजान।।''

रामधारी सिंह 'दिनकर' की वैचारिक भूमि की विष्पत्ति 'उर्वशी' के 'कमाध्यात्म' में होती है। देह की सीमा के अतिक्रमण की भावना 'उर्वशी' के केन्द्र में है। उर्वशी की भूमिका में दिनकर ने लिखा है – 'नारी नर को छूकर तृप्त नहीं होती न नर नारी के आलिंगन में संतोष मानता है। कोई शक्ति है जो नारी को नर और संतोष मानता है। कोई शक्ति है जो नारी को नर और नर को नारी से अलग नहीं रहने देती ओर जब वे मिल जाते हैं, तब भी उनके भीतर किसी ऐसी तृषा का संचार करती हैं, जिसकी तृप्ति शरीर के धरातल पर अनुपलब्ध है। उसी प्रकार नारी के भीतर एक और नारी है, जो अगोचर और इंद्रियातीत है। इस नारी का संधान पुरूष तब पाता है, जब शरीर की धारा उछालते-उछालते, उस मन के समुद्र में फेंक देती है, जब दैहिक चेतना से परे, वह प्रेम की दुर्गम समाधि में पहुँचकर निस्पंद हो जाता है और पुरूष के भीतर भी एक और पुरूष है, जो शरीर के धरातल पर नहीं रहता, जिसके मिलन की आकुलता में नारी अंग-संज्ञा के पार पहुँचना चाहती है।'

'उर्वशी' की पक्तियां हैं –

3. वह विद्युन्मय स्पर्श तिमिर है पाकर जिसे त्वचा की नींद टूट जाती, रोमों में दीपक बल उठते हैं।

3. रेंगने लगते सहस्त्रों सांप सोने के रूधिर में

3. रूप की आराधना का मार्ग आलिंगन नहीं तो और क्या है ?

उर्वशी के कामाध्यात्म पर टिप्पणी करते हुए बच्चन सिंह ने लिखा है : ''रतिक्रीड़ा निजी व्यापार है। किन्तु इस व्यापार को इतने आडम्बरपूर्ण ढंग से मुखरित किया गया है कि मुक्तिबोध के शब्दों में – ''मानो पुरूरवा और उर्वशी के रति-कक्ष में भोंपू लगे हों जो सारे शहर में संलाप का प्रसारण-विस्तारण कर रहे हों। ''लेकिन डॉ0 विजेन्द्र नारायण सिंह ने उर्वशी के कामाध्यात्म को वैचारिक रूप से वरेण्य माना है। उन्होंने लिखा है – ''सेक्स पूर्व वह प्रेम नहीं, सेक्स ही है। प्रेम आत्मा के तल पर निवास करने वाला काम ही है। शीतल जल की तरह प्रशांत होता है। उर्वशी प्रेम की अतीन्द्रियता का आख्यान है। यह आत्मा के तल पर पहुँच कर निस्पंद हो जातने वाले काम की कविता है।'' लॉरेंस ने लिखा है कि सेक्स स्पर्श ही है – सबसे गहन स्पर्श। इस पर विजेन्द्र नारायण सिंह ने टिप्पणी की है – ''स्पर्श का सुख है तो शरीर सुख ही। पर शरीर की कोई अनुभूति बहुत गहरी हो तो उस क्षण में आत्मा की झलक मिलती है। अत: काम के गहन सुख के क्षण में उससे परे की भी कोई सत्ता झलक मारती है। काम का गहन सुख अध्यात्म की भी अनुभूति करा देता है। पुरूरवा ठीक ही उर्वशी से कहता है : "बाहुओं के इस वलय में गात्र ही बंदी नहीं है, वक्ष के इस तल्प पर सोती न केवल देह मेरे व्यग्र, व्याकुल प्राण भी विश्राम पाते है।" इस प्रकार कामसुख की गहनतम अनुभूति के क्षण में आत्मा की झलक दिखाई पड़ती है।'' कामाध्यात्म के इस प्रश्न को सिद्धों के वज्रयान के 'मुहासुखवाद' में भी उठाया गया है। प्रश्न है कि काम के माध्यम से क्या मुक्ति संभव है ? यदि काम के माध्यम से ही अध्यात्म की प्राप्ति होती तो सारे पाश्चात्य देश

आध्यात्मिक शिखर पर होते। हाँ यह अवश्य हैं कि काम से परे जाकर आध्यात्मिक शांति अवश्य मिल सकती है।

3.7.2 दिनकर कविता : संदर्भ सहित व्याख्या

हाय, पिताहम, हार किसकी हुई है यह ?

ध्वंस-अवशेष पर सिर धुनता है कौन ?

कौन भस्मराशि में विफल सुख ढूँढ़ता है ?

और बैठे मानव की रक्त-सरिता के तीर

नियति के व्यंग्य-भरे अर्थ गुनता है कौन ?

कौन देखता है शवदाह बंधु-बांधनों का ?

उत्तरा का करूण विलाप सुनता है कौन ?

संदर्भ एवं प्रसंग – आलोच्च पंक्तियॉ रामधारी सिंह 'दिनकर' की प्रसिद्ध कृति 'कुरूक्षेत्र' से उद्धत हैं। 'कुरूक्षेत्र' में युद्धकालीन समस्याओं को आलोच्य पंक्तियों में युधिष्ठिर द्वारा भीष्म पितामह से यह प्रश्न पूछना कि युद्ध में किसकी विजय हुई है ? यह अपने आप में यह संकेत करता है कि युद्ध अपनी अंतिम परिणति में अहितकर ही होता है।

व्याख्या : प्रस्तुत पंक्तियों में धर्मराज युधिष्ठिर महाज्ञानी भीष्म पितामाह से प्रश्न करते हैं कि हे पितामाह ! महाभारत के इस युद्ध में किसकी हार हुई है ? अर्थात् इस युद्ध में पाण्डव हारे हैं या कौरव। युद्ध के परिणाम के तौर पर तो हम जीत गये हैं किन्तु क्या इसे विजय मानी जा सकती है। युद्ध के बाद जो ध्वंस के अवशेष दिखाई दे रहे है, वह पश्चाताप के सिवाय और क्या पैदा कर रहे है। विनाश और ध्वंस सुखकारी कैसे हो सकते हैं। अत: ऐसे ध्वंस के बाद मिली युद्ध में विजय गहरे पश्चाताप को जन्म दे रही है। सामने युद्ध जिस राजमुकुट को प्राप्त करने के लिए इतने नरसंहार हुए हों, वह भला कैसे सुखद हो सकता है। युद्ध में जो विजय युधिष्ठिर को मिली, वह भयानक रक्त-पात के बीच। ऐसा लगता है मानो रक्त की नदी वह रही हो और कोई व्यक्ति (मानवता) उसके किनारे बैठा हो। इसे व्यंग्य के सिवाय और क्या कहा जा सकता है ? भाग्य/नियति जैसे मनुष्यता की इस पराजय पर व्यंग्य कर रही हो। युद्ध-विजय के बाद अपने निकट संबंधियों के शवदाह को देखते हुए तथा अभिमन्यु पत्नी उत्तरा के विलाप को सुनते हुए युधिष्ठिर की विजय ? युधिष्ठिर प्रश्न कर रहा है कि युद्ध में विजय उसकी जीत है या पराजय ? वस्तुत: इसे युधिष्ठिर अपनी पराजय के रूप में ही देख रहा है।

विशेष

3. प्रस्तुत पंक्तियों में संवाद शैली के माध्यम से कवि ने सत्य को खोजन की कोशिश की है।

3. युद्ध में विजय-पराजय से महत्वपूर्ण है, मानवता की रक्षा। जहॉं विजय के पश्चात् भी मानवता पराजित हो जाती है वहाँ युद्ध का परिणाम हमेशा ही नकारात्मक रहता है। इस दृष्टि से प्रस्तुत पंक्तियाँ हमें नये ढंग से सोचने के लिए बाध्य करती हैं।

3. युधिष्ठिर के अंतर्द्वन्द्व को आलोच्य पंक्तियों में कलात्मकता के साथ व्यंजित किया गया है।

7. भाषा की दृष्टि से आलोच्च पंक्तियॉं सहज हैं किन्तु उनमें निम्बात्मकता एवं चित्रात्मकता का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

छीनता हो स्वप्न कोई, और तू त्याग तप से काम ले, यह पाप है।

पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ हो।

बद्ध विदलित और साधनहीन को है उचित अवलम्ब अपनी आह का

गिड़गिड़ा कर किन्तु मांगे भीख क्यों वह पुरूष जिसकी भुजा में शक्ति हो

संदर्भ एवं प्रसंग :

आलोच्य पंक्तियॉं ओज एवं राष्ट्रीयता के कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' के 'कुरूक्षेत्र' काव्य की पंक्तियॉं हैं। प्रस्तुत पंक्तियों में पितामह भीष्म द्वारा युधिष्ठिर के यह पूछे जाने पर कि ऐसी विजय से क्या लाभ ? जिसने असंख्य व्यक्ति काल-कवलित हुए, का उत्तर देते हुए कहा गया है कि जब युद्ध किया जाए।

व्याख्या : युधिष्ठिर के पश्चाताप और ग्लानिपूर्ण कथन को सुनकर भीष्म पितामह युधिष्ठिर को समझाते हुए कह रहे हैं कि हे युधिष्ठिर – कभी ऐसा होता है कि कोई तुम्हारी स्वतंत्रता का हरण करता हो या तुम्हारे स्वाभिमान को नष्ट करता हो या तुम्हारे अस्तित्व को नष्ट करने की कोशिश कर हरा हो तब त्याग एवं तप की बात करना या प्रतिरोध न करना ही पाप होता है। पाप और पुण्य की कोई बंधी-बंधाई परिपाटी नहीं होती बल्कि परिस्थितियों के अनुसार ही वे तय होते हैं। (अनाचारी को) नष्ट कर दो, उसके हाथ काट दो अर्थात् अत्याचार के समय यदि तुम प्रतिरोध न करके सत्य-त्याग-तप की सैद्धान्तिक बातें ही करते हो तब वही पाप है।

पुन: भीष्म युधिष्ठिर को समझाते हुए कह रहे हैं कि – यदि दूसरों के अधीन रहनेवाला, दलित या साधनहीन या कमजोर व्यक्ति अपने ऊपर हो रहे अत्याचार को आह भर कर के अर्थात् विवशतापूर्वक सह लेता है तो कोई गलत बात नहीं है क्योंकि वह प्रतिरोध कर पाने में अक्षम है। लेकिन यदि सामर्थ्यवान व्यक्ति दमा की भीख मॉंगे या शत्रु के सामने गिड़गिड़ाये तो इसे किसी भी प्रकार से शोभनीय नहीं कहा जा सकता। क्योंकि ऐसे व्यक्ति द्वारा अन्याय का प्रतिकार करना ही उचित है, धर्म है, पुण्य है।

विशेष

3. प्रस्तुत पंक्तियॉं इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं कि इनमें प्रतिरोध की संस्कृति को श्रेष्ठ माना गया है।

3. आलोच्य पंक्तियों में कवि ने बताया है कि पाप और पुण्य की कोई सुनिश्चित अवधारणा नहीं है। परिस्थितियाँ तय करती हैं कि क्या पाप हैं और क्या पुण्य है।

3. शांतिकाल में जो पुण्य है, वही युद्ध के समय पाप हो सकता है। अत: हर परिस्थितियों में अत्याचार के खिलाफ प्रतिरोध करना ही उचित है।

7. प्रस्तुत पक्तियां कवि की विचारधारा को स्पष्ट रूप से व्यक्त करती हैं।

5. भाषा सहजता और प्रवाह के गुण से युक्त है।

अभ्यास प्रश्न 3

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

3. कुरूक्षेत्र..................ग्रन्थ पर आधारित है।

3. रश्मिरथी ग्रंथ का नायक..............है।

3. उर्वशी रचना का मूल समस्या.............है।

7. उर्वशी का प्रकाशन वर्ष..........................है।

5. दिनकर...................धारा के कवि हैं।

6. परशुराम की प्रतीक्षा के रचनाकार................हैं।

3.5 रामधारी सिंह'दिनकर':काव्य का विश्लेषण एवं मूल्यांकन

रामधारी सिंह 'दिनकर' का काव्य प्रगतिशील परम्परा का वाहक रहा है। राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम के बीच आपके काव्य की वैचारिक भूमि निर्मित होती है। क्रमश: बाद के समय में वे तत्कालीन समस्याओं के रचनात्मक समाधान की दिशा में प्रवृत्त हुए। हर कवि या रचनाकार की तरह ही दिनकर का काव्य भी अंतर्विरोध ग्रस्त है, लेकिन उससे दिनकर की रचनात्मकता कुंठित नहीं हुई है। अपने रचनाकाल के अंत तक वे 'कामाध्यात्म' की ओर मुड़ जाते हैं, जिसे उनकी रचनात्मक उपलब्धि के रूप में देखा गया हैं, जिसे उनकी रचनात्मक उपलब्धि के रूप में देखा गया है। जैसा कि सुमित्रानंदन पंत को लिखे पत्र में उन्होंने लिखा था – ''मैं घोर चिंतना में धँसकर/पहुँचा भाषा के उस तट पर/था जहॉ काव्य यह धरा हुआ/सब लिखा लिखाया पड़ा हुआ।'' दिनकर का मूल्यांकन करते हुए डॉ0 विजेन्द्र नारायण सिंह ने लिखा है : ''दिनकर उष्ण मिजा़ज़ के कवि हैं, चाहे क्रान्ति का प्रसंग हो या प्रेम का। क्लासिक कवि की तरह आत्मा की शांति उनकी विशेषता नहीं है। वे स्वच्छंदतावादी कवि हैं और हर स्वच्छंदतावादी कवि की तरह उनका मिजा़ज उष्ण है। उनकी कारयित्री प्रतिभा के साथ भावयित्री प्रतिभा का बड़ा अच्छा योग है और उनकी भावयित्री प्रतिभा उनकी कारयित्री प्रतिभा की दिशा का स्पष्ट पता चलता है। उनकी कविताओं में अनुभूति और विचार घुलमिल गए हैं। यह उनकी असल ताकत है। उनकी कविताओं में विषय की विविधता का अभाव है। पर, विषय की विविधता स्वच्दंदतावादी कवि की कोई विशेषता नहीं होती है।.....छायावादोत्तर काल की संवेदनशील के निर्धारक प्रधानत: दो कवि हैं – दिनकर और बच्चन। पर दोनों बुनियादी रूप से एक-दूसरे से भिन्न कवि हैं। बच्चन मूलत: निजी संवेदनशीलता उत्तर छायावाद काल के अन्य कवि इन्हीं दोनों के प्रभामंडल पर एक स्वच्छंदतावादी कवि के रूप में काव्य-यात्रा का आरंभ किया था और बीसवीं सदी के मध्य तक स्वच्छंदतावादी काव्य की ही रचना की, पर परवर्ती कविता में वे गैर स्वच्छंदतावादी चेतना और गैर स्वच्दंदतवादी काव्यशास्त्र अधिक मन हैं और उनकी संवेदना भी कई तरह की है। यह एक समृद्ध मन का प्रमाण है। वे उत्तर-छायावाद काल के सबसे महत्वपूर्ण कवि हैं।

3.6 'दिनकर' कविता के कलात्मक आयाम

दिनकर राष्ट्र कवि थे। राष्ट्रीय भाव बोध के बीच से उनकी कविता का जन्म हुआ है। राष्ट्रीयता संस्कृति और समाज की ओर उन्मुख होती गई है। उनके काव्य के कलात्मक आयाम प्रयोगवादी कवियों की तरह नक्काशी-गर्भित नहीं हैं, बल्कि भावनात्मक आवेग ने कलात्मकता का मार्ग स्वयं प्रशस्त किया है। दिनकर की भाषा अपने आवेग पूर्ण कथन के लिए याद की जाती है। दिनकर की भाषा में सम्प्रेषणीयता, व्यंजनात्मकता एवं चित्रात्मकता के साथ ही प्रवाह का अद्भुत गुण पाया जाता है। दिनकर की भाषा प्राय: ओज गुणों से समन्वित है। भाषा समृद्धता (कई

भाषाओं के शब्द ग्रहण से) के साथ ही आपने कथन-अभिव्यंजना के लिए लोकोक्ति, को अंलकार, प्रतीक एवं बिम्बों का समुन्नत प्रयोग कर महत्वपूर्ण बना दिया है। जैसे –

3. हिंसा का आघात तपस्या ने कब कहाँ सहा है ?

देवों का दल सदा दानवों से हारता रहा है

3. जब तक मनुज मनुज का यह सुख भाग नहीं सम होगा

शमित न होगा कोलाहल संघर्ष नहीं कम होगा।

उपरोक्त उदाहरणों से हम देख सकते हैं कि दिनकर ने कहीं जानबूझकर शब्द-जाल नहीं बुना है, बल्कि उनके भाव उनकी भाषा को स्थिर करते रहे हैं।

3.7 सारांश

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आपने जाना कि –

- राष्ट्रीयता कैसे साहित्य बनती है ? रामधारी सिंह 'दिनकर' का काव्य इसकी पुष्टि करता है।
- रामधारी सिंह 'दिनकर' राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा के महत्वपूर्ण कवि हैं। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक बोध को लेकर चलने वाली कविता है।
- रामधारी सिंह 'दिनकर' का प्रारम्भिक कृतित्त्व जोश एवं भावावेग का काव्य रहा है। हुंकार, रेणुका में उनकी जोशपरक कवितायें हैं। तो आगे का काव्य 'कुरूक्षेत्र' 'रश्मिरथी' तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक समस्याओं से जुड़ा है।
- रामधारी सिंह 'दिनकर' की वैचारिक निष्पत्ति प्रेम, विद्रोह एवं सामाजिकता से होती हुई कामाध्यात्म तक पहुँचती है।
- दिनकर काव्य की भाषा ओजपूर्ण एवं प्रावहपूर्ण है। भावों को वहन करने में समर्थ भाषा ही प्राणवान होती है। दिनकर की भाषा उपरोक्त गुणों से युक्त है।

3.8 शब्दावली

- समुन्नत – पर्याप्त, अच्छे ढंग से
- आक्रोश – गुस्सा, अन्याय के खिलाफ प्रतिरोध का स्वर
- विप्लव – क्रान्ति, विद्रोह

- कामाध्यात्म – काम और अध्यात्म के संधि से विकसित दर्शन
- कुंठित – मन की दमित वासना
- कायित्री प्रतिभा – सृजन करने वाली मौलिक प्रतिभा, जैसे कवि या रचनाकार
- भावयित्री प्रतिभा – काव्य का आस्वादन करने वाली प्रतिभा जैसे सहृदय, पाठक या आलोचक

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 2

3. नहीं 3. नहीं 3. हाँ 7. नहीं 5. हाँ

अभ्यास प्रश्न 3

3. महाभारत 3. कर्ण 3. कामाध्यात्म 7. 1961 ई0

5. राष्ट्रीय-सांस्कृतिक 6. दिनकर

3.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

3. सिंह, विजेन्द्र नारायण सिंह – रामधारी सिंह 'दिनकर', साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

3. सिंह, बच्चन सिंह – हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली

3. चतुर्वेदी, रामस्वरूप – हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली

3.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

3. सिन्हा, सावित्री, कवि दिनकर, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

3. सिंह, विजेन्द्र नारायण ,उर्वशी : उपलब्धि और सीमा, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

3. रामधारी सिंह 'दिनकर' के काव्य में राष्ट्रीयता की अवधारणा किस प्रकार अभिव्यक्त हुई है ? स्पष्ट कीजिए।

3. राष्ट्र कवि दिनकर का संक्षिप्त जीवन एवं साहितियक परिचय लिखिए तथा 'उर्वशी'की मूल समस्या पर प्रकाश डालिए।

इकाई 4 – हरिवंशराय बच्चन: पाठ एवं आलोचना

इकाई की रुपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 हरिवंशराय बच्चन: पाठ एवं आलोचना
    4.4.1 हालावाद और हरिवंशराय बच्चन
    4.4.2 छायावादोत्तर कविता और हरिवंशराय बच्चन
    4.4.3 हरिवंशराय बच्चन की रचनाएँ
4.4 हरिवंशराय बच्चन की: संदर्भ सहित व्याख्या
4.5 हरिवंशराय बच्चन काव्य: विश्लेषण एवं आलोचना
    4.5.1 हरिवंशराय बच्चन की काव्यानुभूति
    4.5.2 हरिवंशराय बच्चन की कविता में भाषा
4.6 सारांश
4.7 शब्दावली
4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.1 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

हरिवंशराय बच्चन छायावादोत्तर काल के महत्वपूर्ण कवि हैं। छायावादोत्तर कहने से पूरी बात स्पष्ट नहीं हो पाती, वस्तुतः वे प्रगतिवाद - प्रयोगवाद के पूर्वाभास के भी कवि हैं। कुछ लोगों ने उन्हें अंग्रेजी के 'न्यूओरोमैटिक' की तर्ज पर 'नव्य - स्वच्छन्दतावादी' भी कहा है और स्पष्ट रूप में कहा जाए तो यह कहना ज्यादा सही होगा कि बच्चन 'संन्धि युग' के कवि हैं। 'सन्धि युग' से यहाँ तात्पर्य 'संक्रान्ति काल' से है। छायवाद का उत्तरार्द्ध (1930 - 36 ई.) अपने दृष्टिकोण, अभिव्यक्ति में अपने पूर्वाद्ध से कई मायने में भिन्न है। इस समय में छायावाद सामाजिक चेतना से जुड़ने की भरसक कोशिश कर रहा था। हाँलाकि अपने मूलस्वरूप में वह रोमानी आन्दोलन है। प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना का कार्य समय भी यही है। छायावाद से थोड़ा प्रभावित होकर भी उसकी वायवीयता से अपने को मुक्त करने की कोशिश भी कुछ प्रयोगवादी कवि (अज्ञेय प्रमुख हैं) कर रहे थे। ऐसे संक्रान्ति काल के बीच प्रगतिवादी सामाजिकता से युक्त होकर किन्तु उनके

सैद्धान्तिक आग्रह से मुक्त होकर रचना करना कठिन कार्य था। इस प्रकार छायावाद जैसे समृद्ध काव्यान्दोलन से प्रभावित होकर भी उसकी कमियों से मुक्त होना आसान काम नहीं था। हरिवंशराय बच्चन की साहित्यिक - सांस्कृतिक चुनौती ने उन्हें सृजन - पथ पर अग्रसर किया।

4.2 उद्देश्य

स्नातकोत्तर प्रथम वर्ष (एम.ए.एच.एल. - 12) का यह तृतीय प्रश्न पत्र है। यह पत्र आधुनिक एवं समकालीन कविता से जुड़ा हुआ है। इस पत्र का यह खण्ड छायावादोत्तर समकालीन हिन्दी कविता से जुड़ा हुआ है। इस खण्ड की यह 12 वीं इकाइ है। यह इकाई 'हरिवंशराय बच्चन:' पाठ एवं आलोचना' से संबंधित है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप -

- हरिवंशराय बच्चन के व्यक्तित्व एवं कुृतित्व से परिचित हो सकेंगे।
- हरिवंशराय बच्चन के काव्य की मुख्य प्रवृत्त्यिों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- छायावादोत्तर हिन्दी कविता को और बेहतजर ढंग से समझ सकेंगे।
- छायावादोत्तर कविता में हरिवंशराय बच्चन के योगदान का मूल्यांकन कर सकेगे।
- हरिवशंराय बच्चन के कविता की भाषा से परिचित हो सकेंगे।

4.3 हरिवंशराय बच्चन: पाठ एवं आलोचना

हरिवंशराय बच्चन के काव्य को समझने के लिए इस इकाई में उनकी कविता के मूल संदर्भो के साथ उसकी आलोचना का भी समावेश किया गया है। हरिवंशराय बच्चन की कविता के आस्वादन से पूर्व हमें यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि डॉ. हरिवंशराय बच्चन आलोचकों के नहीं पाठको के कवि है। डॉ. बच्चन की लोकप्रियता कई आलोचकों को चकित करती रही है। जिसके पीछे उनका विशाल पाठक वर्ग रहा है। डॉ. हरिवंशराय बच्चन की काव्यगत लोकप्रियता के क्या कारण रहे हैं, यह उनके काव्य को समझने की पृष्ठभूमि हो सकती है। डॉ. हरिवंशराय बच्चन की लोकप्रियता का आधार ग्रन्थ 'मधुशाला' को माना गया है और सवश्रेष्ठ ग्रन्थ 'निशा - निमंत्रण' को।

प्रगतिशील समीक्षा दृष्टि में कवि की लोकप्रियता को उस युग की प्रतिध्वनि माना गया है। ग्राम्शी जहाँ इसे 'सास्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति' मानते हैं वहीं मैनेजर पाण्डेय 'कला का सार्थक मूल्य'। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तो साहित्य के काल - विभाजन के लिए निर्धारक तत्वों में से एक तत्व 'लोकप्रियता' को माना है। उत्तर - आधुनिक समय में लोकप्रियता के संदर्भ में काव्य के पुनर्मूल्यांकन का प्रयास किया जाने लगा है, ऐसी स्थिति में हरिवंशराय बच्चन के काव्य का मूल्यांकन करना महत्वपूर्ण हो सकता है।

'लोकप्रिय कविता' जनता की कविता होती है। ऐसी कविताएँ दरबार या राजश्रय में नहीं लिखी जाती हैं। बल्कि ये जनता के दरबार में रहकर लिखी गई कविताएँ हैं। जनता के बीच लिखी गई कविताएँ काव्य न रहकर 'पाठ' बन जाती हैं। पाठ बनने की प्रक्रिया में कविता लेखक से निकालकर पाठक के हाथ में चली जाती है। भारत में कवि से पाठ बनने की यह परम्परा कालिदास से चली आ रही है। राजशेखर के महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'काव्यमीमींसा' में इस तथ्य का सविस्तार वर्णन हुआ है कि कैसे कवि 'कविताचर्चा' कर कविता को सार्वजनिक रूप प्रदान करतर था। 'माध्यकालीन समस्यापूर्तियाँ कविता के लोकप्रिय या जन से जुड़ने का एक प्रमुख माध्यम थी। हरिवंशराय बच्चन के समय तक समस्यापूर्तियाँ या मंच कविता के माध्यम नही रह गये थे, किन्तु फिर भी उन्होनें अपने लिए 'मंच'का माध्यम चुना।

4.4.1 'हालावाद' और हरिवंशराय बच्चन

'हालावाद' का सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप से 'मधुशाला' 'मधुबाला' और 'मधुकलश' जैसी रचनाओं सें है। हरिवंशराय बच्चन को इस काव्यान्दोलन के प्रवर्त्तन का श्रेय दिया जाता है। हाँलाकि डॉ. बच्चन सिंह 'हालावाद' के प्रवर्त्तन का श्रेय हरिवंशराय बच्चन को देने को तैयार नहीं हैं। वह लिखते हैं - 'यदि हालावाद नाम देना ही हो तो इस प्रवृत्ति का श्रेय बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और भगवतीचरण वर्मा' को देना चाहिए। इसके पहले 'नवीन' 'साकी भर - भर ला तू अपनी हाला' और भगवतीचरण वर्मा 'बस मत कह देना अरे पिलाने वाले, हम नहीं विमुख हो जाने वाले' लिख रहे है थे। 'सही अर्थो में हालावाद ' नामक कोई आन्दोलन 'प्रगतिवाद' या 'प्रयोगवाद' की तरह नही चला। आन्दोलन के लिए किसी - न -किसी विचारधारात्मक ऊर्जा का होना आवश्यक है। बिना वैचारिक ऊर्जा के किसी काव्यान्दोलन को गति नहीं मिलती। 'हालावाद' के पीछे किसी सुनिश्चित विचारधारा का आग्रह नहीं मिलता, यह एक मनोवत्ति - प्रतिक्रिया का रूप ज्यादा लिये हुए है। हालावादी मनोवृत्ति के पीछे उमर खैय्याम की रूबाइयों का बड़ा हाथ है। उमर खैय्याम को प्रभाव को हरिवंशराय बच्चन ने स्वीकार भी किया है। हरिवंशराय बच्चन के काव्य जीवन की शुरूआत खैय्याम की रूबाइयों के अनुवाद से होती है। खैय्याम की तरफ बच्चन के झुकाव का कारण काव्य -शैली के कारण भी था, असाम्प्रदयिक दृष्टिकोण के स्वीकार के कारण भी और आशावादी दृष्टिकोण के कारण भी था। इस सम्बन्ध में रामस्वरूप चतुर्वेदी ने टिप्पणी की है- 'उदास नियतिवाद की इस मनःस्थिति में क्षणभंगुर जीवन और उसके यथासंभव अपभोग के गीत गाए गये' जाहिर है खैय्याम और हरिवंशराय बच्चन के काव्य के बीच गहरा साम्य रहा है, लेकिन दोनों रचनाकारों की काव्यभूमि एवं अभिव्यक्ति में अंतर हैं। डॉ. बच्चन सिंह ने लिखा है - ''खैयाम और बच्चन का अन्तर यह है कि पहले का क्षण - वाद मृप्युभीति से पीड़ित है तो दूसरे का मृत्यु के अन्तभवि में उल्लसित।'' प्रश्न है कि बच्चन ने मृत्यु के साक्षात्कार से ऊर्जा कैसे प्राप्त की। प्रसिद्ध चितंक सार्त्र ने लिखा है कि 'मृत्यु जीव को परिभाषित करती है।' का तात्पर्य भी यही है कि हम प्रकृति की संपूर्ण प्रक्रिया को समझकर ही उससे मुक्त हो सकते हैं। बुद्ध का दर्शन मृत्युबोध

के साक्षात्कार से ही उपजा है। बौद्ध दर्शन से प्रभावित महादेवी वर्मा ने लिखा भी है - अमरता है जीवन का ह्रास मृत्यु जीवन का चरम विकास!'' पूरा का पूरा अस्तित्वादी चिन्तन का आधार मृत्यु बोध ही है। नोबल पुरस्कार प्राप्त कृति अल्वेर कामू की रचना 'अजनबी' मृत्यु साक्षात्कार की ही कृति है। अज्ञेय का उपन्यास 'अपने - अपने अजनबी' मृत्यु के बीच जीवन की सार्थकता की खोज के सिवाय क्या है ? इन सबसे बढ़कर महान् ग्रन्थ 'श्री गीता' का सम्पूर्ण दर्शन मृत्यु बोध से ही निसृत है। बेकन का प्रसिद्ध निबंध 'द डेथ' मृत्यु की सार्थकता की खोज ही है। हरिवंशराय बच्चन ने जिस मृत्युबोध को प्राप्त कर 'हालावाद' को सृजित किया उसका ठोस सामाजिक कारण भी था। 'मधुशाला' की पंक्तियाँ हैं - ''मेरे अधरों पर हो अंतिम/ वस्तु न तुलसीदल, प्याला/ मेरी कि जिह्वा पर हो अंतिम/न गंगाजल, हाला'' - और चिता पर जाय उड़ेला/ पात्र न घृत का, पर प्याला घंट बँधे अंगूर लता में / मध्य न जल हो, पर हाला।।''

इन पंक्तियों की अधूरी व्याख्या होगी तो हरिवंशराय बच्चन केवल साकी और हाला के कवि ही दिखेंगे, लेकिन अगर हम इन पंक्तियों पर ध्यान दें -

'कुछ आग बुझाने को पीते / ये भी , कर मत इन पर संशय।'

× × ×

'पीड़ा में आनंद जिसे हो, आए मेरी मधुशाला।'

स्पष्ट है कि 'हालावाद' जो बच्चन जैसे कवियों के माध्यम से आया, का ठोस सामाजिक - सांस्कृतिक आधार भी था, जो आगे के बिन्दुओं में और स्पष्ट ढंग से हम अध्ययन करेंगे।

4.4.2 छायावादोत्तर कविता और हरिवंशराय बच्चन

छायावादोत्तर कविता का सही प्रतिनिधि किसे कहें और कालक्रम से इसे कब से मानें, यह प्रश्न अपने आप में उलझा हुआ है। समय-समय पर हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों - आलोचकों ने इस प्रश्न पर विचार किया हैं और अपने-अपने ढंग से इस पर अपने रास्ते तलाशे हैं। छायावादोत्तर कविता में एक ओर जहाँ रामकुमार वर्मा, गोपालप्रसाद नेपाली जैसे कवि छायावादी रचनाएँ कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर सामाजिक राजनीतिक यर्थाथ को लेकर 'प्रगतिवाद जैसा सशक्त काव्यान्दोलन भी प्रारम्भ हो रहा था। एक ओर रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' तथा अंचल का मांसलवादी काव्य तो दूसरी ओर भगवतीचरण वर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान का राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य तो तीसरी ओर हरिवंशराय बच्चन का मध्यमवर्गीय सामाजिकता का काव्य। अर्थ यह है कि सन् 1933 से 1936 या 1940 तक का समय संक्रान्ति काल है। इस समय के बीच इतने प्रकार के काव्यान्दोलन चले कि उनके बीच हरिवंशराय बच्चन की भूमिका की तलाश थोड़ी मुश्किल सी लगती है। छायावादोत्तर परिदृश्य पर किस कवि की केंद्रीय भूमिका स्थिर होगी, इस प्रश्न पर

हिंदी साहित्य के इतिहास में आम राय नही बन पाई है। डॉ रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है- ''छायावादोत्तर परिदृश्य पर केंद्रीय कवि व्यक्तित्व किसका होगा, इसे लेकर कई तरह के अनुमान और तर्क हो चुके हैं। रामनरेश त्रिपाठी ने अपने वृहत संकलन 'कविता-कौमुदी' भाग -2 के चतुर्थ परिवद्धित संस्करण (1939) में 'खड़ी बोली कविता का संक्षिप्त परिचय देते हुए लिखा था, ''बच्चन और दिनकर दोंनों प्रतिद्वन्द्वी कवि है। बच्चन की भाषा दिनकर से जोरदार है दिनकर के भाव बच्चन से अधिक उन्मादक, सारवान् और सामाजिक है। दोनों में से जो एक दूसरे को पहले ग्रहण कर लेगा, वही हिन्दी - कविता के वर्तमान और अगले युग का नेता होगा। ''नंददुलारे बाजपेयी छायावादके बाद नये आन्दोलन की शुरूआत 'पहले अंचल' से मानते हैं, और नगेन्द्र गिरिजाकुमार माथुर से। रामविलास शर्मा की दृष्टि' 50 के आसपास उभरते गीतकारों पर थी। आधुनिक समीक्षक नामवर सिंह की व्यंजना है कि इस केंद्रीय स्थिति में गजानन माधव मुक्तिबोध का काव्य होगा। इतिहास अब एक इनमें से बहुत - से मूल्यांकनों को गलत साबित कर चुका है। सही क्या होगा - यदि 'सही' शब्द को समीक्षा के संदर्भी में संगत प्रयोग माना जाए-यह आज भी आलोचनात्मक जिज्ञासा का विषय है, भविष्यवाणी का नहीं। 'लम्बे उद्धरण को यहाँ देने का उद्देश्य यह था कि हम देखें कि छायावादोत्तर कविता के परिदृश्य पर केंद्रीय स्थिति को लेकर कितने विरोधाभास की स्थिति थी।

अभ्यास प्रश्न 1)

क) उचित शब्द का चुनाव कर रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए।

4. हरिवंशराय बच्चन .... काल के कवि हैं।

4. हरिवंशराय बच्चन को नव्य .... भी कहा गया है।

4. हरिवंशराय बच्चन को .... का प्रवर्त्तक कहा जाता है।

4. हरिवंशराय बच्चन ने प्रारंभिक दौर में अपनी कविता की अभिव्यक्ति के लिए ....का माध्यम चुना।

5. 'हालावाद' की प्रतिनिधि रचना .... को माना गया है।

ख) नीचे दिये गए वाक्यों में सत्य/ असत्य बताइए।

4. 'मधुकलश' ग्रन्थ के रचनाकार हरिवंशराय बच्चन हैं।

4. 'साकी भर - भर ला तू अपनी हाला' पंक्ति के रचनाकार हरिवंशराय बच्चन है।

4. 'बस मत कह देना अरे पिलाने वाले, हम नहीं विमुख हो जाने वाले' पंक्ति के रचनाकार हरिवंशराय बच्चन हैं।

4. हरिवंशराय बच्चन की कविता पर उमर खैय्याम का प्रभाव पड़ा है।

5. 'निशा - निमंत्रण' के रचनाकार भगवतीचरण वर्मा हैं।

4.4.3 हरिवंशराय बच्चन की रचनाएँ

हरिवंशराय बच्चन का कृतित्व पद्य और गद्य में बिखरा है। प्रारंभिक सफलता आपको कविता के क्षेत्र में मिली। 'मधुशाला' के प्रकाशन के बाद अचानक से हिन्दी के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि बन गये। अपने कृतित्व के उत्तरार्द्ध में हरिवंशराय बच्चन का गद्य साहित्य बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। हाँलाकि बच्चन ने अपने कृतित्व की शुरूआत कहानी लेखन से की लेकिन यहाँ पर सफलता न मिल पाने के कारण वे कविता लेखन की ओर मुड़े। सर्वप्रथम उन्होंने कहानी - संग्रह 'हिन्दुस्तान अकादमी' को भेजा था,जिसे प्रकाशन के योग्य नहीं समझ गया। उसके उपरान्त बच्चन कविता - क्षेत्र की ओर आये। हरिवंशराय बच्चन की पहली कविता जबलपुर की 'प्रेमा' पत्रिका में 'मध्याह्न' शीर्षक से 1931 में प्रकाशित हुई। उनका पहला कविता संग्रह 'तेरा हार' 1932 ईसवी में प्रकाशित हुआ। इसके उपरान्त कविता क्षेत्र में बच्चन को अभूतपूर्व ख्याति मिली। कविता क्षेत्र के शीर्ष पर पहुँचने के उपरान्त हरिवंशराय बच्चन गद्य की ओर मुड़े। गद्य में हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा, डायरी, अनुवाद, बालसाहित्य प्रमुख हैं। यहाँ संझेप में हम हरिवंशराय बच्चन द्वारा लिखित रचनाओं को प्रस्तुत कर रहे हैं -

तेरा हार - 1932

मधुशाला - 1935

मधुबाला - 1936

मधुकलश - 1937

एकान्त संगीत - 1937

निशा निमंत्रण - 1938

आकुल अन्तर - 1943

प्रारंभिक रचनाएँ - प्रथम भाग - 1943

प्रारंभिक रचनाएँ - दूसरा भाग - 1943

सतरंगिनी - 1946

खादी के फूल - 1948

सूत की माला - 1948

मिलन यामिनी - 1950

प्रणय पत्रिका - 1955

धार के इधर -उधर - 1957

आरती और अंगारें - 1958

बुद्ध और नाचघर - 1958

त्रिभंगिमा - 1961

चार खेमे चौंसठ खूँटे - 1962

दो चट्टानें - 1965

बहुत दिन बीते - 1967

कटती प्रतिमाओं की आगज - 1968

उभरते प्रतिमानों के रूप - 1969

जाल समेटा – 1973

4.4 हरिवंशराय बच्चन की कविता: संदर्भ सहित व्याव्था

किसी भी कवि की अच्छी समझ उस पर लिखी आनोचना से उतनी नहीं विकसित होती जितनी उसकी मूल रचना को पढ़ने से विकसित होती है। इसका कारण क्या है ? यह प्रश्न किया गया जा सकता है। आलोचना में कवि/रचनाकार पर आलोचक की दृष्टि आरोपित कर दी जाती है। बहुत बार पाठक आलोचक की दृष्टि से कवि को देखने लगता है, ऐसी स्थिति में वह पाठक मूल रचना से दूर होने लगता है। ऐसी स्थिति में कवि की रचना का मूल संदर्भ देखना उचित होगा। हरिवंशराय बच्चन की कविताएँ विभिन्न मनःस्थितियों की उपज हैं। प्रारंभिक कविताएँ जहाँ 'हालावादी' हैं वहीं बाद की रचनाएँ व्यक्तिवाद, सामाजिकता को अभिव्यक्त करती हैं। हरिवंशराय

बच्चन की कविताओं के चुने हुए अंशो के माध्यम से हम बच्चन काव्य की भूमि समझने का प्रयास करेंगें।

4.4.1 इस पार - उस पार

इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,

उस पार न जाने क्या होगा!

यह चांद उदित होकर नभ में

कुछ ताप मिटाता जीवन का,

लहरा -लहरा ये शाखाएँ

कुछ शोक भुला देतीं मन का,

कल मुर्झाने वाली कलियां

हंसकर कहती हैं, मग्न रहो,

बुलबुल तरू की फुनगी पर से

संदेश सुनाती यौवन का,

तुम देकर मदिरा के प्यालें

मेरा मन बहला देती हों,

उस पार मुझे बहलाने का

उपचार न जाने क्या होगा!

इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,

उस पार न जाने क्या होगा!

शब्दार्थ - उदित - उगकर, नभ - आकाश, ताप - तपन (परेशानी), तरू - वृक्ष, फुनगी - वृक्ष का ऊपरी हिस्सा , मदिरा - शराब

संदर्भ - आलोच्य गीत हालावादी कवि हरिवंशराय बच्चन की प्रसिद्ध कविता 'इस पार - उस पार' का अंश है, जो 'मधुबाला' काव्य संग्रह में संकलित है।

प्रसंग - हरिवंशराय बच्चन व्यैक्तिक चेतना के गीतकार हैं, किन्तु उनकी यह चेतना व्यैक्तिक मनोभावों से दूर जीवन - जगत के सत्य का साक्षात्कार भी करना चाहती है। प्रस्तुत गीत 'इस पार - उस पार' में कवि ने व्यक्तिगत जीवन सामाजिक जीवन आध्यात्मिक जीवन दोनों को एक साथ रखकर जीवन सत्य का साक्षात्कार करना चाहा है।

व्याख्या - कवि जीवन के सत्य का साक्षात्कार करता हुआ अपने प्रिय को संबोधित करते हुए कह रहा है कि हे प्रिये अभी तो तुम मेरे पास हो, जीवन का रस है लेकिन उस पार यानी जीवन के इस मुधर पलों के बाद जीवन में क्या होगा, यह अनिश्चित हैं चन्द्रमा आकाश में उदित होकर जीवन के ताप, उष्णता को मिटाता है, वृक्ष की शाखाएँ अपने शाखाओं - पत्तियों की उमंग से जीवन में आनन्द/ उमंग को फैला रहे हैं। नित्य - प्रतिदिन मुर्झाने वाली, नष्ट होने वाली पुष्प् की कलियाँ भी हमें संदेश देती हैं कि जीवन के इस आनन्द, गतिशीलता को महसूस कर तुम आनंदित रहों। बुलबुल वृक्ष के शीर्ष पर बैठकर जीवन के यौवन यानी उमंग का संदेश सुनाती है। प्रिय को सम्बोधित करता हुआ कवि कह रहा है कि तुम मुझे मदिरा के प्याले यानी जीवन रस से सींचकर मेरे मन को सांसारिक कर्मी से जोड़कर मुझे बहला देती हो। किन्तु उस पार मुझे बहलाने का, मेरे मन की शांति का न जाने कौन सा उपाय होगा। क्योंकि हे प्रिय अभी तो तुम मेरे पास हो, जीवन का सुख है, आनन्द है लेकिन उस समय जब ये सारी चीजें मेरे पास नहीं होंगी तब मुझे नहीं मालूम क्या होगा।

महत्वपूर्ण बिन्दु:

4. 'इस पार' - 'उस पार' के माध्यम से कवि ने लौकिक - पारलौकिक जीवन के द्धन्द्ध को सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त किया है।

4. कविता में प्रकृति की गत्यात्मकता के माध्यम से कवि जीवन को आशावादी दृष्टिकोण से देखने का आग्रह कर रहा है।

4. कविता की भाषा सरल है।

4. कविता में शब्द - चयन अद्भुत है, प्रवाह की दृष्टि से कविता सुन्दर बन पड़ी है।

4.4.2 कवि की वासना

कह रहा जग वासनामय/हो रहा उद्गार मेरा!

सृष्टि के प्रारम्भ में

मैंने उषा के गाल चूमे,

बाल रवि के भाग्यवाले

दीप्त भाल विशाल चूमे,

प्रथम संध्या के अरूण दृग

चूमकर मैं ने सुलाए,

तारिका - कलि से सुसज्जित

नभ निशा के बाल चूमे,

वायु के रसमय अधर

पहले सके छू होठ मेरे,

मृत्रिका की पुतलियों से

आज क्या अभिसार मेरा!

कह रहा जग वासनामय

हो रहा उद्गार मेरा!

शब्दार्थ - वासना - आसक्ति, मोह, लिप्सा, उद्गार - अभिव्यक्ति, उषा - सुबह, भाल - मस्तक, अरूण - सूर्य , दृग - नेत्र, निशा - रात्रि, अधर - होठ, अभिसार -मिलन

संदर्भ एवं प्रसंग -

प्रस्तुत गीत, ‘हालावादी’ आन्दोलन के प्रतिष्ठापक हरिवंशराय बच्चन की प्रसिद्ध कविता ‘कवि की वासना’ का अंश है, जो उनके प्रमुख काव्य संग्रह ‘मधुकलश’ में संकलित है।

प्रस्तुत गीत में कवि प्रकति की गत्यात्मकता, उमंग, सजीवता को महसूस कर रहा है। समाज की दृष्टि में जो वासना है, वही कवि की दृष्टि में मानव की सहज अभिव्यक्ति है। प्रस्तुत गीत में कवि ने सुन्दर शब्दों में अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करते हुए लिखा है -

व्याख्या - कवि अपनी भावना को अभिव्यक्त करते हुए कह रहा है कि - जिन भावों को समाज, संसार अपनी संकुचित दृष्टि के कारण हेय, वासनापूर्ण और निरस्कृत समझता है, वह तो मेरी सहज अभिव्यक्ति है। उसमें वासना - आसक्ति नहीं बल्कि वह तो मेरी सरल भावनायें हैं। कवि अपनी भावना को शब्द - रूप् देते हुए कह रहा है कि मैने सृष्टि प्रारम्भ के प्रतीक सुबह का गाल चूमकर उसका स्वागत किया यानी आनन्द - उमंग के साथ उसे अपनाया। उदित होते सूर्य के विशाल ’दीप्त मस्तक जो उसके उन्नत भाग्य के सूचक हैं , का सहर्ष स्वागत किया, जिस प्रकार कोई अपने प्रिय

का चुम्बन से स्वागत करता है। संध्याकालीन लाल नेत्रो रूपी किरणों को मैनें उसी प्रकार चुम्बन से विदाई दी । रात्रिकालीन आकाश के जिसमें कली रूपी तारिकाएँ चारो ओर खिली हुई हैं, वे किसी सुन्दर नायिका के समान दिख रही हैं। इस समय रात्रिकालीन - आकाश नायिका के काले बालों के समान लग रहा है। ऐसी रात्रि नायिका बालों को मैंने स्नेहवश चूमा। इस समय प्रकृति में बहनेवाली हवाएँ रसमय होंठ की तरह हैं जो आ - आकर मेरे होंठों का चुम्बन ले रही है। मृत्यु के सहज नियति से क्या आज मेरा अभिसार है, क्या मृत्यु आज मेरा वरण करेगी अर्थात् प्रकृति के जीवन रूपी उल्लास के बीच मृत्यु का आगमन सहज है।

महत्वपूर्ण बिन्दुः

4. जीवन की गत्यात्मकता का सुन्दर वर्णन हुआ है।

4. समाज की संकुचित दृष्टि में जो वासना है वह मेरी दृष्टि में मेरी सहज अभिव्यक्ति है।

4. कविता में सामाजिक गति और मृत्यु को एक साथ रखकर जीवन की अनिश्चितता का बोध कराया गया है।

4. मृत्यु बोध का साक्षात्कार करने वाली कविता महान कविता होती है, चाहे वह कुरान हो, बाइबिल या गीता। हरिवंशराय बच्चन के काव्य की उष्मा मृत्यु बोध ही है। जो प्रस्तुत कविता में भी सुन्दर ढंग से व्यक्त हुई है।

अभ्यास प्रश्न 2

क) निर्देश: निम्नलिखित शब्दों पर टिप्पणी लिखिए।

4. कविता और लोकप्रियता

----

4. हरिवंशराय बच्चन और हालावादः-

ख) ‘क’ और ‘ख’ में मिलान कीजिए।

	‘क’		**‘ख’**
4.	हालावाद	-	काव्य आंदोलन
4.	प्रयोगवाद	-	बेकन
4.	उमर खैय्याम	-	अजनबी
4.	अल्वैर कामू	-	रूबाईयां
5.	ऑफ डेथ	-	अज्ञेय

4.5 हरिवंशराय बच्चन काव्यः विश्लेषण एवं आलोचना

सहित्य क्षेत्र में यह घटना या दुर्घटना अक्सर होती है, कि किसी साहित्यकार को किसी खास मनोवृत्ति का प्रवृत्ति या आंदोलन का कवि घोषित कर दे। हरिवंशराय बच्चन की ख्याति को अधार चूंकि मंच से सुनाई गई कविता ‘‘मधुशाला’’ थी, इसलिए भी उनके इस प्रारम्भिक रूप को पाठकों-समीक्षकों ने ज्यादा स्वीकृति दी। एक अन्य कारण यह भी है कि किसी साहित्यकार की मानसिक-विचाराधात्मक बनावट के निर्माण में कुछ खास परिस्थितियॉं होती हैं। हर रचनाकार की एक मुख्य रचना पक्ष होता है, जिसकी परिधि में उसकी रचनाएँ अस्तित्व लेती हैं। सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियॉं किसी रचनाकार को जन्म देती हैं। ओर सचेत रचनाकार फिर उन परिस्थितियों का गुणात्मक विस्तार का प्रयास करता हैं। यदि किसी रचनाकार की प्रारम्भिक कृति ही महत्वपूर्ण हो और बाद की कृतियां उन महत्वपूर्ण हों तो यह समझना चाहिए कि उस रचनाकार को उसकी पृष्ठभूमि ने तो निर्मित किया लेकिन स्वयं रचनाकार अपनी परिधि का विस्तार नहीं कर पाया। हरिवंशराय बच्चन की कविता के संदर्भ में इस तथ्य को स्मरण रखना इसलिए आवश्यक है कि खुद उनके बाद की कविताओं को समीक्षकों ने ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं समझा है। अभी तक आप हरिवंशराय बच्चन के काव्य की पृष्ठभूमि एवं उनकी कविता के मूल पाठ से परिचित हो चुके हैं। आइए, अब हम बच्चन काव्य की काव्यानुभूति से परिचय प्राप्त करें।

4.5.1- हरिवंशराय बच्चन की काव्यानुभूति-

किसी भी बड़ी कविता के बारे में यह कहा जा सकता है कि वह अपने युग- समाज के घात-प्रतिघात के बीच अस्तित्व लेती हैं जाहिर है घात-प्रतिघात की यह क्रिया अनेक परिस्थितियों एवं

विचारों से जुड़ती है। ऐसी स्थिति में कवि की अनुभूति भी कई प्रकार के संवेगो में से संचालित होती है। इसलिए एक ही कवि कभी प्रणय के गीत गाता है, कभी मृत्यु बोध वरण करता है। कभी नियतिवाद एवं उदासी के गीत रचना है तो कभी क्रांति एवं आवेगपूर्ण कथन कहता है। हरिवंशराय बच्चन काव्य की प्रमुख काव्यानुभूति के संदर्भ को यहॉं हम प्रमुख बिन्दुओं पर चर्चा करेंगे। बच्चन काव्य के निर्माण में मृत्यु बोध ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जीवन और मृत्यु की भूमिका को जो कवि जितना गहरे समझता है, उसकी कविता उतनी प्राणवान होती है। बच्चन पर उमर खैय्याम का बहुत प्रभाव पड़ा था। उमर खैय्याम की रूबाइयों ने 'मधुशाला' के निर्माण में ही नहीं स्वंय हरिवंशराय बच्चन के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। बच्चन जी ने लिखा है- ''मरते तो सभी हैं, पर एक मरकर मर जाता है और एक मरकर अमर हो जाता है। भेद है मरने के अंदाज में।''

मृत्यु बड़ी विचित्र है, वह बगैर हाथ उठाए भी मार सकती है, हाथ उठाकर भी छोड़ सकती है।

मृत्यु की प्रतीक्षा मृत्यु से अधिक डरावनी होती है। जिस प्रकार महादेवी वर्मा ने लिखा है, अमरता है जीवन का ह्मस,/मृत्यु जीवन का चरम विकास। उसी प्रकार हरिवंशराय बच्चन ने लिखा है- इस पार प्रिये मधु है, तुम हो/ उस पार न जाने क्या होगा''। उस पार की आकांक्षा वही कर सकता है जो जीवन को संपूर्णता में समझता हो।

आरम्भिक काव्य- संग्रहों मधुशाला, मधुबाला और मधुकलश के आधार पर हरिवंशराय बच्चन को प्रणयानुभूति का गायक कहा गया है। प्रणय के ये गीत साकी, मयखाने के माध्यम से ओर जीवंत हो उठे हैं। ''उल्लास चपल, उन्माद तरल, प्रतिपल- पागल मेरा परिचय जल में, थल में, नभ मंडल में, है जीवन की धारा बहती, संसृति के कूल किनारों को, प्रतिक्षण सिंचित करती रहतीं

× × ×

आज मन वीणा प्रिये फिर ये कसो तो,

मैं नहीं पिछली अभी झंकार भूला, मैं नहीं पहले दिनों का प्यिाल भूला।

गोद में ले गोद से मुझको लसो तो, आज मन वीणा प्रिये फिर से कसो तो।

× × ×

गरमी में प्रातः काल पवन, बेला से खेला करता जब, तब याद तुम्हारी आती है।

× × ×

ओ पावस के पहले बादल, उठ उमड़ गरज, फिर घुमड़ चमक, मेरे मन प्राणों पर बरसो।

× × ×

तुमको मेरे प्रिय प्राण निमंत्रण देते,

× × ×

सीख यह रागों की रात नहीं सोने देती,

× × ×

प्रिय शेष बहुत है, रात अभी मत जाओ,

× × ×

तुम्हारे नील झील से नैन, नीर निर्झर से लहरें केश।

× × ×

मधुर प्रतिक्षा ही जब इतनी प्रिय तुम आते तब क्या होता प्रणयानुभूति के ये गीत सरल, सहज भाषा में कहे गये हैं, जो पाठक को सहज ही जोड़ देता है। प्रेम, उमंग के गीत बच्चन काव्य की आधार भूमि रहे हैं, लेकिन क्रमशः बाद के काव्यों में वे सामाजिक भूमि पर उतरे हैं। हॉलाकि इसका संकेत वे ''मधुशाला'' में ही दे चुके थे- ''मंदिर- मस्जिद भेद बढ़ाते।/ भेद मिटाती मधुशाला।'' हरिवंशराय बच्चन की कविता में संघर्षरत मानव का दृश्य कई जगह मिलता है। जैसे प्रस्तुत कविता देखें -

''अग्निपथ! अग्निपथ! अग्निपथ!

वृक्ष हों भले खड़े, हों घने, हों बड़े,

एक पत्र छाँह भी/माँग मत, माँग मत, माँग मत!

अग्निपथ! अग्निपथ! अग्निपथ!

तू न थकेगा कभी! तू न थकेगा कभी!

तू न मुड़ेगा कभी/कर शपथ! कर शपथ! कर शपथ!

ये महान दृश्य है, चल रहा मनुष्य है,

अश्रु, स्वेद, रक्त से/लथपथ, लथपथ, लथपथ,

इसी तरह कवि केवल व्यैक्तिक जीवन का अभिलासी नहीं नहीं है, उसने अपने को संघर्ष के बीच भी देखा है -

''तीर पर कैसे रूकूँ में, आज लहरों में निमंत्रण है'' इसी प्रकार बच्चन जी लिखते हैं - 'गरल पान तू कर बैठा/विष का स्वाद बताना होगा।'

हरिवंशराय बच्चन मूलतः आत्मानुभूति के कवि हैं। सामाजिक विद्रोह, वेदना, संघर्ष , प्रणयानुभूति सभी आत्मानुभूति के धरातल पर व्यक्त हुए हैं। निज के उद्गारों को व्यक्त करना उन्हें काम है -

'मै निज उर के उद्गार लिए फिरता हूँ। '

मै निज उर के उपहार लिए फिरता हूँ ।'' (मधुबाला) बच्चन जी ने अपनी आत्मानुभूति को स्पष्ट ढंग से अभिवयक्त किया है- ''मैं छिपाना जानता तो/जग मुझे साधु समझता/शत्रु मेरा बन गया है/ छल रहित व्यवहार मेरा / वृद्ध जग को क्यों अखरती है क्षणिक मेरी जवानी / हे आज भरा जीवन मुझमें है आज भरी मेरी गागर।''

× × ×

''वासना जब तीव्रतम थी बन गया था संयमी मै

हे रही मेरी क्षुधा ही सर्वदा आहार मेरा

कह रहा जग वासनामय, हो रहा उद्गार मेरा।''

× × ×

''जीवन - अनुभव - स्वाद न कटु अति

मेरा चिह्वा पर आता/कौन मधुर मादकता मेरे गीतों के अंदर पाता ?''

स्पष्ट है कि अपनी आत्मानुभूति को सरल, सहज भाषा में बच्चन जी ने अभिव्यक्त किया है।

4.5.2 हरिवंशराय बच्चन की कविता में भाषा

हरिवंशराय बच्चन को हिन्दी साहित्यकारों ने यह श्रेय दिया है कि उन्होंने हिन्दी कविता की भाषा को वायवीयता से उतारकर उसे ठोस सामाजिक आधार दिया। हिन्दी कविता में तत्सम शब्दों के स्थान पर लोकप्रचलित शब्दों को आप ले आये। उन्होंने गद्य की तान वाली कविता लिखी, गद्य नहीं लिखा (महावीर प्रसाद द्विवेदी की तरह)। हरिवंशराय बच्चन ने सीधे - सादे वाक्य को कविता बनाया, यह उनकी विशेषता हैं। नहीं तो उसके पहले और बाद में भी कविता की भाषा कितनी सूक्ष्य होती गई है, इसे हम देख सकते हे - **'हरिऔध'** – दिवस का अवसान समीप था/गगन था

कुछ लोहित हो चुका / **निराला** - मेघमय आसमान से उतर रही/संध्या - सुंदरी परी सी , **शमशेर** - एक पीली शाम/ओर पतक्षर का अटका हुआ पत्ता। स्पष्ट है कि भाषा की सूक्ष्मता को बच्चन जी ने बोलचाल की शैली से सँवारा। इस संदर्भ में हम कुछ उदाहरण देख सकते हैं - 'दिन जल्दी -जल्दी ढलता है। ' × × × 'आओ हम पथ से हट जायें × × ×'चाद सितारे मिल के गाओ' × × × 'प्रिय शेष बहुत है रात अभी मत होओ × × × 'प्रियतम तू मेरी हाला है, में मदिरालय के मंदर हूँ' × × × 'कितले मर्म बता जाती है' × × × 'संध्या सिंदूर लुटाती है' × × × 'किस कर में यह वीणा धर हूँ ? × × ×'विष का स्वाद बताना होगा' × × ×' जो बीत गई वो बात गई' × × × 'अब वे मेरे गान कहाँ हैं।' × × × 'बीते दिन कब आनेवाले।' × × × 'कोई गाता में सो जाता!' × × × 'क्या भूलूँ , क्या याद करूँ में !' × × × 'कितना अकेला आज में!' जैसे सीधे - सादे वाक्य को बच्चन जी ने कविता बनाया , यह उनका ऐतिहासिक काम था। इसमें न तो छायावादियों की तरह वायवीयता है और ना द्विवेदी कालीन कविता की तरह इतिवृत्तात्मकता। बच्चन जी की भाषा पर रामस्वरूप चतुर्वेदी जी ने टिप्पणी करते हुए लिखा है: ''बच्चन अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार कविता में बोलचाल का प्रयोग करते हैं। इस संदर्भ में यह लक्षित करना रोचक है कि कैसे घरेलू प्रकार का साधारण नाम 'बच्चन' आधुनिक हिन्दी कविता का क्रमशः एक महत्वपूर्ण नाम बन गया। बच्चन का ध्यान उर्दू काव्य शैली पर भी था जहाँ भाषा के बोले जाने वाले रूप का प्रयोग सर्वाधिक काम्य रहा है। जहाँ गजल लिखी नहीं कही जाती हैं। बोलचाल वे अपने नगर इलाहाबाद से सीखते है तो उर्दू काव्य शैली के प्रभाव के लिए उसके सबसे बड़े कवि मीर के प्रति आभारी है। बच्चन अपनें काव्य विकास के क्रम में उत्तरोत्तर उर्दू की साफगोई की ओर झुकते गये।''

अभ्यास प्रश्न 3)

निर्देशः नीचे कुछ कथन दिये गये हैं। जिनमें कुछ सही हैं और कुछ गलत हैं। कथन के सामने उचित चिह्न लगाइए।

4. हरिवंशराय बच्चन का पहला कविता संग्रह 'मधुशाला'है।

4. 'मधुशाला' का प्रकाशन वर्ष 1935 है।

4. 'मधुशाला' पर उमर खैय्याम की रूबाईयो का प्रभाव है।

4. 'दिवस का अवसान समीप था' पंक्ति के लेखक हरिवंशराय बच्चन हैं।

5. 'अग्निपथ' कविता के रचनाकार अमिताभ बच्चन हैं।

4.6 सारांश

- हरिवंशराय बच्चन हिन्दी साहित्य में 'हालावाद' के प्रवर्तक कहे गये हैं। हालाकि हिन्दी कविता में 'हालावाद' नाम का कोई आन्दोलन उस रूप में नहीं चला, जिस प्रकार 'प्रयोगवाद' या 'छायवाद' जैसे काव्यान्दोलन चले।
- हरिवंशराय बच्चन हिन्दी कविता में लोकप्रियता की दृष्टि से ऐतिहासिक महत्व रखते हैं। हरिवंशराय बच्चन ने कविता को अकादमिक क्षेत्र से बाहर निकालकर उसे जन सामान्य के हिन्दी पाठक वर्ग से जोड़ा।
- 'हालावाद' कोई सुनिश्चित या प्रतिबद्ध विचारधारा नहीं थी बल्कि इसमें एक मनोवृत्ति या प्रतिक्रिया का रूप ही ज्यादा था। हालावादी मनोवृत्ति के पीछे उमर खैय्याम की रूबाइयों की प्रेरणा रही है। खैय्याम की तरफ बच्चन के झुकाव का कारण काव्य - शैली के कारण भी था, असाम्प्रदायिक दृष्टिकोण के कारण भी और आशावादी दृष्टिकोण के कारण भी।
- हरिवंशराय बच्चन के काव्य पर मृत्यु बोध का गहरा असर है। बच्चन ने मृत्यु के अन्तर्भाव में काव्य को उल्लसित किया है। ज्या पॉल सार्त्र ने लिखा है -

मृत्यु जीवन को परिभाषित करती है' की तरह ही बच्चन जी ने मृत्यु के अस्तित्व को स्वीकार करके अपनी रचना को मूल्यवत्ता प्रदान की है।

- हरिवंशराय बच्चन की प्रारंभिक रचनाएँ 'हाला', 'मधुबाला' , 'मधुशाला' , का मिजान अलग ढंग का है और बाद की रचनाएँ 'आकुल अंतर' 'निशा - निमंत्रण' , इत्यादि का दूसरे ढंग का । प्रारंभिक रचनाएँ आनंद - उमंग से उल्लसित हैं तो बाद की रचनाएँ सामाजिक मनावृत्ति से । व्यक्तिकता उभयनिष्ठ है।
- हरिवंशराय बच्चन ने हिन्दी कविता की भाषा को सहजता प्रदान की । उन्होंने छायावादी वायवीयता से हिन्दी कविता की भाषा मुक्त किया और बोलचाल के शब्दों से भाषा में सजीवता लाये।

4.7 शब्दावली

- **नव्य -** स्वच्छंदतावाद - छायावाद के बाद का आन्दोलन, जिसमे रहस्यात्मकता का बहिष्कार है।
- **संधि - युग** – दो प्रवृत्तियों के बीच का समय

- **संक्रान्ति काल** – विपरीत प्रवृत्तियो के एक साथ आने से अस्पष्ट चेतना का काल
- **वायवीयता** – कल्पना की अतिशयता
- **पुनर्मूल्यांकन** – किसी वस्तु, विचार को नये संदर्भो में जाँचना
- **समस्यापूर्ति** – मध्यकालीन कविता का ढंग
- **हालावाद** – रोमांस, मस्ती, प्रणयानुभूति को हाला के प्रतीक के माध्यम से व्यक्त करने वाला आन्दोलन
- **क्षणभंगंर** – थोड़े समय बाद नष्ट होने वाला
- **मृत्यु बोध** – मृत्यु को सृजनात्मक धरातल पर स्वीकार करना
- **मांसलवाद** – नायिका शरीर को कविता के केद्रं मे रखकर चलने वाला काव्यान्दोलन
- **नियतिवाद** – भाग्यवाद, मनुष्य के कर्म पूर्व निश्चित हैं, ऐसी मान्यता वाला जीवनदर्शन
- **आत्मानुभूति** - स्व की भावना को व्यक्त करना।

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1) (क)

4. छायावादोत्तर 4. स्वच्छंदतावदी 4. हालावाद

4. मंच 5. मधुशाला

(ख) 4. सत्य 4. असत्य 4. असत्य 4. सत्य 5. असत्य

अभ्यास प्रश्न 2) (ख)

4.काव्य आन्दोलन 4. अज्ञेय 4. रूबाईयाँ

4. अजनबी 5. बेकन

अभ्यास प्रश्न 3)

4. असत्य 4. सत्य 4. सत्य 4. असत्य 5. असत्य

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4. बच्चन: विशेषांक – संकल्य, जुलाई - सितम्बर 2009।

4. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन।

4. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का आधुनिक इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन।

4.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

4. कुमार, (सं) अजित, बच्चन ग्रन्थावली।

4.11 निबंधात्मक प्रश्न

4. 'हालावाद' की प्रवत्तियाँ स्पष्ट कीजिए।

4. हरिवंशराय बच्चन की कविता की प्रवृत्ति स्पष्ट कीजिए।

इकाई 5 प्रगतिवादी कविता : संदर्भ एवं प्रकृति

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 प्रगतिशील कविता की पृष्ठभूमि
5.4 प्रगतिशील कविता की विशेषताएँ
5.5 सारांश
5.6 शब्दावली
5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.8 सन्दर्भ सूची
5.9 उपयोगी पुस्तकें
5.10 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

इस अध्याय में अब हम प्रगतिवादी कविता के बारे में अध्ययन करते हुए उन परिस्थितियों को समझने की कोशिश करेंगे जिससे प्रगतिशील चेतना पैदा हुई और प्रगतिवादी कविता का समय शुरू हुआ। 1930 के आसपास जयशंकर प्रसाद की तितली में सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की कुल्ली भाट, बिलेसुर बकरिया, चतुरी चमार, महादेवी वर्मा के कई रेखाचित्रों में सुमित्रानंदन पंत के रूपाभ में कल्पना के स्थान पर यथार्थ और प्रगतिशील मूल्यों की बानगी दिखाई पड़ने लगती है। यही वह समय था जब आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने निबंधों में लोकमंगल के विचार को लेकर आ रहे हैं। कांग्रेस के प्रस्ताव में मज़दूरों के हित की बात होने लगी, किसान-मजदूर आंदोलन स्थापित होने लगे। यहाँ के बुद्धजीवियों में एक नई चेतना आई। पश्चिम में 1935 में ई एम फ़ास्टर के सदारथ में प्रोग्रेसिव राइटर्स असोसियेशन का अधिवेशन हुआ और यहीं से प्रोग्रेसिव लिट्रेचर (प्रगतिशील साहित्य) शब्द प्रचलित हुआ। 1936 में भारत में मुल्कराज आनंद और सज्जाद जहीर के प्रयासों से प्रगतिशील लेखक संघ का पहला अधिवेशन लखनऊ में प्रेमचंद की अध्यक्षता में हुआ। यहाँ से भारत में प्रगतिशील लेखक संगठन का प्रसार भारत में हुआ। प्रेमचंद ने लेखक को स्वभावतः प्रगतिशील बताया।

प्रगतिवाद के पहले के काव्य धारा में छायावाद में कल्पना, भावुकता, रोमन और वैयक्तिकता का बोलबाला था। एक ओर छायावाद राष्ट्रीय मुक्ति का काव्य और भारतीय नवजागरण की बौद्धिक अभिव्यक्ति थी वहीं दूसरी ओर यह वैयक्तिकता, रहस्यवाद, यथार्थ से पलायन का रोमांटिक काव्य भी। फलतः छायावाद में सामाजिक और मानवीय यथार्थ बहुत हद तक अभिव्यक्त नहीं हो पा रही थी। उस समय के उपन्यास भी युगीन यथार्थ को ठीक से नहीं कह पा रहे थे। ऐसे में छायावाद के भीतर से ही प्रगतिशील मूल्यों के प्रति एक भाव धारा फूटी। निराला की जूही की कली और वह तोड़ती पत्थर जैसी कविता में प्रगतिशील मूल्यों की झलक मिलने लगी। वहीं निराला प्रस्तावित मुक्त छन्द भी कहन के शिल्प को नए कलेवर में कहने का ही यत्न है। निराला लिखते हैं, "जा तू प्रिये छोड़कर बन्धनमय छन्दों की छोटी राह।" भारतीय संदर्भों में देखें तो सुमित्रानंदन पंत के युगांत में भी प्रगतिवाद के तत्व दिखने लगते हैं। महादेवी वर्मा और जयशंकर प्रसाद के बाद के लेखन में भी यह देखा जा सकता है। जो भी हो छायावाद के अंतस से ही प्रगतिशील भावधारा का उदय दिखाई पड़ने लगता है किंतु व्यवस्थित रूप में प्रगतिशील साहित्य की शुरुआत 1936 ई के प्रगतिशील लेखक संघ के अधिवेशन से ही मानी जानी चाहिए।

प्रगतिशील साहित्य के आने के पहले तक यानी छायावाद तक कविता की भीतरी निर्मिति दार्शनिक और कमोबेश आध्यात्मिक थी किंतु प्रगतिशील साहित्य में विचार और आधुनिकता ने वह जगह ले ली। प्रगतिशील साहित्य पर कार्ल मार्क्स के विचारों और आधुनिकता का प्रभाव है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

- प्रगतिशील चेतना के विकास, प्रक्रिया और पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे;
- छायावाद से प्रगतिशील कविता कैसे अलग हुई जान सकेंगे;
- प्रगतिशील साहित्य के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक संबंधों को समझ सकेंगे;
- प्रगतिशील कविता और इसकी त्रयी नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और त्रिलोचन को समझ सकेंगे;
- प्रगतिशील कविता की प्रमुख विशेषताओं का विवेचन और अध्ययन कर सकेंगे।

5.3 प्रगतिशील कविता की पृष्ठभूमि

साहित्य में विभिन्न प्रवृत्तियों, वादों, आंदोलनों और धाराओं का विकास जीवनानुभव, दृष्टिकोण, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक बदलाव से ही होता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने साहित्य-इतिहास में इसे ही चित्तवृत्ति का परिवर्तन कहा है। वे लिखते हैं, "जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिम्ब होता है तब यह निश्चित है कि जनता की

चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य-परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है। जनता की चित्तवृत्ति बहुत-कुछ राजनीतिक, सामाजिक, सांप्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है।" प्रगतिवाद आते आते आर्थिक शब्द भी इन बदलावों में जुड़ गया। आर्थिक चिंतन को विचार के केंद्र में लाने का श्रेय पश्चिम के विचारक कार्ल मार्क्स को जाता है। प्रगतिवाद के विचार की निर्मिति कार्ल मार्क्स के दर्शन से हुई है। कार्ल मार्क्स के अनुसार यह विश्व ईश्वर की बनायी हुई नहीं है। यह समाज मनुष्य की निर्मिति है। मार्क्स का वैचारिक सिद्धांत द्वंद्वात्मक भौतिकवाद में मनुष्य केंद्र में हैं। यहाँ धर्म के स्थान पर विज्ञान को महत्व दिया जाने लगा और मनुष्य की समानता पर जोर दिया गया। यहाँ बताया गया कि मनुष्य समाज में दो वर्ग है एक अमीर और दूसरा ग़रीब। कार्ल मार्क्स के नए समाज में धार्मिक और वर्गीय विभेद को मिटा कर मनुष्यों की समता की बात की गई। साहित्य में इन्हीं समतमूलक विचारों का प्रभाव के कारण प्रगतिवाद के केंद्र में है। प्रेमचंद ने प्रगतिशील लेखक संघ के अध्यक्षीय वक्तव्य में कहा- "हम साहित्य को केवल मनोरंजन और विलासिता का वस्तु नहीं समझते। हमारी कसौटी पर केवल वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो? जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं क्योंकि अब और सोना मृत्यु का लक्षण है।" वहीं शिवदान सिंह चौहान 'विशाल भारत' पत्रिका में प्रकाशित निबंध 'भारत में 'प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता' में लिखते हैं- "हमारा साहित्यिक नारा कला कला के नहीं, वरन् कला संसार बदलने के लिए है। इस नारे को बुलंद करना प्रत्येक साहित्यिक का फ़र्ज़ है।"

यह वह समय है जब भारत में स्वाधीनता का आंदोलन एक नया रूप अख्तियार कर रहा था। गांधी जी का सविनय अवज्ञा भंग हो गया था। भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव की फाँसी के बाद नेहरू जिसे 'विराट रिक्तता' संबोधित कर रहे थे और जनता में साम्राज्यवाद, समाजवाद, लोकतंत्र की अवधारणाओं पर बहसें होने लगी थी। नेहरू जैसे कांग्रेसियों को भी समाजवाद या तो लुभाने लगा था अथवा वे उससे प्रभावित होने लगे थे। सोवियत रूस का मॉडल हरेक लोकतंत्र की इच्छा रखने वाले राजनेताओं को प्रभावित कर रहा था। इस समय के रचनाकार जन की अभिव्यक्ति के महत्व को समझने लगे थे। कविता में किसान, श्रमजीवी और मजदूरों की अभिव्यक्ति होने लगी। केदारनाथ अग्रवाल ने लिखा 'एक हथौड़ा वाला घर में और हुआ।' यहाँ एक बात और लक्षित करने लायक़ है कि साहित्य में कोई परिवर्तन अचानक नहीं आता। 1936 कोई एक निश्चित तिथि नहीं है। हरेक परिवर्तन आने से पहले अपने संकेत देता है और जाने के बाद भी जीर्ण-शीर्ण अवस्था में उसके निशान मिलते रहते हैं। छायावाद के भीतर से ही 1930 के आसपास जिस नवीन सामाजिक चेतना का संकेत दिख रहा था 1936 में वह अपना आकार ग्रहण करता है। इसे प्रगतिशील साहित्य या प्रगतिवाद का नाम दिया गया। यह केवल मार्क्स के विचारों का साहित्यिक

रूपांतरण भर नहीं था। जो आलोचक ऐसा मानते हैं वह कहीं न कहीं किसी पूर्वग्रह से ग्रसित होते हैं। प्रगतिवाद अपने उद्भव के समय से ही एक जीवन-दृष्टि के रूप में उभरा जिसमें उपन्यास, कविता और आलोचना सबमें अपनी जगह बनायी। छायावाद कहीं न कहीं केवल कविता तक में सीमित था पर प्रगतिवाद के साथ ऐसा नहीं हुआ। यह प्रगतिवाद की ही विशिष्टता है कि छायावादी वैयक्तिकता की जगह ठोस वास्तविकता और सामाजिकता को अपने चिंतन के केंद्र में रखता है। भक्ति आन्दोलन के बाद प्रगतिवाद के समय ही प्रगतिवाद का अखिल भारतीय चरित्र देखने को मिलता है। यह वही समय है जब हिंदी के अतिरिक्त उर्दू, गुजराती, बांग्ला, मराठी, पंजाबी, तेलुगू इत्यादि सभी भारतीय भाषाओं में प्रगतिशील साहित्य का उन्नयन हो रहा था। प्रगतिवाद के विराट सामाजिक भावना और अखिल भारतीय स्वरूप से हिंदी भी लाभान्वित हुई। जनता के जीवन का सामाजिक यथार्थ और चित्रण हुआ जिसमें मज़दूरों, किसानों, श्रमिकों, निम्न मध्य वर्ग में एक नई चेतना आई। वे अपने अधिकारों के प्रति सजग हुए। इस समय प्रकाशित होने वाली पत्रिका रूपाभ, हँस, काव्यधारा, नया साहित्य, संकेत इत्यादि में प्रगतिशील मूल्यों की रचनाएँ प्रकाशित हो रही थीं। इस समय में सामंतवाद, साम्राज्यवाद, पूँजीवाद, फासीवाद के विरोध रचनाएँ प्रकाशित हो रही थी। सुमित्रानंदन पंत की ग्राम्या, निराला की वह तोड़ती पत्थर, कुकुरमुत्ते, नये पत्ते, केदारनाथ अग्रवाल की युग की गंगा, त्रिलोचन की धरती इत्यादि इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

प्रगतिवाद की आलोचना भी खूब हुई। कुछ आलोचकों ने इसका समय 1936 से 1954 तक बताया और इसे पश्चिमी विचारों के प्रभावों से आयातित माना। जबकि भक्तिकाल की ही तरह प्रगतिवाद भी हिंदी में स्वाभाविक विकास की तरह ही आई। साथ ही जैसा भारतीय परिदृश्य तत्कालीन समय में निर्मित हो रहा था प्रगतिवाद का आना तय था। हालांकि प्रगतिवाद के पीछे की दार्शनिकता मार्क्सवादी चिंतन पर आधारित थी। फिर भी प्रगतिवाद में छायावादी भावुकता, रोमान और व्यक्तिकता की जगह सामाजिक यथार्थ और मनुष्य की वर्गीय चेतना का जो अवकाश दिया वह प्रगतिवाद का स्वाभाविक विकास को ही रेखांकित करता है। प्रगतिवाद पर विचार करते हुए मार्क्सवाद, साम्यवाद, यथार्थवाद, सामाजिक यथार्थवाद, आदर्शोन्मुख यथार्थवाद, भौतिकवाद, द्वंद्वात्मक भौतिकवाद, समाजवाद जैसे पारिभाषिक शब्दावली को जाने बगैर संभव नहीं है। कार्ल मार्क्स का चिंतन 1818-1883 के बीच हुआ। मार्क्स ने फ़ायरबाख़ के भौतिकवाद और हीगल के द्वंद्ववाद के सिद्धांत को मिलाकर द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के विचार को स्थापित किया। बाद में ऐंगिल्स ने इस विचार को आगे बढ़ाते हुए वैज्ञानिक समाजवाद को भी मार्क्स के विचारों के साथ जोड़ा। दरअसल मार्क्स की चिंता आर्थिक थी। वे आर्थिक आधारों पर उत्पन्न वर्ग-भेद को समाप्त कर समाज में समता लाना चाहते थे। जाहिर है कि यूरोप की औद्योगिक क्रांति और औद्योगिक क्रांति से जन्मी आधुनिकता का प्रभाव मार्क्सिस्ट दृष्टि पर पड़ा है। मार्क्सवाद की दृष्टि सृष्टि और समाज का समन्वित दर्शन है। जहाँ किसी भी प्रकार का भेद नहीं। एक समतामूलक समाज की स्थापना इसका ध्येय है। मार्क्सवाद का विचार ऐतिहासिक भौतिकवाद से होते हुए

समतामूलक समाज तक जाता है। मनुष्य उत्पादन संबंध से जुड़ा रहता है। इसी संबंध से दो विरोधी शक्तियों का संघर्ष चलता है। यह दो विरोधी शक्तियां शोषक और शोषित का होता है। जो शोषक है वह सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक रूप से प्रबल और शासक होता है और जो शोषित है वह श्रमजीवी और कमजोर। श्रम के इसी असमानता को और शोषक-शोषित संबंध का समान वितरण की वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। और इसी समानता पर साम्यवाद और समाजवाद का स्वप्न फलीभूत होता है। यही वैज्ञानिक दृष्टिकोण समाज को प्रगति की ओर ले जाता है। यही विचार प्रगतिशील चिंतन और साहित्य के लिए आधार है।

प्रगतिवाद का आरम्भ रूस की क्रांति और बोल्शेविक क्रांति से 1917 में शुरू हुआ। और यहीं से आर्थिक विषमता को ख़त्म कर वर्गहीन समाज की स्थापना और सामाजिक यथार्थवाद जैसे विचारों ने जन्म लिया। 1936 में भारत में संपन्न हुए प्रगतिशील लेखक संगठन के अधिवेशन ने प्रगतिवाद के विचारों और स्वप्नों को साहित्य में स्थान दिया। प्रगतिशील लेखक संघ के परिपत्र में कहा गया, "उन्नति से हमारा तात्पर्य उस स्थिति से है, जिससे हममें दृढ़ता और कार्य शक्ति उत्पन्न हो, जिससे हमें अपनी दुर्व्यवस्था की अनुभूति हो, हम देखें कि किन कारणों से हम इस निर्जीवता और ह्रास की अवस्था को पहुँच गए और उन्हें दूर करने की कोशिश करेंगे।" इस समय के आसपास नागपुर के भारतीय साहित्य परिषद् में भारतीय लेखकों ने कहा, "जीवित और शाश्वत साहित्य वही है जो जीवन को बदलना चाहता है और उसे उन्नति का मार्ग दिखाता है और समूची मानवता की सेवा उसका मंतव्य है।"

छायावाद में निराला प्रस्ताविक छंद के बंधन से मुक्ति यानी मुक्त छन्द और भावुक कल्पना के स्थान पर यथार्थ को लिखने की बात और सुमित्रानंदन पंत की युगांत की प्रगतिशील कविताएँ छायावाद से मोहभंग का ही परिणाम है और मानवता की सेवा का ही स्वप्न है। प्रगतिशील लेखन संघ के दूसरे अधिवेशन में रबीन्द्रनाथ टैगोर के अध्यक्षीय पर्चे से उनका संदेश पढ़ा गया, "साहित्य में पगतिवाड़ का जन्म ही जनसमूह की राजनीतिक चेतना के फलस्वरूप हुआ। चिर सुसुप्त मानवता जाग उठी और उसने मुट्ठी भर धन कुबेरों के इशारे पर नाचने से इंकार कर दिया। जनसमूह ने अपने जीवन की बागडोर स्वयं अपने हाथों में ले ली और जनता के हृदय में उठती लहरों। कि प्रतिबिंब पड़ा और फलस्वरूप प्रगतिवाद का जन्म हुआ। अतः रूढ़ अर्थ में प्रगतिवाद मार्क्स के वर्ग-युद्ध पर आधारित है। इसी हेतु संसार की मानवता को कुचलने एवं उसे अब तक पददलित रखने वाले धनिक वर्ग के प्रति तीव्रता और कटुता इसमें स्वाभाविक है।" प्रगतिवाद का सम्पूर्ण भारतीय परिदृश्य में विस्तार एवं अन्य भारतीय भाषाओं में इसकी व्यापकता प्रगतिवाद के महत्व का स्वयंसिद्ध प्रमाण है। साथ ही इसके विकास में मार्क्सवाद के विचार, आधुनिकता के विचार, फ्रांसीसी क्रांति का विचार जैसे पश्चिमी विचार जैसे विचारों का प्रभाव तो है ही साथ ही साथ यह भारतीय कविता के स्वभाविक विकास की भी निर्मिति है। यानी प्रगतिवाद केवल पश्चिमी विचारों का साहित्यिक रूपांतरण भर नहीं है बल्कि यह कविता के स्वाभाविक विकास-क्रम की निर्मिति

भी है। क्योंकि प्रगतिवाद आते आते जनता की चित्तवृत्ति का भी स्वाभाविक विकास होने लगा था। प्रगतिवाद ने कविता की संवेदना को बढ़ाया और कविता ग्रामीण संवेदना की ओर उन्मुख हुई। कविता अपनी रहस्यात्मकता से निकल यथार्थ के जमीन पर आई। कविता में निम्नवर्ग और मध्यवर्ग के लोगों की प्रतिष्ठा हुई। श्रमिकों, आम आदमियों, किसानों की चिताओं, समस्याओं की अभिव्यक्ति और जन-भाषाओं की काव्यमय अभिव्यक्ति प्रगतिवाद की उपलब्धि है। व्यंग्य, विवरण, प्रेम, क्रांति, विरोध के स्वर प्रगतिवाद का मुख्य स्वर बना।

5.4 प्रगतिशील कविता की विशेषताएँ

आम जनता की समस्याओं और उनके जीवन के यथार्थ अनुभव की असल अभिव्यक्ति प्रगतिवादी कविता में हुई। इन कविताओं में शोषण और शोषित के संबंधों की व्याख्या किया गया। श्रमशील जनता एवं श्रम के महत्व का प्रतिपादन किया गया। जन और समाज के संबंधों को, ग्रामीण और नगरीय द्वंद्व को, अमीर और गरीब को बुर्जुवा और सर्वहारा को दो इकाइयों में देखते हुए प्रगति के मूल्यों की ओर अग्रसारित किया गया। फ्रांसीसी क्रांति से उपजे आधुनिकता के तीन मूल्यों समता, स्वतंत्रता और बन्धुत्व को रेखांकित किया गया। संधर्ष और अधिकारों के प्रति सचेतता प्रगतिवादी कविता का मूल्य बन गया। रामविलास शर्मा के अनुसार, "समाज के भीतर जो जीर्ण और मरणशील है, उनके लिए सुंदरता मृत्यु में है, अन्याय और अत्याचार के फरेब को ढूँढने में है, भविष्य के त्रस्त होने और क्षण में ही जीवन की साधें पूरी करने में है। जो जीवित और उदयीमान हैं, उनके लिए सुंदरता सत्य में है, सुख और शांति के उज्ज्वल भविष्य की ओर बढ़ने में है। साहित्य उस मंजिल तक पहुँचने का शक्तिशाली साधन है।" प्रगतिवादी साहित्य ने अपनी संपूर्णता में एक नए सौंदर्यशास्त्र और एक नई दृष्टि के साथ कविता में अपनी जगह बनाती है। प्रगतिवादी कविता की प्रमुख विशेषताओं को लक्षित करें तो वे विशेषताएं निम्नवत् हो सकती हैं-

गांव का यथार्थ चित्र

प्रगतिवादी कविता से पहले हिंदी कविता में गाँव अथवा प्रकृति अथवा श्रम के चित्रों की बहुत उथली, ऊपरी और भावुकतापूर्ण चित्रण ही दिखाई देते हैं। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश काल की कविताओं में गाँव अज्ञानता का, सहजता का और मूर्खता का अज्ञानियों का शरण्य दिखाई देता है। भक्तिकाल में भी सूर की कविताओं में ग्रामीण समाज अशिक्षित और सरल समाज है। भक्तिकाल तक साहित्य का समाज या तो नागर है या आरण्यक। ग्रामीण समाज साहित्य के हाशिए पर ही रहा है। रीतिकाल में भी ग्रामीणों की प्रतिष्ठा नहीं थी। पद्माकर, देव वगैरह के प्रकृति वर्णन में प्रकृति का सुंदर चित्रण ही मिलता है। छायावाद में पहली बार बल्कि उत्तर छायावाद यानी छायावाद के अंतिम दिनों में जब छायावाद के कवि प्रगतिशील मूल्यों की ओर उन्मुख होते हैं तब वहाँ ग्रामीण, श्रम, प्रकृति के असल चित्र देखने को मिलता है। जैसे निराला की 'द्रुत झरो जीर्ण', पंत की ग्राम्या से 'मिट्टी के मैले तन अधफ़टे कुचैले जीर्ण वसन'इत्यादि। प्रगतिवादी कविता में

यह चित्रण यथार्थ के अधिक करीब हो जाता है। बल्कि अपनी व्यंग्यात्मकता और अभिव्यंजना कौशल से अभाव, भूख, कुपोषण, शोषण का मार्मिक चित्रण करता है। नागार्जुन की कविता में यथार्थ वर्णन, व्यंग्य-विधान और चित्रात्मकता में ग्रामीण का यथार्थ चित्रण के साथ साथ नागार्जुन की जन के प्रति आशक्ति और ग्रामीण प्रेम भी दिखता है। वे अपनी कविता ग्राम देवता में लिखते हैं-

"राम, राम ही ग्राम देवता! यथा नाम

शिक्षक तो तुम, मैं शिष्य, तुम्हें सविनय प्रणाम

विजया, महुआ, ताड़ी, गांजा पी सुबह शाम

तुम समाधिस्थ नित रहो, तुम्हें जग से न काम।"

अथवा

"कई दिनों तक चूल्हा रोया, चौकी रही उदास

कई दिनों तक काली कुटिया सोई उसके पास

कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त

कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त"

या प्रेत का बयान कविता में, नागार्जुन का व्यंग्य देखने योग्य है-

उठाकर दोनों बाहें

किट-किट करने लगा प्रेत

किंतु

भूख या क्षुधा नाम हो जिसका

ऐसी किसी व्याधि का पता नहीं हमको

सावधान महाराज

नाम नहीं लीजिएगा

हमारे समक्ष किसी भूख का

यह कविता भारत की भुखमरी, व्यवस्था पर आघात, विडंबना की कथा कहती है।

प्रकृति का यथार्थ चित्रण

प्रगतिवादी कविता ने ग्रामीण और प्राकृतिक अंचल की सुषमा एवं सौन्दर्य का भी प्रामाणिक चित्रण किया है। प्रकृति को देखने का एक अलग दृष्टिकोण ही प्रगतिवादी कवियों के पास है। चाहे अरघान और धरती के कवि त्रिलोचन हों या केन के कवि केदारनाथ अग्रवाल। प्रगतिवादी कवियों ने प्रकृति को देखने के लिए एक नए दृष्टिकोण के साथ साथ एक नया सौंदर्यशास्त्र रचा। केदारनाथ अग्रवाल ने अपनी कविता बसंती हवा में जैसा चित्रण बसंत का किया है वह दुर्लभ है।

"चढ़ी पेड़ महुआ, थपाथप मचाया,

गिरी धम्म से फिर, चढ़ी आम ऊपर,

उसे भी झकोरा, किया कान में 'कू'

उतर कर भगी मैं हरे खेत पहुँची—

वहाँ गेहुँओं में लहर ख़ूब मारी,

पहर दो पहर क्या, अनेकों पहर तक

इसी में रही मैं।

खड़ी देख अलसी लिए शीश कलसी,

मुझे ख़ूब सूझी!

हिलाया-झुलाया, गिरी पर न कलसी!

इसी हार को पा,

हिलाई न सरसों, झुलाई न सरसों,

मज़ा आ गया तब,

न सुध-बुध रही कुछ,

बसंती नवेली भरे गात में थी!

हवा हूँ, हवा, मैं बसंती हवा हूँ!"

अथवा

“देख आया चंद्र गहना।

देखता हूँ दृश्य अब मैं

मेड़ पर इस खेत की बैठा अकेला।

एक बीते के बराबर

यह हरा ठिंगना चना,

बाँधे मुरैठा शीश पर

छोटे गुलाबी फूल का,

सज कर खड़ा है।

पास ही मिल कर उगी है

बीच में अलसी हठीली

देह की पतली, कमर की है लचीली,

नील फूले फूल को सिर पर चढ़ा कर

कह रही है, जो छुए यह

दूँ हृदय का दान उसको।

और सरसों की न पूछो—

हो गई सबसे सयानी,

हाथ पीले कर लिए हैं,

ब्याह-मंडप में पधारी;

फाग गाता मास फागुन

आ गया है आज जैसे।

देखता हूँ मैं : स्वयंवर हो रहा है,

प्रकृति का अनुराग-अंचल हिल रहा है"

प्रकृति को जैसा केदारनाथ अग्रवाल ने देखा है और प्रकृति और मनुष्य के आपसी सह-संबंध को जैसा रेखांकित किया है, वह प्रकृति के शोषण के ख़िलाफ़ है। वे प्रकृति के यथारूप और उपभोग की लक्ष्मण रेखा जानने से पैदा हुआ है। केदारनाथ अग्रवाल की कविता देखिए-

"आज नदी बिल्कुल उदास थी,

सोई थी अपने पानी में,

उसके दर्पण पर

बादल का वस्त्र पड़ा था।

मैंने उसको नहीं जगाया,

दबे पाँव घर वापस आया।"

अथवा

"वह चिड़िया जो—

चोंच मारकर

दूध-भरे जुंडी के दाने

रुचि से, रस से खा लेती है

वह छोटी संतोषी चिड़िया

नीले पंखोंवाली मैं हूँ

मुझे अन्न से बहुत प्यार है।

वह चिड़िया जो—

कंठ खोलकर

बूढ़े वन-बाबा की ख़ातिर

रस उँडेलकर गा लेती है

वह छोटी मुँह बोली चिड़िया

नीले पंखोंवाली मैं हूँ

मुझे विजन से बहुत प्यार है।

वह चिड़िया जो—

चोंच मारकर

चढ़ी नदी का दिल टटोलकर

जल का मोती ले जाती है

वह छोटी गरबीली चिड़िया

नीले पंखोंवाली मैं हूँ

मुझे नदी से बहुत प्यार है।"

श्रम की महिमा

प्रगतिवादी कविता में श्रम की महिमा का रेखांकन हुआ है। आधुनिक पूंजीवाद उद्योग आधारित था जिनमें श्रमिक और मालिक वर्ग का शोषण आम था। श्रमजीवियों की दुर्दशा नारकीय स्थिति में थी। 'युग की गंगा' कविता में लिखते हैं-

"घाट, धर्मशालें, अदालतें

विद्यालय, वेश्यालय, सारे

होटल, दफ़्तर बूचड़खाने

मंदिर, मस्जिद, हाट सिनेमा

श्रमजीवी की हड्डी पर टिके हुए हैं।"

प्रगतिवादी कविता में श्रम की मानवीय गरिमा को एक नई ऊंचाई और सौंदर्यबोध दिया। श्रम में प्रगति की भावना की स्थापना की। तरेरी आँखें और अँधेरा हरने वाला में जैसी जीवन दृष्टि कवि केदार ने देखी है वह प्रगतिशील कविता की उपलब्धि है। केदारनाथ सिंह की कविता देखिए-

अथवा

"एक हथौड़ा वाला घर में और हुआ

हाथी-सा बलवान जहाजी हाथों वाला और हुआ

सूरज-सा इनसान, तरेरी आँखों वाला और हुआ

माता रही विचार अँधेरा हरने वाला और हुआ।"

मध्यवर्ग और निम्न मध्यवर्ग की प्रतिष्ठा

प्रगतिवादी कविता में मध्यवर्ग और निम्नवर्ग की प्रतिष्ठा हुई। उनके श्रम को उचित और आवश्यक नजरिये दे देखा गया। किसान, श्रमिक, मजदूरों, स्त्रियों, शोषित तबकों के प्रति ना सिर्फ़ सहानुभूति रखी गई बल्कि उनके महत्व और सहजीवी अस्तित्व को भी स्वीकारा गया। उनके मजबूरी और संघर्ष को भी जगह मिला।

"जहाँ कहीं से एक अठन्नी लानी होगी

वरना इस चूल्हे के मुँह पर फिर मकड़ी का जाला होगा"

इन वर्गों के जुझारूपन को प्रगतिवादी कविता ने अपनी संवेदना में स्थान दिया। त्रिलोचन की कविता धूप सुन्दर किसानों के श्रम से उपजे खिले सरसों की आभा से सुन्दर होता है।

"धूप सुंदर

धूप में

जग-रूप सुंदर

सहज सुंदर

व्योम निर्मल

दृश्य जितना

स्पृश्य जितना

भूमि का वैभव

तरंगित रूप सुंदर

सहज सुंदर

तरुण हरियाली

निराली शान शोभा

लाल पीले

और नीले

वर्ण वर्ण प्रसून सुंदर

धूप सुंदर

धूप में जग-रूप सुंदर

ओस कण के

हार पहने

इंद्र धनुषी

छबि बनाए

शम्य तृण

सर्वत्र सुंदर

धूप सुंदर

धूप में जग-रूप सुंदर

सघन पीली

ऊर्मियों में

बोर

हरियाली

सलोनी

झूमती सरसों

प्रकंपित वात से

अपरूप सुंदर

धूप सुंदर

मौन एकाकी

तरंगे देखता हूँ

देखता हूँ

यह अनिवर्चनीयता

बस देखता हूँ

सोचता हूँ

क्या कभी

मैं पा सकूँगा

इस तरह

इतना तरंगी

और निर्मल

आदमी का

रूप सुंदर

धूप सुंदर

धूप में जग-रूप सुंदर

सहज सुंदर"

मुक्ति की आकांक्षा

प्रगतिवादी हिन्दी कविता के केंद्र में आधुनिकता के विचार समानता, स्वतंत्रता और बन्धुत्व केंद्र में रहा है। प्रगतिवादी कवियों ने अपनी कविता में मुक्ति के आख्यान को रचा जो समानता, स्वतंत्रता और बन्धुत्व पर आधारित था। त्रिलोचन की कविता देखिए-

"अपनी मुक्ति कामना लेकर लड़ने वाली

जनता के पैरों की आवाजों में मेरा

हृदय धड़कता है।"

लोकोन्मुखी चेतना

प्रगतिवादी कवियों की संलग्नता अपने लोक के प्रति अनिवार्यतः जुड़ा हुआ था। वे अपनी आधुनिक दृष्टि की ताक़त अपने लोक से जुड़ कर ले रहे थे। उनकी अंश्चेतना लोकोन्मुखी थी। तभी उनका नजरिया अपनापे से भरी हुई और विशिष्ट प्रतीत होती है। नागार्जुन की कविता देखिए-

"याद आता है मुझे अपना वह तरउनी ग्राम

याद आती हैं लीचियाँ और आम

याद आते मुझे मिथिला के रुचित भू-भाग

याद आते धान

याद आते कमल, कुमुदिनी और तालमखान

याद आते शस्य श्यामल जनपदों के

-रूप गुण, अनुसार ही रखे गए वे नाम"

वैश्विक दृष्टि

प्रगतिवादी कविता एक और भारतीय चिंतन परम्परा की स्वाभाविक विकास थी वहीं इस पर कार्ल मार्क्स के विचारों का गहरा असर था। प्रगतिशील साहित्य के स्वप्न, आकांक्षा और मूल्य मार्क्सिस्ट विचारों के सर्वथा अनुकूल और समीप थे। इसकी शब्दावली भी मार्क्स के विचारों की शब्दावली से अनुप्राणित थी। 'वह जन मारे नहीं मरेगा' से लेकर 'उस जनपद का कवि हूँ' तक में यह दिखेगा। पूंजीवाद का विरोध और शोषण के विरोध में खड़ी प्रगतिवादी कविताएँ इसका प्रमाण है। रामविलास शर्मा अपनी कविता में लिखते हैं-

"यह मानव का हृदय क्षुत्र इस्पात नहीं है

भय से सिहर उठे वह तरु का पात नहीं है।"

अथवा

पूँजीपतियों को सीधे चुनौती देती हुई कविता

“देश हमारा हिंदुस्तान

लाखों ही मजदूर किसान

इस धरती पर बसने वाले

उसके हित पर मिटने वाले

क्या भागेंगे ताबड़तोड़

हिंदी हम चालीस करोड़

यह आजादी का मैदान

जीतेंगे मजदूर किसान”

या

शमशेर बहादुर सिंह की कविता ‘वाम वाम वाम दिशा समय साम्यवादी को ही देखे-

वाम वाम वाम दिशा,

समय साम्यवादी।

पृष्ठभूमि का विरोध अंधकार-लीन। व्यक्त...

कुहाऽस्पष्ट हृदय-भार, आज हीन।

हीनभाव, हीनभाव

मध्यवर्ग का समाज, दीन।

किंतु उधर

पथ-प्रदर्शिका मशाल

कमकर की मुट्ठी में—किंतु उधर :

आगे-आगे जलती चलती है

लाल-लाल

वज्र-कठिन कमकर की मुट्ठी में

पथ-प्रदर्शिका मशाल।

भारत का

भूत-वर्तमान औ' भविष्य का वितान लिए

काल-मान-विज्ञ मार्क्स-मान में तुला हुआ

वाम वाम वाम दिशा,

समय : साम्यवादी।

अंग-अंग एकनिष्ठ

ध्येय-धीर

सेनानी

वीर युवक

अति बलिष्ठ

वामपंथगामी वह...

समय : साम्यवादी।

लोकतंत्र-पूत वह

दूत, मौन, कर्मनिष्ठ

जनता का :

एकता-समन्वय वह...

मुक्ति का धनंजय वह

चिरविजयी वय में वह

ध्येय-धीर

सेनानी

अविराम

वाम-पक्षवादी है...

समय : साम्यवादी।"

प्रगतिवाद ने लेखकों को सामाजिक यथार्थ दृष्टि प्रदान की; जिससे वे अन्याय और शोषण के विरुद्ध लोहा ले सकें और जो ग़लत हैं उनका प्रतिकार कर सके। केदारनाथ अग्रवाल की एक कविता देखिए-

"काटो काटो काटो करबी

साइत और कुसाइत क्या है

जीवन से बढ़ साइत क्या है

काटो काटो काटो करबी

मारो मारो मारो हँसिया

हिंसा और अहिंसा क्या है

जीवन से बढ़ हिंसा क्या है

मारो मारो मारो हँसिया

पाटो पाटो पाटो धरती

धीरज और अधीरज क्या है

कारज से बढ़ धीरज क्या है

पाटो पाटो पाटो धरती

काटो काटो काटो करबी।"

प्रेम का स्वरूप

क्रांति और प्रेम एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। बगैर प्रेम के कोई भी क्रांति अथवा बदलाव संभव नहीं। प्रगतिशीलों की कविताओं में प्रेम के प्रति वायवीय नहीं बल्कि एकान्तिक निष्ठा इन्हें महत्वपूर्ण बनाती है। वह चाहे शमशेर बहादुर सिंह की कविता टूटी हुई बिखरी हुई हो या केदारनाथ अग्रवाल की ही मेरी तुम या जमुन जल हो या त्रिलोचन की प्रेम कविताएँ। इनका प्रेम संकुचित नहीं बल्कि यथार्थ के धरातल पर मनुष्यता को विस्तारित करने वाला और संभावनाओं से पूर्ण बनाता है। प्रगतिशीलों का प्रेम उन्हें पलायनवादी नहीं बल्कि उन्हें जगत-जीवन का प्रेमी बनाता है। यहाँ प्रेम में रोमानी भावुकता नहीं बल्कि सकर्मक क्रियाशीलता और यथार्थ के ज़मीन पर विकसित हुआ प्रेम संबल और सौहार्द बन जाता है। त्रिलोचन की कविता है-

यूँ ही कुछ मुसकाकर तुमने

परिचय की वह गाँठ लगा दी

था पथ पर मैं भूला-भूला

फूल उपेक्षित कोई फूला

जाने कौन लहर थी उसदिन

तुमने अपनी याद जगा दी

प्रगतिवाद की इन्हीं प्रवृत्तियों और महत्व को समझते हुए यह कहा जा सकता है कि प्रगतिवाद की सबसे बड़ी उपलब्धि सामाजिक यथार्थ के धरातल पर प्रगतिशील चिंतन का विकास करने में इसका योगदान सर्वाधिक है। जन-गण-मन में मानव की प्रतिष्ठा हुई। श्रमिकों-किसानों-मजदूरों-मज़लूमों-स्त्रियों और हाशिए पर के लोगों को समाज में स्वीकार्यता मिली।

बोध प्रश्न

1. प्रमुख प्रगतिशील कवियों के नाम लिखे।
2. प्रगतिशील लेखक संघ के पहले अध्यक्ष कौन थे?
3. भारत में प्रगतिशील लेखक संघ किन दो रचनाकारों के प्रयास से और कब बना और इसके पहले अध्यक्ष कौन थे?
4. भारत में प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता के लेखक कौन हैं और यह निबंध उस समय किस पत्रिका में प्रकाशित हुआ।

5.5 सारांश

प्रगतिवादी साहित्य भातीय चिंतन परम्परा का स्वाभाविक विकास है। भले ही इसपर पश्चिम के विचारों का प्रभाव और मार्क्सवादी दृष्टि का गहरा असर रहा हो और इसने मार्क्सवादी विचार का साहित्यिक पुनर्लेखन किया हो। इसके केंद्र में शोषक और शोषित के अन्यायपूर्ण संबंधों की व्याख्या है। प्रगतिवाद मनुष्य को यथार्थ और सामाजिक मूल्यों के धरातल पर देखने का हिमायती रहा है। भारत में पहले प्रगतिवादी लेखक अधिवेशन से लेकर तार सप्तक के प्रकाशन तक यानी (1936-1943) प्रगतिवाद का समय माना जाता है। प्रगतिवाद का प्रभाव सम्पूर्ण भारतीय साहित्य पर पड़ा। प्रगतिवाद मनुष्यता को केंद्र में रखने वाला साहित्यिक अवधारणा है।

5.6 शब्दावली

सदारथ : अध्यक्षता

अख्तियार : लेना

पूर्वग्रह : पहले की किसी मान्यता के साथ

प्रस्ताविक : प्रस्ताव देना; किसी भी बात को उठाना

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, रामविलास शर्मा
2. ई एम फ़ास्टर
3. मुल्कराज आनंद और सज्जाद जहीर, 1936 और प्रेमचंद
4. शिवदान सिंह चौहान, विशाल भारत

5.8 संदर्भ सूची

1. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ : नामवर सिंह
2. प्रगतिवाद : लल्लन सिंह

5.9 उपयोगी पुस्तकें

1. प्रतिनिधि कविताएँ : नागार्जुन
2. प्रतिनिधि कविताएँ : त्रिलोचन
3. प्रतिनिधि कविताएँ : केदारनाथ अग्रवाल
4. प्रतिनिधि कविताएँ : शमशेर बहादुर सिंह
5. प्रतिनिधि कविताएँ : नागार्जुन

5.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रगतिवाद क्या है, इसके वैचारिक दृष्टिकोण को रेखांकित कीजिए।
2. प्रगतिवाद के प्रमुख गुणों को विस्तार से समझाइए।
3. प्रगतिवाद भारतीय चिंतन की निरंतरता के साथ साथ मार्क्सवादी दृष्टिकोण की निर्मिति है। इस कथन की व्याख्या कीजिए।

इकाई 6 प्रगतिवादी कवि : परिचय और पाठ

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 प्रगतिवादी कवि
6.3.1 नागार्जुन
6.3.2 केदारनाथ अग्रवाल
6.3.3 त्रिलोचन
6.4 सारांश
6.5 शब्दावली
6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.7 सन्दर्भ सूची
6.8 उपयोगी पुस्तकें
6.9 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

इस अध्याय के पूर्व में हम प्रगतिवादी साहित्य के बारे में विस्तार से पढ़ चुके हैं। इस अध्याय में हम प्रगतिवाद के कुछ प्रमुख कवियों और उनकी प्रतिनिधि कविताओं के बारे में जानेंगे। कविताओं के पाठ के माध्यम से प्रगतिवाद की विशेषता और उसकी प्रकृति स्पष्ट हो सकेगी और कविताओं के अध्ययन से आप प्रगतिवाद के पूरे परिदृश्य को व्यावहारिक रूप से समझ सकेंगे।

प्रगतिवाद छायावादी रोमांटिकता के बरक्स यथार्थ के ज़मीन पर खड़ा हुआ काव्य आंदोलन है। जिसके कवियों ने व्यंग्य और अभिव्यक्ति के अन्य रूपों का प्रयोग कर कविता का नया सौंदर्यशास्त्र का सृजन किया। प्रगतिवादी कवियों की कविताओं के बिम्ब और प्रतीक लोकोन्मुख, लोकवादी, प्रकृति के सहजीवी संबंध, यथार्थ और आधुनिक विचार से अनुप्राणित था। इन कविताओं के पाठ में अभिधा, लक्षणा और व्यंजना जैसे शब्द शक्तियों, मानवीकरण अलंकार की बहुतायत है। प्रगतिवादी कविताएँ बग़ैर किसी भावुकता में पड़े अपने युग सत्य को सहजता के शिल्प में

अभिव्यक्त करती हैं। मार्क्सवादी विचार और आधुनिकता को केंद्र में रखकर ये कविताएँ वैचारिक कविताओं के शिल्प में ढल जाती हैं।

यूँ तो प्रगतिशील मूल्य और प्रगतिवाद में कुछ मौलिक अंतर है। और इस चश्मे से देखने पर साहित्य का आंतरिक चरित्र ही प्रगतिशील है। साहित्य का निर्माण ही प्रगतिशीलता के गोद में हुआ। वेदों के सत्ता के समानांतर नाट्यशास्त्र जैसे साहित्यिक शास्त्र को पंचम वेद के रूप में होना ही प्रगतिशील है। तो जब प्रगतिशील और प्रगतिवाद कहा जाए तो प्रगतिशीलता मूल्यवाची हो जाता है और प्रगतिवाद एक ख़ास समय में हुआ कविता का आंदोलन प्रगतिवाद के रूप में जाना जाता है। प्रगतिवाद का समय 1936 से लेकर 1943 तक है। यानी पहले भारतीय प्रगतिशील लेखक अधिवेशन से केलर तार सप्तक के प्रकाशन तक हिंदी कविता में हुए एक ख़ास क़िस्म के आंदोलन को प्रगतिवाद कहा गया। साहित्य में कोई भी वाद अथवा आंदोलन ना एक दिन में शुरू होता है और ना ही वह किसी ख़ास तिथि को समाप्त होता है। अतः प्रगतिवाद से पहले छायावाद में भी प्रगतिवाद के मूल्यों की कविताएँ मौजूद हैं और प्रगतिवाद के बाद भी प्रगतिवाद के प्रवृत्तियों जैसी कविताएँ लिखी जा रही थी। प्रगतिवादी प्रवृत्ति को केंद्र में रखकर देखें तो नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, रामविलास शर्मा, गजानन माधव मुक्तिबोध, शील इत्यादि प्रगतिवादी कवि हैं किंतु प्रगतिवाद के तीन महत्वपूर्ण कवि को प्रगतिवाद त्रयी में रखा गया। प्रगतिवाद त्रयी के रचनकार हैं- त्रिलोचन, नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

- प्रगतिशील कविता और इसकी त्रयी नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और त्रिलोचन को समझ सकेंगे;
- प्रगतिशील कविता की प्रमुख विशेषताओं का विवेचन और अध्ययन कर सकेंगे।

6.3 प्रगतिवादी कवि

प्रगतिवाद के संदर्भ में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन सामाजिक यथार्थ के जिस वस्तुवादी स्थिति की ओर सम्पूर्ण भारतीय परिदृश्य पर छा जाने का संकेत करती हैं; उससे ही प्रगतिवादी कवियों की विशिष्टता का पता चलता है- “प्रगतिशील आंदोलन बहुत महान उद्देश्य से चालित है। इसमें सांप्रदायिक भाव का प्रवेश नहीं हुआ तो इसकी संभावनाएँ अत्यधिक हैं। भक्ति आन्दोलन के समय जिस प्रकार एक अदम्य दृश्य आदर्श-निष्ठा दिखाई पड़ी थी, जो समाज को नये जीवन-दर्शन से चालित करने का संकल्प वहाँ करने के कारण अप्रतिरोध्य शक्ति के रूप में प्रकट हुई थी उसी प्रकार यह आंदोलन हो सकता है।” छायावाद के समय कल्पना, रोमान और भावप्रवण अंतर्दृष्टि और प्रयोगवाद के समय में जैसी अंतर्मुखी बौद्धिक दृष्टि काम कर रही थी; प्रगतिवाद में

सामाजिक यथार्थ दृष्टि और पश्चिमी आधुनिकता से प्रभावित समानता और शोषण-मुक्त जनोन्मुखी दृष्टि काम कर रही थी। पंत जी जब ग्राम्या लिखते हैं तो सामाजिक यथार्थ की यही दृष्टि काम कर रही है।

"देख रहा हूँ आज विश्व को मैं ग्रामीण नयन से

सोच रहा हूँ जटिल जगत पर जीवन पर जान मन से"

तथापि इन कविताओं में एक छायावादी विस्मरण मौजूद है किंतु धरती के कवि त्रिलोचन, केन के कवि केदारनाथ अग्रवाल में विस्मरण अथवा पलायन के जगह सामाजिक यथार्थ-बोध की सहजता अपनी जानपदीयता के साथ अभिव्यक्ति पाते हैं।

इस अध्याय में हम प्रगतिवाद के त्रयी कवियों कवियों और उनकी कविताओं पर बातचीत करेंगे। जैसा कि आप जानते हैं कि प्रगतिवाद के तीन कवि नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और त्रिलोचन हैं।

6.3.1 नागार्जुन

प्रगतिशील काव्यधारा के कवियों में सर्वाधिक चर्चा कवि नागार्जुन की हुई है। नागार्जुन के आजादी के पूर्व और आजादी के पश्चात् तक कविताएँ लिखी। आपातकाल में भी उनकी कविताओं की खूब चर्चा रही। उनकी कविताओं में राजनीतिक व्यंग्य तीक्ष्णता से अभिव्यक्त हुआ है। आजादी के बाद भारत में एक नए तरह के मध्यवर्ग का उदय हुआ। उसने एक नए तरह के भ्रष्ट, मुनाफाखोर और बिचौलिया समाज का निर्माण किया। नेताओं और सरकारी अफसरों की साँठ-गाँठ तक सरकार के नीतियों को आम आदमी तक नहीं पहुँचने दिया। नागार्जुन ने अपनी कविताओं में इस तरह की मनोवृत्ति पर करारा व्यंग्य किया है। किसानों मजदूरों ने इस समय भी दोहरे शोषण को झेला। आजादी से पूर्व अंग्रेज और जमींदार तो आजादी के बाद सरकार और भ्रष्ट तंत्र, नेता और अफसरों की तानाशाही झेली। देश की आर्थिक स्थिति को अकाल, भूख, महामारी और युद्ध ने पूरी तरह तबाह कर दिया और इसमें सर्वाधिक किसान और मजदूर ही इसके जद में आए। 1962 में कम्युनिस्ट पार्टी के विभाजन ने भी भारतीय राजनीति में एक नए किस्म का विचलन पैदा किया। जिससे जनवादी संघर्ष कमजोर हुआ। लेकिन प्रगतिशील कवियों में नागार्जुन, शील, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल इत्यादि अपने लेखन कर्म में रमे रहे और सत्ता की वैकल्पिक आलोचना अपनी रचनाओं के माध्यम से करते रहे।

बाबा नागार्जुन नाम से प्रसिद्ध नागार्जुन का नाम श्री वैद्यनाथ मिश्र था। मैथिली कविताएँ लिखते हुए नागार्जुन यात्री उपनाम भी अपनाते हैं। इनके जन्म की कोई तय तिथि अज्ञात है। 1911 के जून के किसी तिथि को इनका जन्म माना जाता है। माँ का निधन बचपन में ही हो गया था। इनका जन्म

मिथिला के तरौनी नामक गाँव में हुआ था। इनके परिजन खेतिहर और ब्राह्मण वृत्ति अपनाने हुए थे। प्रारंभिक शिक्षा घर से फिर काशी, कलकत्ता से हुई। 1932 में नागार्जुन की शादी अपराजिता से हुआ। घूमने की आदत इन्हें बचपन से ही थी। 1931-1941 तक लगभग ये घूमते रहे। लंका जाकर इन्होंने बौद्ध धर्म अपना लिया और नागार्जुन नाम उन्होंने यहीं से लिया। बिहार आने के बाद किसान आंदोलन में सक्रिय रूप से सहभाग किया और कई बार जेल भी गए। इस दौरान वे कविताएँ लिखते रहे और वाचिक परम्परा के अनुरूप उन्हें आंदोलन और जनता के बीच सुना कर कविता संकलनों को बेचते भी रहे। घूमने और लगातार बाहर रहने से काई भाषाओं का ज्ञान इन्हें था और मौखिक परम्परा से वे इन्हीं कारणों से जुड़े रहे। आपातकाल के बाद बिहार में उपजे जयप्रकाश नारायण के संपूर्ण क्रांति से भी जुड़े और जेल गए। कुछ समय के बाद इससे भी इनका मोह भंग हो गया और सम्पूर्ण क्रांति को नागार्जुन ने सम्पूर्ण भ्रांति भी कहा। कम्युनिस्ट पार्टी की सदस्यता ले और बासठ में कम्युनिस्ट पार्टी के विभाजन से उपजे मोहभंग से उन्होंने कम्युनिस्ट पार्टी भी छोड़ दी किंतु उनकी राजनीतिक पक्षधरता और प्रतिबद्धता हमेशा बनी रही। वे शोषण के ख़िलाफ़ और पीड़ित जनता के सदैव पक्षधर बने रहे।

नागार्जुन का कृतित्व

नागार्जुन ने मैथिली, संस्कृत, हिंदी में कविताएँ, उपन्यास, कहानी, निबंध लिखा और उन्होंने कुछ अनुवाद भी किए। उनकी प्रकाशित रचनाएँ निम्नवत् हैं-

कविता संकलन

बूढ़वर; विलाप; शपथ; चित्रा; चना जोर गर्म; युगधारा; ख़ून और शोले; प्रेत का बयान; सतरंगे पंखों वाली; प्यासी पथराई आँखें; पत्रहीन नग्न गाछ; अब तो बंद करो हे देवी; तालाब की मछलियाँ; चंदना; तुमने कहा था; हज़ार-हज़ार बाँहों वाली; पुरानी जुत्तियों का कोरस; रत्न गर्भा; ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या; आख़िर ऐसा क्या कह दिया मैंने

उपन्यास

रतिनाथ की चाची; बलचनमा; वरुण के बेटे; बाबा बटेसर नाथ; दुखमोचन; इमारितिया; उग्रतारा; जमानिया के बाबा; कुम्भीपाक; अभिनंदन; नई पौध, पारो

कहानी संग्रह

आसमान में चन्दा तेरे

निबंध संग्रह

अन्नाहीनम; क्रियाहीनम

अनुवाद :

मेघदूत; गीत गोविंद; विद्यापति की पदावली

इन रचनाओं के अतिरिक्त भी उनकी कई रचनाएँ असंकलित हैं और इन रचनाओं में कई उनकी रचनावली में संकलित किए जा चुके हैं। नागार्जुन रचनावली के संपादक शोभाकांत मिश्र हैं।

नागार्जुन का काव्य संसार

नागार्जुन का कविता संसार विशद और विपुल हैं, इनमें आजादी से पहले के भारत और आजादी के बाद के भारत का जनजीवन, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक परिदृश्य अभिव्यक्त हुआ है। नागार्जुन की कविताओं में सम्पूर्ण क्रांति से लेकर मोहभंग की स्थिति वाली सम्पूर्ण भ्रांति तक की स्थितियों, दमन और शोषण के बरक्स प्रतिरोध, वर्ग-क्रांति और वर्ग-संघर्ष अभिव्यक्त हुआ है। राजनीतिक व्यंग्य में अंग्रेजों के वायसराय, रानी विक्टोरिया, नेहरू, महात्मा गांधी से लेकर इंदिरा गांधी, जयप्रकाश नारायण और लालू यादव, मुलायम यादव तक उनकी कविताओं के केंद्र में हैं।

सामंती व्यवस्था के ख़िलाफ़

नागार्जुन ने सामंती व्यवस्था के उत्पीड़न, सामंतों के अकारण प्रदर्शन, शोषण और पतन को अपनी कविताओं में अभिव्यक्त किया है। अंग्रेज़ों के जमाने से सामन्त और ज़मींदार किसान-मजदूर और श्रमिकों का शोषण करते आ रहे थे। आजाद भारत में भी उनका शोषण जस का तस बना रहा और उसका स्वरूप भर बदल गया। निराला ने अपनी कविता में लिखा है-

"खुला भेद विजयी कहाये हुए जो

लहू दूसरों का पिये जा रहे हैं।"

निराला की परम्परा में नागार्जुन ने कविताएँ लिखी। उनकी कविता 'विजयी के वंशधर' में शोषण और दिखावे पर व्यंग्यात्मक चित्रण देखने योग्य है-

"गुलाबी धोती

सीप की बटनों वाला रेशमी कुर्ता

मलमल की दुपालिया, फूलदार टोपी,

बाटा के पंप शू

नेवले के मुँह सी मूठ की नफ़ीस छड़ी

बड़ा और छोटा सरकार

लाल साहेब, हीरा जी

मानिक जी, मोती साहेब

बुच्चन जी, बबुअन जी

नूनू जी, बचोल बाबू हवेली से निकले बनकर सँवर कर।"

जीवन की विसंगतियों और अंतर्विरोधों का चित्रण

नागार्जुन की कविताओं में जीवन की विसंगतियों और अंतर्विरोधों का सटीक चित्रण हुआ है। वे बहुत सामान्य प्रतीत होने वाले बिंबों से जीवन की त्रासदियों का कविताओं में वर्णन करते हैं। नागार्जुन की कविता है 'नथुने फुला-फुला के' इस कविता में सुन्दरतम के व्यवसायीकरण का चित्र दिखता है।

"आप की गंध चेतना ठस तो नहीं हुई

अभी तो सत्तर के न हुए होंगे आप

अपने तई भरपूर सांस खींची

नथुने फुला-फुला के

वो मुअत्तर हवा भर ले अंदर"

राजनीतिक व्यंग्य की कविताएँ

नागार्जुन ने जैसी राजनीतिक व्यंग्य की कविताएँ लिखी हैं वह हिंदी कविता परिदृश्य में लगभग दुर्लभ और अपने तरह की विशिष्टता लिए हुए है। इन कविताओं में एक सरकार और शोषण-तंत्र के साथियों के बरक्स लिखी गई है और दूसरी तरह की कविताएँ किसान-मजदूर-श्रमिक और आम जन की राजनीतिक संघर्ष और शोषण की कविताएँ लिखी हैं।

"स्वेत-स्याम-रतनार अँखियाँ निहार के

सिण्डकेटी प्रभुओं के पग धूर झार के

लौटे हैं दिल्ली से कल टिकट मार के

खिले हैं दाने ज्यूँ अनार के

आये दिन बहार के"

या

“आज बंधन-मोक्ष के त्यौहार का आरंभ होता है
उपद्रव-उत्पात कह कर कुबेरों का वर्ग रोता है”

या

“हे अपरिचित भूमिगत, अज्ञातवासी
निष्कंटक करो इस कण्टकावृत भूमि को
अपनी परिधि का करो तुम प्रस्तार
हे नवशक्ति!”

या

“सुने इन्हीं के कानों से तुतलाहट में गीले बोल
तीन साल वाले बच्चों के प्यारे बोल रसीले बोल
मेले नाम तेले नाम
बियनाम बियनाम
मेले नाम तेले नाम
बियनाम बियनाम
मैंने सोचा :
निर्भय होकर शोषण की बुनियादें यह खोदेंगे
मैंने सोचा : बेबस बूढ़े विप्लवियों का कालिख यह धो देंगे।”

या

“खड़ी हो गयी चाँप कर कंकालों की हूक
नभ में विपुल विराट-सी शासन की बंदूक
उस हिटलरी गुमान पर सभी रहे हैं थूक
जिसमें कानी हो गई शासन की बन्दूक
सत्य स्वयं घायल हुआ, गई अहिंसा चूक
जहाँ-तहाँ दगने लगी शासन की बंदूक
जली ठूँठ पर बैठ कर गई कोकिला कूक

बाल न बाँका कर सकी शासन की बंदूक"

निजी जीवन प्रसंगों पर कविता

नागार्जुन ने अपने निज जीवन के कोमलतम प्रसंगों पर भी कविताएँ लिखी हैं। सिंदूर तिलकित भाल और प्रतावर्तन जैसी कविता पति-पत्नी के प्रेम संबंधों पर लिखी हुई कविता है तो तुम्हारी दंतूरित मुस्कान एक नवजात शिशु पर लिखी हुई कविता है। इसमें सौंदर्य और प्रेम की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है।

"यह दंतुरित मुस्कान

मृतक में भी डाल देगी जान"

या

"आज तेरी गोद में यह शीश रख कर

क्या बताऊँ मैं कि जो विश्राम पाया।"

या

"तभी तो तुम याद आती प्राण

हो गया हूँ नहीं पाषाण!"

प्रकृति चित्रण

नागार्जुन की अनेकों कविताओं में प्राकृतिक सुषमा और सौंदर्य का वर्णन मिलता है, जिसमें बादल और बरसात का वर्णन आता है। वे अपनी जनपदीयता से भी अविभाज्य रूप से जुड़े हैं, जिसके कारण उन जनपदों के भी प्राकृतिक दृश्य मौजूद है। बदल को घिरते देखा है कविता उन्होंने उत्तराखंड के प्रवास के दिनों में लैंसडाउन में रहते हुए लिखा है-

"तुंग हिमालय के कंधों पर

छोटी-बड़ी कई झीले हैं

उनके श्यामल-नील सलिल में

समतल देशों से आ-आ कर

पावस की उमस से आकुल

तिक्त मधुर विसतन्तु खोजते

हँसों को तिरते देखा है

बादल को घिरते देखा है"

नागार्जुन की कविताओं का शिल्प और संरचना बहुत विविधतापूर्ण है। व्यंग्य की तेज धार और छंदों की ग्रहणशीलता इनकी कविताओं को जनोन्मुखी और यादगार बना देते हैं। राजनीतिक व्यंग्य में तो जैसे इन्हें उपलब्धि मिली हुई थी। कबीर और निराला की कविताओं की तरह नागार्जुन की कविताएँ भी लोकहृदयग्राही हैं।

नागार्जुन की कविताएँ (वाचन के लिए)

1. **अकाल और उसके बाद**

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास

कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास

कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त

कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त

दाने आए घर के अंदर कई दिनों के बाद

धुआँ उठा आँगन से ऊपर कई दिनों के बाद

चमक उठी घर भर की आँखें कई दिनों के बाद

कौए ने खुजलाई पाँखें कई दिनों के बाद

2. **बादल को घिरते देखा है**

अमल धवल गिरि के शिखरों पर,

बादल को घिरते देखा है।

छोटे-छोटे मोती जैसे

उसके शीतल तुहिन कणों को

मानसरोवर के उन स्वर्णिम

कमलों पर गिरते देखा है,

बादल को घिरते देखा है।

तुंग हिमालय के कंधों पर

छोटी बड़ी कई झीलें हैं,

उनके श्यामल नील सलिल में

समतल देशों से आ-आकर

पावस की ऊमस से आकुल

तिक्त-मधुर बिषतंतु खोजते

हंसों को तिरते देखा है।

बादल को घिरते देखा है।

ऋतु वसंत का सुप्रभात था

मंद-मंद था अनिल बह रहा

बालारुण की मृदु किरणें थीं

अगल-बग़ल स्वर्णाभ शिखर थे

एक-दूसरे से विरहित हो

अलग-अलग रहकर ही जिनको

सारी रात बितानी होती,

निशा-काल से चिर-अभिशापित

बेबस उस चकवा-चकई का

बंद हुआ क्रंदन, फिर उनमें

उस महान सरवर के तीरे

शैवालों की हरी दरी पर

प्रणय-कलह छिड़ते देखा है।

बादल को घिरते देखा है।

दुर्गम बर्फ़ानी घाटी में

शत-सहस्र फुट ऊँचाई पर
अलख नाभि से उठने वाले
निज के ही उन्मादक परिमल—
के पीछे धावित हो-होकर
तरल-तरुण कस्तूरी मृग को
अपने पर चिढ़ते देखा है,
बादल को घिरते देखा है।
कहाँ गए धनपति कुबेर वह
कहाँ गई उसकी वह अलका
नहीं ठिकाना कालिदास के
व्योम-प्रवाही गंगाजल का,
ढूँढ़ा बहुत किंतु लगा क्या
मेघदूत का पता कहीं पर,
कौन बताए वह छायामय
बरस पड़ा होगा न यहीं पर,
जाने दो, वह कवि-कल्पित था,
मैंने तो भीषण जाड़ों में
नभ-चुंबी कैलाश शीर्ष पर,
महामेघ को झंझानिल से
गरज-गरज भिड़ते देखा है,
बादल को घिरते देखा है।
शत-शत निर्झर-निर्झरणी कल
मुखरित देवदारु-कानन में,
शोणित धवल भोज पत्रों से
छाई हुई कुटी के भीतर

रंग-बिरंगे और सुगंधित
फूलों से कुंतल को साजे,
इंद्रनील की माला डाले
शंख-सरीखे सुघड़ गलों में,
कानों में कुवलय लटकाए,
शतदल लाल कमल वेणी में,
रजत-रचित मणि-खचित कलामय
पान पात्र द्राक्षासव पूरित
रखे सामने अपने-अपने
लोहित चंदन की त्रिपटी पर,
नरम निदाग बाल-कस्तूरी
मृगछालों पर पलथी मारे
मदिरारुण आँखों वाले उन
उन्मद किन्नर-किन्नरियों की
मृदुल मनोरम अँगुलियों को
वंशी पर फिरते देखा है,
बादल को घिरते देखा है।

3. आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी

आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी,
यही हुई है राय जवाहरलाल की
रफ़ू करेंगे फटे-पुराने जाल की
यही हुई है राय जवाहरलाल की
आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी!
आओ शाही बैंड बजाएँ,
आओ बंदनवार सजाएँ,

ख़ुशियों में डूबे उतराएँ,
आओ तुमको सैर कराएँ—
उटकमंड की, शिमला-नैनीताल की
आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी!
तुम मुस्कान लुटाती आओ,
तुम वरदान लुटाती जाओ,
आओ जी चाँदी के पथ पर,
आओ जी कंचन के रथ पर,
नज़र बिछी है, एक-एक दिक्पाल की
छटा दिखाओ गति की लय की ताल की
आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी!
सैनिक तुम्हें सलामी देंगे
लोग-बाग बलि-बलि जाएँगे
दृग-दृग में ख़ुशियाँ छलकेंगी
ओसों में दूबें झलकेंगी
प्रणति मिलेगी नए राष्ट्र के भाल की
आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी!
बेबस-बेसुध, सूखे-रुखड़े,
हम ठहरे तिनकों के टुकड़े,
टहनी हो तुम भारी भरकम डाल की
खोज ख़बर तो लो अपने भक्तों के ख़ास महाल की!
लो कपूर की लपट
आरती लो सोने के थाल की
आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी!
भूखी भारत-माता के सूखे हाथों को चूम लो

प्रेसिडेंट के लंच-डिनर में स्वाद बदल लो, झूम लो

पद्म-भूषणों, भारत-रत्नों से उनके उद्गार लो

पार्लमेंट के प्रतिनिधियों से आदर लो, सत्कार लो

मिनिस्टरों से शेकहैंड लो, जनता से जयकार लो

दाएँ-बाएँ खडे हज़ारी ऑफ़िसरों से प्यार लो

धनकुबेर उत्सुक दीखेंगे उनके ज़रा दुलार लो

होंठों को कंपित कर लो, रह-रह के कनखी मार लो

बिजली की यह दीपमालिका फिर-फिर इसे निहार लो

यह तो नई-नई दिल्ली है, दिल में इसे उतार लो

एक बात कह दूँ मलका, थोड़ी-सी लाज उधार लो

बापू को मत छेड़ो, अपने पुरखों से उपहार लो

जय ब्रिटेन की जय हो इस कलिकाल की!

आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी!

रफ़ू करेंगे फटे-पुराने जाल की!

यही हुई है राय जवाहरलाल की!

आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी!

4. गुलाबी चूड़ियाँ

प्राइवेट बस का ड्राइवर है तो क्या हुआ,

सात साल की बच्ची का पिता तो है!

सामने गियर से ऊपर

हुक से लटका रक्खी हैं

काँच की चार चूड़ियाँ गुलाबी

बस की रफ़्तार के मुताबिक़

हिलती रहती हैं…

झूककर मैंने पूछ लिया

खा गया मानो झटका
अधेड़ उम्र का मुच्छड़ रोबीला चेहरा
आहिस्ते से बोला : हाँ सा’ब
लाख कहता हूँ, नहीं मानती है मुनिया
टाँगे हुए है कई दिनों से
अपनी अमानत
यहाँ अब्बा की नज़रों के सामने
मैं भी सोचता हूँ
क्या बिगाड़ती हैं चूड़ियाँ
किस जुर्म पे हटा दूँ इनको यहाँ से?
और ड्राइवर ने एक नज़र मुझे देखा
और मैंने एक नज़र उसे देखा
छलक रहा था दूधिया वात्सल्य बड़ी-बड़ी आँखों में
तरलता हावी थी सीधे-सादे प्रश्न पर
और अब वे निगाहें फिर से हो गईं सड़क की ओर
और मैंने झुककर कहा—
हाँ भाई, मैं भी पिता हूँ
वो तो बस यूँ ही पूछ लिया आपसे
वर्ना ये किसको नहीं भाएँगी?
नन्हीं कलाइयों की गुलाबी चूड़ियाँ!

5. मैं मिलिट्री का बूढ़ा घोड़ा

मैं
मिलिट्री का बूढ़ा घोड़ा
करेंगे वे मुझे नीलाम

कोई चतुर ताँगावाला

ले जाएगा मुझे

चढ़ा देगा आँखों के किनारे

रंगीन आवरण

और कहता रहेगा :

सामने चल बेटा

सामने चल...

सामने...

6.3.2 केदारनाथ अग्रवाल

केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिवाद त्रयी के कवियों में से एक हैं। केदार जी जीवन मध्यवर्गीय था; पेशे से वे वकील थे। किसानों-मजदूरों और श्रमिकों से वकील होने के नाते उनका संबंध उसने बहुत नजदीक था। वे उत्तरप्रदेश के बाँदा जैसे जनपद में रहते थे। इससे उनका जनपदीयता से अनिवार्य और अविभाज्य संबंध बनता है। वे वैचारिक रूप से प्रतिबद्ध मार्क्सवादी थे।

केदारनाथ अग्रवाल का जन्म 01 अप्रैल, 1911 को उत्तरप्रदेश के बुंदेलखंड इलाके के बाँदा जिले के बबेरू तहसील के कमासिन गांव में हुआ था। प्रारंभिक शिक्षा गांव से, कटनी, जबलपुर इलाहाबाद और फिर कानपुर से वकालत की शिक्षा प्राप्त की। केदार जी की शादी बहुत कम उम्र में हो गया था। पढ़ाई कर बाँदा लौटने के बाद जीवन के संघर्षो से जीवन का कटु यथार्थ और संघर्ष का उन्हें पता चला। ग्रामीण संवेदना से जुड़े रहने के कारण उनकी कविताओं में श्रम के मूल्य की स्थापना, संघर्ष का तेज आँच और ग्रामीण खेतिहर संस्कृति और प्रकृति उनकी कविताओं में अभिव्यक्ति पाते हैं।

केदारनाथ अग्रवाल का कृतित्व

केदारनाथ अग्रवाल ने कविता लिखने के साथ-साथ उपन्यास, वैचारिक गद्य, यात्रा-संस्मरण, अनुवाद और चिट्ठियाँ इत्यादि लिखी।

कविता संग्रह

युग की गंगा; नींद के बादल; गुलमेहंदी; फूल नहीं रंग बोलते हैं; लोक और आलोक; कहें केदार खरी-खरी; आग का आईना; जो शिलाएँ तोड़ते हैं; जमुन जल तुम; मार प्यार की थापें; पंख और पतवार; हे! मेरी तुम; अपूर्वा; बस्ती खिले गुलाब की

उपन्यास

पतिया

वैचारिक गद्य (निबंध)

समय-समय पर; विचार बोध; विवेक विवेचन

यात्रा-संस्मरण

बस्ती खिले गुलाब की

अनुवाद

देश-देश की कविताएँ

केदारनाथ अग्रवाल का काव्य संसार

केदारनाथ अग्रवाल का साहित्य-संसार आजादी से पहले और बाद तक फैला हुआ है। 1930 के आसपास जब मार्क्सवाद और गांधीवाद जैसे विचार का प्रसार-प्रचार हो रहा था तब कानपुर की मज़दूर सभा से प्रभावित होकर केदारनाथ अग्रवाल ने भारतीय कम्युनिस्ट विचारों से प्रेरित होते हैं और आजीवन इसी विचारधारा में रहकर उन्होंने अपना काव्य-सृजन किया।

केदारनाथ अग्रवाल ने अपने लेखन का विधिवत प्रारंभ चौथे दशक में करते हैं। लेखन के शुरुआती दिनों में प्रेम और सौंदर्य इनके काव्य का विषय-वस्तु था किंतु बाद में युग सत्य से साक्षात्कार होने के बाद उनका प्रेम व्यापक संदर्भों से जुड़ किसान-मजदूर-श्रमिक जनता से जुड़ने लगा और उनके प्रमुख सरोकार सौंदर्य और प्रेम का विस्तार हुआ। इनकी राजनीतिक दृष्टि, समझ और प्रतिबद्धता मार्क्सवादी विचारों के अनुरूप रही और काव्य-सृजन और चिंता भी। रामविलास शर्मा लिखते हैं, "पिछले तीस-चालीस साल में जिन कवियों की रचनाओं में राजनीति की निर्णायक भूमिका रही है, वो हैं: केदारनाथ अग्रवाल और नागार्जुन। दूसरे महायुद्ध के दौरान और दूसरे महायुद्ध के बाद, मोटे तौर से 1957 तक भारत के स्वाधीनता आंदोलन और भारत की जनवादी क्रांति, इनके उतार-चढ़ाव से जो सबसे ज्यादा गहरायी से संबद्ध रहे हैं, वे हैं केदारनाथ अग्रवाल और इस उतार-चढ़ाव को जिस कवि ने सबसे शक्तिशाली ढंग से अपने साहित्य में, अपनी कविता में प्रतिबिम्बित किया है, वह भी हैं केदारनाथ अग्रवाल' केदार जी की कविता में राजनीति की निर्णायक भूमिका तो है ही किंतु साथ ही उसमें बुंदेलखंड और बुंदेलखंड की प्रकृति, प्राकृतिक परिवेश और जन-जीवन की धड़कनें और रंग भी हैं इसलिए एक आलोचक इनकी कविता का सबसे बड़ा गुण मानते हैं लोकरूपता को। केदार ने किसानों और श्रमशील जनता पर बहुत लिखा है इसलिए डॉ. शिव कुमार मिश्र इन्हें मूलतः किसानी संवेदना का कवि मानते हैं। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र केदार की प्रकृति

संबंधी कविताओं के आधार पर केदार की कविता को 'प्रकृति के साहचर्य में मुक्ति की तलाश' की कविता खानते हैं 'केदारनाथ अग्रवाल अपनी सौंदर्य चेतना और सूक्ष्म चित्रण शक्ति के कारण प्रगतिवाद के दायरे को लांघ जाते हैं और अपना एक दूसरा काव्य संसार भी उजागर करते हैं।''

स्पष्ट है केदारनाथ अग्रवाल राजनीति को सुंदर, व्यवस्थित और शोष-मुक्त संसार बनाने का उपक्रम मानते हैं। प्रकृति, प्रेम, मजदूर, किसान, श्रमिक ये सब उनके सरोकार हैं। उनके समाजिकी के ये सभी अनिवार्य अंग हैं, सहचर हैं।

राजनीतिक पक्षधरता

केदारनाथ अग्रवाल की राजनीतिक दृष्टि साफ़ और प्रतिबद्ध है। वे वैचारिक तौर पर भारतीय मार्क्सवादी विचारों के प्रबल पक्षधर हैं। उनकी दृष्टि में समाज में शोषक और शोषित का भेद नहीं होना चाहिए। वे एक ऐसे कम्यून-दृष्टि के पक्षधर हैं जहाँ जनता की सरकार जनता के हित के लिए हो न कि मालिकों, उद्योगपतियों, पूँजीपतियों, जमींदारों, इजारेदारों की। उनकी कविताओं में उनकी राजनीतिक दृष्टि स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हुई है।

''वही जमींदारों का छल है

मानव से मानव शोषित है

अतः आज हम हँसते हँसते

नयी शपथ यह ग्रहण करेंगे

जनवादी सरकार करेंगे''

यही नहीं आजादी के बाद भी आजाद भारत की सूरत नहीं बदलने पर उनका मन सहज की कह बैठता है-

''यहाँ हमारी जन्मभूमि पर यदि आयेगा डालर

वह अपने साम्राज्यवाद के घोर नशे में

भारतीय पूंजीपतियों से सांठ-गाँठ कर

क्रय दिल्ली की राजनीति को कर लेगा

नेहरू और पटेल की मति को हर लेगा''

आजादी के बाद पंचवर्षीय योजना ने कोई जमीनी बदलाव के लिए बड़ा माहौल नहीं बनाया। दिल्ली से चला रुपया गाँवों में आते आते बिचौलियों के हाथों में ही ख़त्म हो जाता। ऐसे में भी केदारनाथ अग्रवाल की कविताएँ जनता को निराश करने की जगह धैर्य बनाने वाली है-

“हल चलते हैं फिर खेतों में

फटती है फिर काली मिट्टी

फिर उपजेगा उन्नत मस्तक सिंह अयाली नाज

फिर गरजेगी कष्ट विदारक धरती की आवाज”

केदारनाथ अग्रवाल की सामाजिक दृष्टि वर्ग-चेतना आधारित मार्क्सवादी दृष्टि है। वे समाज में शोषित और शोषक का भेद करते हैं और अपनी प्रतिबद्धता जन की ओर रखते हैं।

“अधिकांश जनता का

रद्दी की टोकरी का जीवन है

संज्ञाहीन, अर्थहीन

बेकार चिरे-फटे टुकड़ों सा पड़ा है।

देरी है- एक दिन, एक बार, आग के छूने की

राख हो जाना है।”

अथवा

“कानपुर के मजदूर दिन भर काम करके

काँखते हाँफते

रोज़ की बदबू में सड़ते हैं दुनिया की”

अथवा

“एक मज़दूर है चैतू

सूरज डूबे, छुट्टी पाके

ज़िंदा रहने से उकता के

ठर्रा पीता है और सो जाता है”

परिवेश और प्रकृति के प्रति लगाव

केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में प्राकृतिक परिवेश और बुंदेलखंड का लोक-जीवन और ग्रामीण-जीवन का सौंदर्य रचा-बसा है। केदारनाथ अग्रवाल का यह संलग्नता जीवन के प्रति गहरी

आसक्ति और लगाव से उत्पन्न होता है। उनका प्राकृतिक चित्रण भी सामाजिक यथार्थ से अनिवार्यतः जुड़ा हुआ है-

“एक बीते के बराबर
यह हरा ठिगना चना
बाँधे मुरेठा शीश पर
छोटे गुलाबी फूल का
सज कर खड़ा है।”

अथवा

“टार-पार चौड़े खेतों में
चारों ओर दिशाएँ घेरे
लाखों की अगणित संख्या में
ऊँचा गेहूँ डटा खड़ा है
ताक़त से मुट्ठी बाँधे है
नोकीले भाले ताने है
हिम्मत वाली लाल फौज सा
मर मिटने को झूम रहा है”

अथवा

“अनोखी हवा हूँ, बड़ी बावली हूँ
बड़ी मस्तमौला, नहीं कुछ फ़िकर है
बड़ी ही निडर हूँ, जिधर चाहती हूँ
उधर घूमती हूँ, मुसाफ़िर अजब हूँ
न घर-बार मेरा, न उद्देश्य मेरा
न इच्छा किसी की, न आशा किसी की
न प्रेमी, न दुश्मन
जिधर चाहती हूँ, उधर घूमती हूँ

हवा हूँ हवा मैं बसंती हवा हूँ"

प्रेम का वर्णन

केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में प्रेम एक अनिवार्य तत्व है। जमुन जल तुम, हे! मेरी तुम इत्यादि में प्रेम की और पत्नी के प्रति प्रेम की कई मार्मिक कविताएँ मौजूद हैं। उनकी रोमांटिकता कोरी भावनाओं से भरा हुआ नहीं है बल्कि उनमें भी सामाजिक यथार्थ और व्यापक चिंता के लिए स्थान है। वे प्रेम में निरा एकांतिक नहीं हो जाते बल्कि प्रेम का सामर्थ्य उन्हें जगत जीवन का प्रेमी बनाता है। समाज में प्रवृत्त करता है; निर्वृत्त नहीं। ये कविताएँ प्रेम की उच्चशृंखलता की नहीं बल्कि मर्यादित प्रेम की है। इसमें स्वकीया प्रेम की भावना ही प्रमुख है।

" हे मेरी तुम!

यह जो लाल गुलाब खिला है, खिला रहेगा

यह जो रूप अपार हँसा है, हँसा करेगा यह जो प्रेम-पराग उड़ा है, उड़ा करेगा"

अथवा

"हे मेरी तुम!

काले-काले छाये बादल उड़ जाएँगे

गाँवों-खेतों मैदानों को, तज जाएँगे"

अथवा

"लेकिन अपना प्रेम प्रबल है

हम जीतेंगे काल क्रूर को

उसका चाकू हम तोड़ेंगे

और जिएँगे

सुख-दुख दोनों साथ पियेंगे

कालक्रूर से नहीं डरेंगे

नहीं डरेंगे, नहीं डरेंगे।"

केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में मुक्ति की कामना बहुत हूँ उदात्त रूप से सामाजिक विचारधारा और यथार्थबोध के साथ अभिव्यक्ति पाते हैं भले ही वो प्रेम की, प्रकृति की, सौंदर्य की, संघर्ष की ही कविता क्यों न हो।

केदारनाथ अग्रवाल की कविताएँ (वाचन के लिए)

1. जो जीवन की धूल चाट कर बड़ा हुआ है

जो जीवन की धूल चाट कर बड़ा हुआ है
तूफ़ानों से लड़ा और फिर खड़ा हुआ है
जिसने सोने को खोदा लोहा मोड़ा है
जो रवि के रथ का घोड़ा है
वह जन मारे नहीं मरेगा
नहीं मरेगा
जो जीवन की आग जला कर आग बना है
फ़ौलादी पंजे फैलाए नाग बना है
जिसने शोषण को तोड़ा शासन मोड़ा है
जो युग के रथ का घोड़ा है
वह जन मारे नहीं मरेगा
नहीं मरेगा

2. आज नदी बिल्कुल उदास थी

आज नदी बिल्कुल उदास थी,
सोई थी अपने पानी में,
उसके दर्पण पर
बादल का वस्त्र पड़ा था।
मैंने उसको नहीं जगाया,
दबे पाँव घर वापस आया।

3. चंद्रगहना से लौटती बेर

देख आया चंद्र गहना।
देखता हूँ दृश्य अब मैं
मेड़ पर इस खेत की बैठा अकेला।

एक बीते के बराबर

यह हरा ठिंगना चना,

बाँधे मुरैठा शीश पर

छोटे गुलाबी फूल का,

सज कर खड़ा है।

पास ही मिल कर उगी है

बीच में अलसी हठीली

देह की पतली, कमर की है लचीली,

नील फूले फूल को सिर पर चढ़ा कर

कह रही है, जो छुए यह

दूँ हृदय का दान उसको।

और सरसों की न पूछो—

हो गई सबसे सयानी,

हाथ पीले कर लिए हैं,

ब्याह-मंडप में पधारी;

फाग गाता मास फागुन

आ गया है आज जैसे।

देखता हूँ मैं : स्वयंवर हो रहा है,

प्रकृति का अनुराग-अंचल हिल रहा है

इस विजन में,

दूर व्यापारिक नगर से

प्रेम की प्रिय भूमि उपजाऊ अधिक है।

और पैरों के तले है एक पोखर,

उठ रही इसमें लहरियाँ।

नील तल में जो अभी है घास भूरी

ले रही वह भी लहरियाँ।
एक चाँदी का बड़ा-सा गोल खंभा
आँख को है चकमकाता।
हैं कई पत्थर किनारे
पी रहे चुपचाप पानी,
प्यास जाने कब बुझेगी!
चुप खड़ा बगुला डुबाए टाँग जल में,
देखते ही मीन चंचल
ध्यान-निद्रा त्यागता है,
चट दबा कर चोंच में
नीचे गले के डालता है!
एक काले माथ वाली चतुर चिड़िया
श्वेत पंखों के झपाटे मार फ़ौरन
टूट पड़ती है भरे जल के हृदय पर,
एक उजली चटुल मछली
चोंच पीली में दबा कर
दूर उड़ती है गगन में!
औ' यहीं से—
भूमि ऊँची है जहाँ से—
रेल की पटरी गई है।
ट्रेन का टाइम नहीं है।
मैं यहाँ स्वच्छंद हूँ,
जाना नहीं है।
चित्रकूट की अनगढ़ चौड़ी
कम ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ

हर दिशाओं तक फैली हैं।

बाँझ भूमि पर

इधर-उधर रींवा के पेड़

काँटेदार कुरूप खड़े हैं।

सुन पड़ता है

मीठा-मीठा रस टपकाता

सुग्गे का स्वर

टें टें टें टें;

सुन पड़ता है

वनस्थली का हृदय चीरता,

उठता-गिरता,

सारस का स्तर

टिरटों-टिरटों;

मन होता है—

उड़ जाऊँ मैं

पर फैलाए सारस के संग

जहाँ जुगुल जोड़ी रहती है

हरे खेत में,

सच्ची प्रेम-कहानी सुन लूँ

चुप्पे-चुप्पे।

4. जमुन-जल तुम!

रेत मैं हूँ—जमुन-जल तुम!

मुझे तुमने

हृदय तल से ढँक लिया है

और अपना कर लिया है

अब मुझे क्या रात—क्या दिन

क्या प्रलय—क्या पुनर्जीवन!

रेत मैं हूँ—जमुन-जल तुम!

मुझे तुमने

सरस रस से कर दिया है

छाप दुख-दव हर लिया है

अब मुझे क्या शोक—क्या दुख

मिल रहा है सुख—महा सुख!

5. वह चिड़िया जो

वह चिड़िया जो—
चोंच मारकर
दूध-भरे जुंडी के दाने
रुचि से, रस से खा लेती है
वह छोटी संतोषी चिड़िया
नीले पंखोंवाली मैं हूँ
मुझे अन्न से बहुत प्यार है।
वह चिड़िया जो—
कंठ खोलकर
बूढ़े वन-बाबा की ख़ातिर
रस उँडेलकर गा लेती है
वह छोटी मुँह बोली चिड़िया
नीले पंखोंवाली मैं हूँ
मुझे विजन से बहुत प्यार है।
वह चिड़िया जो—
चोंच मारकर
चढ़ी नदी का दिल टटोलकर
जल का मोती ले जाती है
वह छोटी गरबीली चिड़िया
नीले पंखोंवाली मैं हूँ
मुझे नदी से बहुत प्यार है।

6. बच्चे के जन्म पर

हाथी-सा बलवान, जहाजी हाथों वाला और हुआ
सूरज-सा इंसान, तरेरी आँखों वाला और हुआ
एक हथौड़े वाला घर में और हुआ
माता रही विचार अंधेरा हरने वाला और हुआ
दादा रहे निहार सवेरा करने वाला और हुआ
एक हथौड़े वाला घर में और हुआ
जनता रही पुकार सलामत लाने वाला और हुआ
सुन ले री सरकार! कयामत ढाने वाला और हुआ
एक हथौड़े वाला घर में और हुआ

6.3.3 त्रिलोचन

प्रगतिवाद के त्रयी में से एक कवि त्रिलोचन या त्रिलोचन शास्त्री का वास्तविक नाम वासुदेव सिंह था। उनका जन्म 20 अगस्त 1917 को उत्तरप्रदेश के सुल्तानपुर के चिरानी पट्टी में हुआ। काशी से अंग्रेजी और लाहौर से संस्कृत का अध्ययन कर पत्रकारिता के क्षेत्र में सक्रिय हुए। इन्हें अरबी और फारसी भाषाओं का भी अच्छा ज्ञान था। इन्होंने प्रभाकर, वानर, हंस, आज, समाज, ज्ञानोदय, नागरी प्रचारिणी पत्रिका इत्यादि पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन एवं सम्पादन सहयोग किया। वे नागरी प्रचारिणी सभा, दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी क्रियान्वयन निदेशायाल, ग्रंथ अकादमी भोपाल, मुक्तिबोध सृजनपीठ, सागर, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ में अथिति सहायक प्राध्यापक, जन संस्कृति मंच के अध्यक्ष रहे। वे विदेशी छात्रों को हिंदी, अरबी, फ़ारसी भी पढ़ाते रहे। इनका विवाह बहुत ही कम उम्र में जयमूर्ति देवी के साथ हुआ। जिनका साथ आजीवन बना रहा और वे इनके सुख और दुख की साथी बनी रहीं। कवि त्रिलोचन का व्यक्तित्व ऐसा था कि वे आजीवन किंवदंती पुरुष बने रहे। स्वभाव से अक्खड़ और गंभीर व्यक्तित्व के माने जाने वाले कवि त्रिलोचन का निधन 9 दिसंबर 2007 को नई दिल्ली में हुआ। केदारनाथ सिंह उनका कवि-परिचय इन शब्दों में कराते हुए कहते हैं कि ''त्रिलोचन एक विषम धरातल वाले कवि हैं। साथ ही उनके रचनात्मक व्यक्तित्व में एक विचित्र विरोधाभास भी दिखाई पड़ता है। एक ओर यदि उनके यहाँ गाँव की धरती का-सा ऊबड़खाबड़पन दिखाई पड़ेगा तो दूसरी ओर कला की दृष्टि से एक अद्भुत क्लासिकी कसाव या अनुशासन भी। त्रिलोचन की सहज-सरल-सी प्रतीत होने वाली कविताओं को भी यदि ध्यान से देखा जाए तो उनकी तह में अनुभव की कई परते खुलती दिखाई पड़ेंगी। त्रिलोचन के यहाँ आत्मपरक कविताओं की संख्या बहुत अधिक है। अपने बारे में हिंदी के शायद ही किसी कवि ने इतने रंगों में और इतनी कविताएँ लिखी हों। पर त्रिलोचन की आत्मपरक कविताएँ किसी भी स्तर पर आत्मग्रस्त कविताएँ नहीं हैं और यह उनकी गहरी यथार्थ-दृष्टि और कलात्मक

क्षमता का सबसे बड़ा प्रमाण है। भाषा के प्रति त्रिलोचन एक बेहद सजग कवि हैं। त्रिलोचन की कविता में बोली के अपरिचित शब्द जितनी सहजता से आते हैं, कई बार संस्कृत के कठिन और लगभग प्रवाहच्युत शब्द भी उतनी ही सहजता से कविता में प्रवेश करते हैं और चुपचाप अपनी जगह बना लेते हैं।''

त्रिलोचन को हिंदी में अंग्रेजी छन्द सॉनेट का हिंदी में लाने का श्रेय दिया जाता है। सॉनेट के साथ साथ कवि त्रिलोचन ने गीत, बरवै, ग़ज़ल, चतुष्पदियाँ और कुछ कुंडलियाँ भी लिखी हैं। मुक्त छंद की छोटी और लंबी कविताएँ भी उन्होंने लिखी है। काव्य रूपों के अलावे उन्होंने कहानी और आलोचना में भी लिखा। 'धरती' (1945), 'दिगंत' (1957), 'ताप के ताए हुए दिन' (1980), 'शब्द' (1980), 'उस जनपद का कवि हूँ' (1981), 'अरधान' (1983), 'गुलाब और बुलबुल' (1985), 'अनकहनी भी कुछ कहनी है' (1985), 'तुम्हें सौंपता हूँ' (1985), 'फूल नाम है एक' (1985), 'चैती' (1987), 'सबका अपना आकाश' (1987), 'अमोला' (1990) उनके काव्य-संग्रह हैं। उन्होंने 'मुक्तिबोध की कविताएँ' का संपादन किया है। उनकी एक डायरी 'रोजनामचा' नाम से भी प्रकाशित है। जिसे बाद में अवधेश प्रधान ने त्रिलोचन की डायरी नाम से प्रकाशित किया है। देशकाल इनका कहानी संग्रह है। काव्य और अर्थबोध इनकी आलोचनात्मक कृति है। इन्हें मैथिलीशरण गुप्त राष्ट्रीय सम्मान मिला। 'ताप के ताए हुए दिन' संग्रह के लिए उन्हें 1981 के साहित्य अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

त्रिलोचन का काव्य व्यक्तित्व यथार्थ के सघन धरातल पर सहजता की भाव से संपृक्त होकर निर्मित हुआ है। उनकी कवियतों की सादगी और सहजता ही उनकी कविताओं का प्राण है। शमशेर त्रिलोचन की कविताओं का प्राण 'सहजता' में ही रेखांकित किया है। 'धरती' की समीक्षा करते हुए लिखते हैं- "तुमने (त्रिलोचन की) धरती का पद्य पढ़ा है, उसकी सहजता प्राण है।" दरअसल त्रिलोचन की कविताओं को लम्बे समय तक उबाऊ और नीरस कहकर कविता के क्षेत्र से उपेक्षित रखा गया। इसी से आहत होकर त्रिलोचन ने लिखा भी-

"जो रसज्ञ हैं, इसे उन्हीं के लिए लिखा है,

जो अजीर्णग्रस्त हैं. कहेंगे इसमें क्या है।"

"त्रिलोचन की कविताओं में न अकेलेपन की आयतित पीड़ा मिलेगी न किसी किस्म का दार्शनिक पुट। शिल्प की दृष्टि से भी इन कविताओं में बिंबों और अलंकरण से दूरी दिखती है। डा. गोबिंद प्रसाद लिखते हैं "अनुछुए अछूते और टटके बिंबों की ताक में रहना, नए-नए प्रतीक परिधान पहनाना और अत्याधुनिक मुहावरों से कविता को लैस करना इस कवि की आदत नहीं। त्रिलोचन कभी इस ओर गए ही नहीं। वस्तुतः त्रिलोचन की कविता कडे दुःख और संघर्षों के बीच निरंतर आस्था और एक अनाहत स्वर की कविता है। त्रिलोचन की कविता हिंदी की उस जातीय परम्परा का सहज विकास है, जिसकी सांसों को आराम नहीं था और जिन्होंने जीवन समाज की कल्मष

धोने में लगा दिया- 'भाव उन्हीं का सब का है जो थे अभावमय पर अभाव से दबे नहीं जागे स्व भावमय।''

रामविलस शर्मा के अनुसार "हिंदी कविता की संघर्षशील परंपरा का निर्माण अभावग्रस्त कवियों ने किया है।" त्रिलोचन के प्रिय कवि तुलसी और निराला है जिनका जीवन दुःखमय रहा बल्कि दुख ही जीवन की कथा रही। त्रिलोचन सच्चे अर्थों में तुलसी और निराला की परम्परा के कवि हैं।

''अपनी राह चला। आंखों में रहे निराला

मानदंड मानव के तन के मन के, तो भी।

पीस परिस्थितियों ने डाला।''

त्रिलोचन की कविता ऊपरी और सामान्य तौर पर अपने बनावट में सादी जन-जीवन के जैसी लग सकती है, लेकिन वह साधारण की असाधारणता है। नामवर सिंह लिखते हैं- ''धरती की जिस भाषा से 'चम्पा' की कली फूटी है, उसी ने आगे चलकर त्रिलोचन से नगई महरा की सृष्टि करायी, जिसमें गांव की पूरी संस्कृति मूर्तिमान हो उठती है। त्रिलोचन की कविता में साधारण जनों के बीच से उठाए हुए ऐसे चरित्र बहुत आए हैं। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों और कहानियों में जैसी दुनिया रची है, कविता के क्षेत्र में बहुत कुछ वही काम त्रिलोचन ने किया है। वहां अमूर्त जीवन नहीं, हांड मांस के जीते जागते इंसान है, चित्र नहीं चरित्र हैं लड़ते-झगड़ते, हंसते, खीझते, 'नाचते-गाते, गिरते-पड़ते, फिर भी जीते जागते। "चम्पा' और 'नगई महरा के कविता होने में कुछ लोगों को संदेह है। संदेह इसलिए कि वे साधारण हैं। साधारण होने में ही उनकी असाधारणता।'' त्रिलोचन 'साधारण के असाधारण कवि हैं। केदारनाथ सिंह के अनुसार ''त्रिलोचन की कविता अपने ऊपरी चरित्र के बेहर शांत, सरल और सहज दीख पड़ती है, पर इस शांत कविता के पीछे एक हलचल है, एक संघर्ष है, एक त्रासदी है। यथार्थवाद को अभिव्यक्त करने का उनका अपना अलग ढंग है। वह किसान जीवन के सुख-दुःख, संघर्ष को बहुत ही सहज ढंग से कहते हैं।'' त्रिलोचन की एक कविता है 'सब्जी वाली बुढ़िया' कविता बातचीत के शिल्प में है-

"मेथी और पालक की दो हरी-हरी गठियां

लहसुन और प्याज की चार-चार पोटियां

बुढ़िया कह रही थी ग्राहक से ले लो यह सब ले लो कुल पचास पैसे में।

ग्राहक बोला- जो कुछ लेना था ले चुका

यह सब क्या करूंगा

रखने की चीज नहीं

बुढ़िया ने सांस ली और कहा- दिन है ये ठंठ के

लेलो तो मैं भी घर को जाऊं

ग्राहक ने सुना नहीं और दाम चुकाकर चला गया

मैं पास वाले से गोभी ले रहा था

बुढ़िया से मैंने कहा- अम्मा, सारी

चीजें इकट्ठे बांधकर मुझको दे दीजिए। बुढ़िया असीसती हुई चली गई।"

सामान्यतः यह छोटा प्रसंग की प्रतीति देता है पर 'दिन हैं ये ठंड के' से बुढ़िया की गरीबी को बहुत ही सहज ढंग से रेखांकित त्रिलोचन कर जाते हैं। त्रिलोचन की यही यथार्थवादी दृष्टि उनके बहुत से सॉनेटों और कविताओं में दिख जाती है। त्रिलोचन के कविताओं में दुःख-पीड़ा, अवसाद, उपेक्षा, अभाव, संघर्ष सब कुछ है लेकिन उसका रुदन नहीं है। इनमें दुःख का प्रदर्शन नहीं है, न ही दर्शन है। दुख की घोषणा भी नहीं है। वह सहानुभूति नहीं चाहते।

बाढ़ में जो

कहीं न जा सकी

जलरुद्ध रही वही दूब रहा हूं।

त्रिलोचन के काव्य में "दुख पीड़ा, अवसाद करुणा, छलना-प्रवंचना, उपेक्षा अपमान, खिन्नता अभाव सब है किंतु इन सब स्थितियों में अपराजेय बने रहने का भाव कभी अलग नहीं होता है। और यही अपराजेयता, निश्चलता, धैर्य और संयम इन्हें स्मरणीय बनाते हैं।

"राह में चलता रहूंगा

ठोकरें सहता रहूंगा

गिर पडूंगा, फिर उठूंगा

और फिर चलता रहूंगा

ठोकरों के हार से, कोई डरेगा क्या"

त्रिलोचन की कविताओं में जीवन के प्रति एक गहरी आस्था और अनुराग है। जीवन के प्रति आस्था ही दुख को निराशा में बदलने से बचाती है। यहां दुख और अवसाद का शमन करुणा में होता है, मायूसी में नहीं। यह करुणा ही जीवन के प्रति संवेदनशीलता है। मलयज लिखते है- "उसके पास एक गुण है- करुणा, जिसमें उसकी अपनी और दूसरों की कुंठा और निराशा घुल जाती है और उसे दारुण अकेलेपन की उस यातना से बचा लेती है जो आज के आधुनिक मनुष्य की नियति बनती जा रही है। उसे इस करुणा में एक दृष्टि मिलती है, दूसरों के भीतर झांक सकने की, और

साथ ही एक सामर्थ्य तम से लड़ते रहने, उजाले की विजय की प्रतीक्षा करते रहने की।" उनकी 'करुणा दृष्टि जनजीवन से आत्मीयता' बनाती है। नगई महरा, भोरई केवट, सुकनी, चम्पा या सब्जी बेचने वाली बुढ़िया जैसे अनेकों चरित्रों के माध्यम से वे भारत के किसान, मजदूरों और संघर्षशील जनता की तस्वीर सहज प्रस्तुत करते हैं।

"है धूप कठिन सिर-ऊपर

थम गयी हवा है जैसे

दोनों दूबों के ऊपर

रख पैर सींचते पानी

उस मलिन हरी धरती पर

मिलकर वे दोनों प्रानी

दे रहे खेत में पानी।

त्रिलोचन की कविता जीवनाभिमुख और लोक सम्पृक्त है। त्रिलोचन की कविताओं की संवेदना में प्रमुख स्वर प्रकृति का भी है।

"मेमने कुदकते हैं

जाड़े की धूप को जीवन के खेल से आंक-आंक देते हैं।"

या

"चैती अब पककर तैयार है, खेतों के रंग बदल गये हैं मटर उखड़ रही है, गेहूं जौ खड़े हैं, हवा में झूम रहे हैं।"

प्रकृति के साथ-साथ ग्राम्य जीवन या जनपदीय लोक की उपस्थिति इन कविताओं में है। त्रिलोचन प्रकृति के पेड़ पौधे, अमराई, पशु-पक्षी, हवा, मिट्टी आदि के साथ न केवल एकाकार होते हैं बल्कि इनमें मौजूद जीवन के तत्वों से पहचान भी करते हैं। उनकी कविताओं में प्रकृति के साथ लोक जीवन एक हो गया है। वे सहज संवेदना के द्वारा प्रकृति को, जीवन को, मानवीय संघर्ष को आत्मीयता से अपनाते हैं। लोक जीवन की यह छवियाँ त्रिलोचन की प्रेम कविताओं में भी दिखती है।

"धीरज धरो, आजकल करते तब आऊंगा

जब देखूंगा अपने घर कुछ कर पाऊंगा।"

या

"मेरे मन का सारा शून्य भरा है

- तुमने अपनी सुधि से। मेरे दुःख की मारी

तुम भी हो।"

प्रगतिवादियों का प्रेम जीवन जगत से दूर किसी एकान्त में नहीं ले जाता; वह उन्हें पलायनवादी नहीं बनाता बल्कि कर्म क्षेत्र में लाता है। वह जीवन की लय पैदा करता है उन्हें जगत जीवन का प्रेमी बनाता है।

"आज मैं अकेला हूँ

अकेले रहा नहीं जाता

जीवन मिला है यह

रतन मिला है यह

धूल है

कि फूल में

मिला है। तो

मिला है यह

मोल तोल इसका

अकेले कहा नहीं जाता।

त्रिलोचन की कविताओं की भाषा सहज और सरल है। अलंकरण, बिंब और प्रतीक से दूर सीधा सीधा कहते हुए। वे भाषा में लोकगीतों की सी शैली अपनाते हैं। इनमें बोलचाल का लहजा है। इन कविताओं के मुहावरे और शब्द लोकजीवन से आए हैं। त्रिलोचन की कविता का स्वर गांव में रहने वाली जनता का स्वर है तभी वे तुलसीदास से भाषा सीखते हैं- "तुलसी बाबा भाषा मैंने तुमसे सीखी। मेरी सजग चेतना में तुम रमे हुए हो।" त्रिलोचन ने अपनी कविताओं में चौपाई छंद के अनुशासन को अपनाकर नया रूप और नयी लय दी है। त्रिलोचन की कविता की भाषा में जीवन की लय है।

"क्या जाने

कौन राम छाती में लगता है अकुलाने

इंद्रधनुष सी लहराती है पत्ती-पत्ती।"

त्रिलोचन की कविता (वाचन के लिए)

1. चंपा काले-काले अच्छर नहीं चीन्हती

चंपा काले-काले अच्छर नहीं चीन्हती
मैं जब पढ़ने लगता हूँ वह आ जाती है
खड़ी-खड़ी चुपचाप सुना करती है
उसे बड़ा अचरज होता है :
इन काले चिन्हों से कैसे ये सब स्वर
निकला करते हैं
चंपा सुंदर की लड़की है
सुंदर ग्वाला है : गायें-भैंसे रखता है
चंपा चौपायों को लेकर
चरवाही करने जाती है
चंपा अच्छी है
चंचल है
न ट ख ट भी है
कभी-कभी ऊधम करती है
कभी-कभी वह क़लम चुरा देती है
जैसे तैसे उसे ढूँढ़ कर जब लाता हूँ
पाता हूँ—अब काग़ज़ ग़ायब
परेशान फिर हो जाता हूँ
चंपा कहती है :
तुम कागद ही गोदा करते हो दिन भर
क्या यह काम बहुत अच्छा है
यह सुनकर मैं हँस देता हूँ
फिर चंपा चुप हो जाती है
उस दिन चंपा आई, मैंने कहा कि

चंपा, तुम भी पढ़ लो
हारे गाढ़े काम सरेगा
गांधी बाबा की इच्छा है—
सब जन पढ़ना-लिखना सीखें
चंपा ने यह कहा कि
मैं तो नहीं पढ़ूँगी
तुम तो कहते थे गांधी बाबा अच्छे हैं
वे पढ़ने लिखने की कैसे बात कहेंगे
मैं तो नहीं पढ़ूँगी
मैंने कहा कि चंपा, पढ़ लेना अच्छा है
ब्याह तुम्हारा होगा, तुम गौने जाओगी,
कुछ दिन बालम संग साथ रह चला जाएगा जब कलकत्ता
बड़ी दूर है वह कलकत्ता
कैसे उसे सँदेसा दोगी
कैसे उसके पत्र पढ़ोगी
चंपा पढ़ लेना अच्छा है!
चंपा बोली : तुम कितने झूठे हो, देखा,
हाय राम, तुम पढ़ लिखकर इतने झूठे हो
मैं तो ब्याह कभी न करूँगी
और कहीं जो ब्याह हो गया
तो मैं अपने बालम को संग साथ रखूँगी
कलकत्ता मैं कभी न जाने दूँगी
कलकत्ते पर बजर गिरे।

2. आरर डाल

सचमुच, इधर तुम्हारी याद तो नहीं आई,
झूठ क्या कहूँ। पूरे दिन मशीन पर खटना,
बासे पर आकर पड़ जाना और कमाई
का हिसाब जोड़ना, बराबर चित्त उचटना।
इस उस पर मन दौड़ाना। फिर उठ कर रोटी
करना। कभी नमक से कभी साग से खाना।
आरर डाल नौकरी है। यह बिल्कुल खोटी
है। इसका कुछ ठीक नहीं है आना जाना।
आए दिन की बात है। वहाँ टोटा टोटा
छोड़ और क्या था। किस दिन क्या बेचा-कीना।
कमी अपार कमी का ही था अपना कोटा,
नित्य कुआँ खोदना तब कहीं पानी पीना।
धीरज धरो, आज कल करते तब आऊँगा,
जब देखूँगा अपने पुर कुछ कर पाऊँगा।

3. उस जनपद का कवि हूँ

उस जनपद का कवि हूँ जो भूखा दूखा है,
नंगा है, अनजान है, कला—नहीं जानता
कैसी होती है क्या है, वह नहीं मानता
कविता कुछ भी दे सकती है। कब सूखा है
उसके जीवन का सोता, इतिहास ही बता
सकता है। वह उदासीन बिल्कुल अपने से,
अपने समाज से है; दुनिया को सपने से
अलग नहीं मानता, उसे कुछ भी नहीं पता
दुनिया कहाँ से कहाँ पहुँची; अब समाज में
वे विचार रह गए नहीं हैं जिन को ढोता

चला जा रहा है वह, अपने आँस बोता

विफल मनोरथ होने पर अथवा अकाज में।

धरम कमाता है वह तुलसीकृत रामायण

सुन पढ़ कर, जपता है नारायण नारायण।

4. पथ पर चलते रहो निरंतर

पथ पर

चलते रहो निरंतर

सूनापन हो

या निर्जन हो

पथ पुकारता है

गत-स्वप्न हो

पथिक,

चरण-ध्वनि से

दो उत्तर

पथ पर

चलते रहो निरंतर

5. तुलसी बाबा, भाषा मैंने तुम से सीखी

तुलसी बाबा, भाषा मैंने तुम से सीखी

मेरी सजग चेतना में तुम रमे हुए हो।

कह सकते थे तुम सब कड़वी, मीठी, तीखी।

प्रखर काल की धारा पर तुम जमे हुए हो।

और वृक्ष गिर गए, मगर तुम थमे हुए हो।

कभी राम से अपना कुछ भी नहीं दुराया,

देखा, तुम उनके चरणों पर नमे हुए हो।

विश्व बदर था हाथ तुम्हारे उक्त फुराया,

तेज तुम्हारा था कि अमंगल वृक्ष झुराया,

मंगल का तरु उगा; देख कर उस की छाया,

विघ्न विपद् के धन सरके, मुँह कहीं चुराया।

आठों पहर राम के रहे, राम गुन गाया।

यज्ञ रहा, तप रहा तुम्हारा जीवन भू पर।

भक्त हुए, उठ गए राम से भी, यों ऊपर।

6. बिस्तरा है न चारपाई है

बिस्तरा है न चारपाई है,

ज़िंदगी ख़ूब हमने पाई है।

कल अँधेरे में जिसने सर काटा,

नाम मत लो हमारा भाई है।

ठोकरें दर-ब-दर की थी हम थे,

कम नहीं हमने मुँह की खाई है।

कब तलक तीर वे नहीं छूते,

अब इसी बात पर लड़ाई है।

आदमी जी रहा है मरने को

सबसे ऊपर यही सच्चाई है।

कच्चे ही हो अभी त्रिलोचन तुम

धुन कहाँ वह सँभल के आई है।

7. विजय का गान

तुम महाप्राण संगठन शक्ति

तुम जग जीवन की अभिव्यक्ति

तुम कर्म-निष्ठ

तुम ध्येय-निष्ठ

तुम धैर्य-निष्ठ

तुम प्रति पग-ध्वनि पर नव जीवन का गर्जन

तुम प्रति ललकारों में अभिनव भव-सर्जन

तुम हो—बड़े धुन तत्पर

फहरा रक्त ध्वज अंबर

मैं गान विजय के गाऊँ

जन-जन की शक्ति जगाऊँ

तुम बढ़ो जिस तरह दीप्त ज्वाल

कर दुग्ध रूढ़ि का अंतराल॥

साम्राज्यवाद

सामंतवाद

औ व्यक्तिवाद

जो बाँध रहे गति जीवन की कर उन्हें नष्ट

तुम सामाजिक स्वातंत्र्य साम्य को करो स्पष्ट

होवे स्वतंत्र नारी-नर

हो सामंजस्य अमलतर

मैं गान विजय के गाऊँ

जन-जन की शक्ति जगाऊँ

तुम करो नष्ट सब भेद-भाव

तुम हरो निखिल जग के अभाव

सब बाधा कर

हो कर तत्पर

नव साहस भर

तुम विजयी बन कर अपना नियमन आप करो

जीवन की संचित व्याकुलता सब ताप हरी

जग-जीवन तुम पर निर्भर

तुम अपने बल पर निर्भर

मैं गान विजय के गाऊँ

जन-जन की शक्ति जगाऊँ

8. धूप सुंदर

धूप सुंदर

धूप में

जग-रूप सुंदर

सहज सुंदर

व्योम निर्मल

दृश्य जितना

स्पृश्य जितना

भूमि का वैभव

तरंगित रूप सुंदर

सहज सुंदर

तरुण हरियाली

निराली शान शोभा

लाल पीले

और नीले

वर्ण वर्ण प्रसून सुंदर

धूप सुंदर

धूप में जग-रूप सुंदर

ओस कण के

हार पहने

इंद्र धनुषी

छबि बनाए

शम्य तृण

सर्वत्र सुंदर

धूप सुंदर

धूप में जग-रूप सुंदर

सघन पीली

ऊर्मियों में

बोर

हरियाली

सलोनी

झूमती सरसों

प्रकंपित वात से

अपरूप सुंदर

धूप सुंदर

मौन एकाकी

तरंगे देखता हूँ

देखता हूँ

यह अनिवर्चनीयता

बस देखता हूँ

सोचता हूँ

क्या कभी

मैं पा सकूँगा

इस तरह

इतना तरंगी

और निर्मल

आदमी का

रूप सुंदर

धूप सुंदर

धूप में जग-रूप सुंदर

सहज सुंदर

बोध प्रश्न

5. प्रगतिशील कवियों के त्रयी का नाम लिखिए।
6. नागार्जुन की कविताओं की विशेषता बताइए।
7. केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं की विशेषता बताइए।
8. त्रिलोचन की कविताओं की विशेषता बताइए।
9. पठित पाठ के आधार पर प्रगतिवादी कविता की विशेषता बताइए।

6.4 सारांश

प्रगतिवादी साहित्य भातीय चिंतन परम्परा का स्वाभाविक विकास है। भले ही इसपर पश्चिम के विचारों का प्रभाव और मार्क्सवादी दृष्टि का गहरा असर रहा हो और इसने मार्क्सवादी विचार का साहित्यिक पुनर्लेखन किया हो। इसके केंद्र में शोषक और शोषित के अन्यायपूर्ण संबंधों की व्याख्या है। प्रगतिवाद मनुष्य को यथार्थ और सामाजिक मूल्यों के धरातल पर देखने का हिमायती रहा है। भारत में पहले प्रगतिवादी लेखक अधिवेशन से लेकर तार सप्तक के प्रकाशन तक यानी (1936-1943) प्रगतिवाद का समय माना जाता है। प्रगतिवाद का प्रभाव सम्पूर्ण भारतीय साहित्य पर पड़ा। प्रगतिवाद मनुष्यता को केंद्र में रखने वाला साहित्यिक अवधारणा है। इस अध्याय में हमने नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और त्रिलोचन की कविताओं के माध्यम से उनकी कविताओं के विशेषता को समझने की कोशिश की है और इसी बहाने प्रगतिशील कविता की विशेषता को भी हमने समझ लिया है। इस कविताओं में एक गहरी सामाजिक संलग्नता, अपने परिवेश और प्रकृति के प्रति अनुराग, वर्ग-चिंता, एक कम्यून समाज की स्थापना का स्वप्न, यथार्थवाद और शोषण से मुक्ति की आकांक्षा परिलक्षित होती है।

6.5 शब्दावली

सदारथ : अध्यक्षता

अख्तियार : लेना

पूर्वग्रह : पहले की किसी मान्यता के साथ

प्रस्ताविक : प्रस्ताव देना; किसी भी बात को उठाना

परिलक्षित : दिखाई देना

बुर्जुआ : पूंजीवाद को मानने वाला

सर्वहारा : आम जनता, किसान-मजदूर और श्रमिक

अवनी : धरती

पुष्करिणी : छोटे तालाब

सामाजिक विषमता : समाज में विभिन्न स्तरों पर राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आधार पर अंतर

यथार्थवाद : जीवन की वास्तविकता को उसके संपूर्णता में समझने वाली विचारधारा

6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5. इस इकाई का 6.3 देखें।
6. इस इकाई का 6.3 देखें।
7. इस इकाई का 6.3 देखें।
8. इस इकाई का 6.3 देखें।
9. इस इकाई का 6.3 देखें।

6.7 संदर्भ सूची

3. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ : नामवर सिंह
4. प्रगतिवाद : लल्लन सिंह

6.8 उपयोगी पुस्तकें

6. प्रतिनिधि कविताएँ : नागार्जुन
7. प्रतिनिधि कविताएँ : त्रिलोचन
8. प्रतिनिधि कविताएँ : केदारनाथ अग्रवाल
9. प्रतिनिधि कविताएँ : शमशेर बहादुर सिंह
10. प्रतिनिधि कविताएँ : नागार्जुन

6.9 निबंधात्मक प्रश्न

4. प्रगतिवादी कवियों की कविताओं के आधार पर प्रगतिवाद का मूल्यांकन कीजिये।
5. प्रगतिवाद त्रयी कवियों के वक्तित्व एवं कृतित्व की चर्चा कीजिए।

इकाई 7 -स्वातंत्रयोत्तर काल और कविता का विकास

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 स्वातंत्रयोत्तर काल और कविता का विकास

7.4 स्वातंत्रयोत्तर काल और कविता की परिस्थिति

7.4.1 राजनीतिक परिस्थिति

7.4.2 सामाजिक परिस्थिति

7.4.3आर्थिक परिस्थिति

7.4.4 सांस्कृतिक - धामिर्क परिस्थिति

7.5 स्वातंत्रयोत्तर कालीन साहित्य के प्रमुख आन्दोलन

7.5.1 स्वातंत्रतापश्चात कविताः एक परिचय

7.5.2 स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर

7.6 स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता के प्रमुख प्रवृत्तियाँ

7.6.1 स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता की वैचारिकी

7.6.2 स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता की आलोचनात्मक सदंर्भ

7.6.3 स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता का भाषागत संदर्भ

7.7 स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता का मूल्यांकन

7.8 सारांश

7.9 शब्दावली

7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

7.12 सहायक पाठ सामग्री

7.13 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

स्वतंत्रता किसी भी जाति, समाज, मनुष्य का मूलभूत प्रत्यय है। स्वतंत्रता का अर्थ भैतिक -सामाजिक पराधीनता भी है और मानसिक - अस्तित्वगत समस्या भी। स्वतंत्रता का अर्थ सृजनशीलता भी है। परतंत्र व्यक्ति कभी भी सृजनशील नहीं हो सकता। यह हो सकता है कि हम भैतिक - सामाजिक रुप से स्वतंत्र हों लेकिन अवरुद्ध सृजनशीलता के शिकार हों। अर्थ यह है कि

स्वतंत्र व्यक्ति ही सार्थक क्रिया कर सकता है। सृजनशीलताका संबंध संवेदनशीलता से है। संवेदनशीलता का संबंध साहित्य से है। और साहित्य में संवेदनशीलता का सबसे ज्यादा वहन कविता करती है। अतः कविता की दृष्टि से स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् कविता का तेवर काफी बदला हुआ है । यहाँ हमें इस तथ्य को समझना होगा कि स्वतंत्रता में और पराधीनता में , दोनो स्थितियों में श्रेष्ठ साहित्य की रचना हो सकती हे। स्वतंत्र समाज की रचना में उल्लास का स्वर ज्यादा होसकता है तथा परतंत्र समाज के साहित्य में प्रतिरोध का स्वर । नियमतः ऐसा कोई फार्मूला नहीं है कि किस समय किस प्रकार का साहित्य लिखा जाता है या लिखा जाना चाहिए। लेकिन यह अनिवार्य रुप से तय है कि अपने समय, समाज की सांकेतिक संभावनापूर्ण क्रिया साहित्य में उपस्थित रहती है। साहित्य चाहे स्वतंत्रता की पृष्ठभूमि में लिखा गया हो या परतंत्रता की पृष्ठभूमि में साहित्य हमेशा अपने समाज की संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है। इसका मुख्य कारण यह है कि साहित्यकार स्वतंत्रता - परतंत्रता को सांस्कृतिक संदर्भ में देखता है। कहने का अर्थ यह है कि लेखक - सृजनकर्ता ही नही है बल्कि सामाजिक परिवेश का अतिक्रमण कर संभावनाशील समाज की रचना भी करता है।

स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता के विकास क्रम में भी हमें उपरोक्त तथ्य देखने को मिलते हैं। हिन्दी कविता के लिए स्वतंत्रता पूर्व जहाँ जागरण का प्रश्न मुख्य था वहीं स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता के लिए सामाजिक साम्य का प्रश्न। पहले स्वतंत्रता का प्रश्न मुख्य था, अब समानता का। हिन्दी कविता की अभिन्यक्ति का स्वर भी बदला और रुपाभिव्यक्ति संबंधी प्रयोग भी हुए। कई दृष्टियों से स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता पुरानी कविता से भिन्न भावभूमि की कविता है। आधुनिकता बोध की सही मायने में अभिव्यक्ति स्वातंत्रयोत्तर कालीन कविता में ही होती है। आधुनिकता के प्रश्नों, आधुनिकता के चिह्न की दृष्टि से हिन्दी कविता पर्याप्त समृद्ध रही है। आधुनिकता की अवधारणाएँ अंतर्विरोध, विडम्बना, विसंगति, संत्रास तथा उत्तर - आधुनिकता की वैचारिकी को स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता भली - भाँति व्यक्त करती है। आगे के बिन्दुओं में हम स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कविता के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा करेगें।

7.2 उद्देश्य

यह पत्र आधुनिक एवं समकालीन कविता के खण्ड तीन के छायावादोत्तर हिंदी कविता से संबंधित है। इस इकाई से पूर्व आपने संपूर्ण हिंदी कविता के विकास क्रम का अध्ययन कर लिया है। यह इकाई स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता पर आधारित है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- स्वातंत्र्योत्तरहिंदी कविता के विकास क्रम को समझ पायेंगे।
- स्वातंत्र्योत्तर हिंदी सामाजिक-राजनीतिक -सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को समझ पायेंगे।
- स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता के आन्दोलनों से परिचित हो सकेंगें।

- स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता के प्रमुख कवियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता की प्रवृतियों को समझ सकेंगे।
- स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता के कलात्मक आयाम को जान सकेंगे।
- स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता की पारिभाषिकी से परिचित हो सकेंगे।

7.3 स्वातंत्र्योत्तर काल और हिंदी कविता का विकास

स्वातंत्र्योत्तर कालीन कविता का संबंध भारतीय नवजागरण, राष्ट्रीय आन्दोलन, पूँजीवाद के आधुनिक बोध, तथा विश्वयुद्ध के बाद पैदा हुई स्थितियों से है। इतिहास में बदलाव के बिन्दु को रेखांकित करना हमेशा से ही कठिन रहा है, कारण यह कि बदलाव की प्रक्रिया यांत्रिक ढ़ग से यकायक नहीं होती बल्कि लम्बी ऐतिहासि0क प्रक्रिया के कारण संभव हो पाती है। इसलिए यह संभव नहीं है कि सन् 1947 के पहले और बाद के साहित्य में कोई संबंध ही न हो। यह विभाजन विधाजनक है और भारतीय इतिहास की बड़ी घटना (भारत के स्वतंत्रता दिवस) से जुड़ा हुआ है। भारतीय स्वतंत्रता की घटना न केवल साहित्यकारों बल्कि इतिहासविदों, चिन्तकों, समाजशास्त्रियों के विश्लेषण के बिन्दु को दूसरी ही तरफ मोड़ दिया। स्वतंत्रता का लक्ष्य समानता की व्यवस्था में बदल गया, जिसकी परिणति हुई सन् 1950 ई0 का भारतीय संविधान । हिंदी कविता भी बदली और उसके अनुरूप अपना नया कलेवर धारण किया। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की प्रवृत्तियों का हम अध्ययन करें, उससे पूर्व आइए हम उसकी पृष्ठभूमि का अध्ययन करें।

7.4 स्वातंत्र्योत्तर काल की परिस्थिति

जैसा कि पूर्व में कहा गया कि सन् 47 की घटना वह निर्णायक बिन्दु था, जिसने पूरे भारतीय इतिहास को दूर तक प्रभावित किया। स्वाभाविक था कि हिन्दी साहित्य या कविता भी उससे प्रभावित हुई। स्वातंत्र्योत्तर काल की बदली हुई राजनीतिक, सामाजिक ,आर्थिक एंव सांस्कृतिक - धार्मिक परिस्थितियों का संबंध हिन्दी कविता से है। हिन्दी कविता ने इन परिस्थितियों का सृजनात्मक उपयोग किया । आइए हम स्वातंत्र्योत्तर काल की परिस्थितियों का अध्ययन करें।

7.4.1 राजनीतिक परिस्थिति

1947 ईसवी में भारत आजाद हुआ, विभाजन की कीमत पर। विभाजन के उपरान्त पाकिस्तान नामक एक नया राष्ट्र निर्मित हुआ, जिसने भारत की सुरक्षा - शांति - स्थिरता को दूर तक प्रभावित किया । अब तक भारत - पाकिस्तान के चार युद्ध हो चुके है। सन् 1947, 1965, 1971, में प्रत्यक्षतः और 1999 में कारगिलका अप्रत्यक्ष युद्ध।

इस बीच भारत - चीन युद्ध भी सन् 1962 ई में हुआ, जिसमें भारत की पराजय हुई। इन युद्धों ने हमारे देश में राजनीतिक अस्थिरता पैदा की। द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त अमरीका और रुस में पैदा हुई शीतकालीन स्थिति ने अस्तित्वादी मनः स्थितियाँ पैदा की । जिससे स्वातंत्र्योत्तर साहित्य बहुत प्रभावित हुआ। देश की स्वतंत्रा के समय संपूर्ण राष्ट्र आशान्वित था। उसे आशा थी कि अब हमारी सारी समस्याओं का समाधान प्राप्त हो जायेगा, लेकिन दुर्भाग्य से ऐसा न हो सका। अंग्रेजी राज्य की स्थापना के बाद कांग्रेसी सरकार का गठन हुआ। जवाहर लाल नेहरु के नेतृत्व में पंचशील समझौता हुआ, लेकिन वह असफल रहा। राजनीतिक असफलता ने भारतीय युवाओं के मन में असंतोष भर दिया। स्वप्न टूटे, मोहभंग हुआ और समाज बिना लक्ष्य के रह गया। केंद्रीय सत्ता, केंद्रीय विचार असफल हो गये, फलतः विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया तेज हुई, क्षेत्रीय पार्टियों की बहुतायत बढ़ गई। राजनीतिक अस्थिरता का नया सच हमारे सामने आया।

7.4.2 सामाजिक परिस्थिति

स्वतंत्रता पूर्व भारतीय समाज सामाजिक रुप से काफी पिछड़ी हुई अवस्था में था। अंगेजी राज्य में जमींदार, व्यापारी या उनके अधीनस्थ कर्मचारियों की सामाजिक स्थिति संतोषप्रद थी, लेकिन बाकी सामान्य जनता की स्थिति काफी विषम थी। अंग्रेजों ने 'फूट डालो राज करो' की नीति के अनुरुप उच्च वर्ग को अपने स्वार्थ के लिए इस्तेमाल किया। राष्ट्रीय आन्दोलन के अखिल भारतीय समाज को एक करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । सन् 1930 के बाद सामाजिक आन्दोलनों के प्रभाव से सामाजिक समरसता एवं समानता की स्थिति बनने लगी थी। सन् 1947 के बाद भारतीय संविधान का बनना इसी दिशा में एक बड़ा कदम था। स्वातंत्र्योत्तर भारत में सामाजिक विकास को समायोजित करने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का प्रारम्भ हुआ। शैक्षिक जगत में भी युगान्तकारी परिवर्तन हुआ । स्वतंत्रता के पश्चात् देश में कई विश्वविद्यालय, महाविद्यालय एवं कालेज खुले। साक्षरता दर में स्वतंत्रता के पश्चात् काफी वृद्धि हुई । साक्षरता ने बौद्धिक जागरुकता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। विशेषकर स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई। महिलाओं के घर से बाहर निकलने और नौकरी करने से पारिवारिक स्तर पर कई बदलाव परिलक्षित हुए। स्त्री - पुरूष समानता की स्थिति ने एक ओर जहाँ सामाजिक गतिशीलता पैदा की वहीं दूसरी तरफ पारिवारिक विघटन की स्थिति भी निर्मित हुई। ज्ञान - विज्ञान के आलोक में कार्य - कारण तर्क पद्धति विकासित हुई। अंतर्विरोध, विसंगति, विडम्बना, तनाव जैसी आधुनिक समस्याएँ सामाजिक रुप में तथा साहित्य में भी दिखाई देने लगीं। भौतिक दृष्टि से समाज उन्नतशील हुआ, लेकिन साथ ही जटिलताएँ भी बढ़ीं । इन सबका साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा।

7.4.3 आर्थिक परिस्थिति

स्वांतत्रयोत्तर आर्थिक विकास की स्थिति - परिस्थिति का हिन्दी कविता पर व्यापक प्रभाव पड़ा। स्वतंत्रता के पूर्व आर्थिक विकास का सूत्र अंग्रेजों के हाथ में था, लेकिन उनका मख्य उद्देश्य भारत

की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करना नहीं था, अंग्रेजों के भारत आने से पूर्व भारत की विश्व व्यापार में योगदान लगभग 16% था, जो 1947 तक नगण्य रह गया था। अंग्रेजी राज्य का भारत विकास एक छद्म था, जिसे उन्होंने लूट के साधन के रुप में प्रयोग किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अर्थव्यवस्था को सुनियोजित करने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का प्रारम्भ हुआ। सन् 1952 में प्रथम पंचवर्षीय योजना का प्रारम्भ हुआ। हमारे देश में मिश्रित अर्थव्यवस्था को लागू किया गया, जो सफल साबित हुआ। किन्तु इसके साथ ही भूखमरी, बेकारी, अकाल, जनसंख्या बढ़ोत्तरी, भ्रष्टाचार, हिंसात्मक मनोवृत्ति ने आर्थिक विकास को पीछे धकेल दिया। देश में अनेक आर्थिक परियोजनाएँ चली, लेकिन हम समृद्ध राष्ट्र की कल्पना साकार न कर सके। एक ओर देश की सामान्य जनता का जीवन स्तर दिन-प्रति-दिन नीचे गिरता गया, दूसरी ओर समाज का एक छोटा वर्ग समृद्ध होता चला गया। आर्थिक विकास के विकेन्द्रीकाण एवं असमानता ने सचेत वर्ग के भीतर विद्रोह - विक्षोभ का संचार किया।

7.4.4 धार्मिक - सांस्कृतिक परिस्थिति

स्वांतत्रयोत्तर कविता की पृष्ठभूमि पीछे 1857 की घटना से सीधे जुड़ जाती है। हिन्दू - मुस्लिम धर्मो की एकता स्थापित होने में सैकड़ो वर्ष लग गए। मुगलकाल के पतन एवं ब्रिटिश सत्ता के वर्चस्व की घटना परस्पर जुड़ी हुई है। 1857 की क्रान्ति ने यह स्थिति उत्पन्न की कि दोनों एकजुट होकर ब्रिटिश सत्ता के प्रति धार्मिक अस्तित्व के लिए संघर्ष करें। ऐतिहासिक प्रक्रिया में यह शुभ संकेत था - राष्ट्र के लिए। इस प्रक्रिया की पूर्णाहुति हुई देश की आजादी में। इसी समय अंग्रेजो ने मुस्लिम - लीग और हिन्दू महासभा को अपने-अपने ठंग से प्रोत्साहन देकर 'फूट डालो राज करो ' की नीति के तहत अपने स्वार्थ की सिद्धि की, जिसकी परिणति देश के विभाजन में हुई। फूट और घृणा का यह वातावरण अभी तक बना हुआ है। जिसका प्रमाण है देश मे हिस्सों में होने वाले हिन्दू - मुस्लिम दंगे। धार्मिक विद्वेष के इस वातावरण का प्रतिरोध सांस्कृतिक स्तर पर हुआ। शास्त्रीय संगीत एवं साहित्य ने सांस्कृतिक स्तर पर प्रतिरोध की संस्कृति निर्मित की, लेकिन राजनीतिक - सामाजिक बड़े आन्दोलन के अभाव में वह उतना प्रभावी न हुई।

अभ्यास प्रश्न 1)

निम्नलिखित कथन में सत्य/असत्य बताइए।

1. संवेदनशीलता का सबसे ज्यादा वहन कविता करती है।

2. साहित्य अपने समाज की संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है।

3. स्वातंत्र्योत्तर कविता के लिए जागरण का प्रश्न मुख्य था।

4. द्वितीय विश्वयुद्ध से स्वातंत्र्योत्तरहिंदी कविता का सम्बंध है।

5. 1857 का युद्ध भारत की सांस्कृतिक परिस्थिति के कारण लिए शुभ संकेत था।

7.5 स्वातंत्र्योत्तरकालीन साहित्य के प्रमुख आन्दोलन

स्वातंत्र्योत्तर कविता की पृष्ठभूमि का आपने अध्ययन कर लिया है। आपने यह पढ़ा कि किस प्रकार भारतीय जनता के सपने- आकांक्षांए बिखर गईं। स्वतंत्रता के पूर्व जो लक्ष्य निर्धारित किए गये थे, वे अपूर्ण ही रह गये। सामाजिक आर्थिक - राजनीतिक अव्यवस्था ने स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आपने पिछली इकाइयों में प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद के बारे में पढ़ा । ये आन्दोलन स्वतंत्रता पूर्व के कविता आन्दोलन थे, लेकिन इनका विस्तार स्वतंत्रता बाद की किवताओं पर भी पड़ा। प्रयोगवाद का साहित्यिक विकास नयी कविता के रुप में हुआ। प्रगतिवाद का आन्दोलन के रुप में उतना प्रत्यक्ष विकास भले न हुआ हो लेकिन बाद की कविता पर प्रगतिवाद की वैचारिकी का सबसे ज्यादा प्रभाव पड़ा। प्रगतिवाद के प्रभाव से ही क्रमशः प्रगतिशील कविता, जनवादी कविता, जन - संस्कृति की कविता, प्रतिबद्ध कविता की अवधारणाएँ सामने आईं। कह सकते हैं कि प्रगतिशीलता, समकालीनता, प्रतिबद्धता जैसी अवधारणाएँ व्यापक रुप से प्रगतिवाद का ही सम - सामयिक रुपान्तरण थीं। इतिहास में कोई पूर्ण तिथि निश्चित नहीं की जा सकती। जिसे हम घटना का प्रारम्भ और समापन घोषित कर दें। तिथि निर्धारण का लचीला एवं सुविधाजनक रुप ही हमारे सामने होता है। 1947 ईसवी की घटना के समय, साहित्यिक स्तर पर प्रयोगवादी आन्दोलन चल रहा होता है, जो 1951 के दूसरे सप्तक से समाप्त होता है या नयी कविता में रुपान्तरित होता है। उसके पश्चात् साठोत्तरी कवित, अ-कविता, मोहभंग की कविता, जनवादी कविता, प्रतिवद्ध कविता, उत्तर-आधुनिक कविता, विर्मश केंद्रित कविता, समकालीन कविता, तथा इक्कीसवीं शती की कविता जैसे कई नाम हिन्दी कविता के साथ जुड़ते गए। विभिन्न काव्य आन्दोलन युग-समाज में आये बदलाव का ही संकेत करते हैं। इन बदलावों को हम एक आरेख/तालिका के माध्यम से स्पष्ट रुप से देख सकते हैं –

1951 – 1959 - नई कविता

1960 – 1965 - साठोत्तरी कविता/ अकविता

1965 – 1975 - मोहभंग की कविता

1975 – 1990 - जनवादी कविता

1990 – 2012 - उत्तरआधुनिकता/ विमर्श कविता/ समकालीन कविता

यहाँ हमें ध्यान रखना होगा कि ये नामकरण सुविधा की दृष्टि से रखे गये है। किसी भी युग में कोई एक प्रवृत्ति ही गतिशील नहीं होती, एक साथ ही कई प्रवृत्तियाँ काम करती रहती है।

आलोचक अपनी दृष्टि - विचारधारा के स्तर पर किसी एक प्रवृत्ति को मुख्य मानकर उस पूरे युग का एक नामकरण स्थिर करता है। लेकिन बाद के समय में दूसरा आलोचक उस युग की दूसरी प्रवृत्ति को मुख्य मान लेता है। जैसे हिन्दी कविता के संदर्भ में कहें तो आदिकाल एवं रीतिकालीन कविता के कई नामकरण इसी सिद्धान्त के कारण मिलते है। दूसरी समस्या कालगत नामकरण को लेकर आरम्भ होती है। जैसे सन् 1960 के बाद की कविता को समकालीन कविता भी कहा गया और नवलेखन की कविता भी। लेकिन आज की स्थिति ने ये नामकरण अप्रासंगिक हो गये हैं। कालगत नामकरण की यही सीमा है, इसीलिए प्रवत्तिगत नामकरण ही इतिहास में दीर्घकालिक होत है और साहित्यिक प्रवृत्ति को समझने में हमारी मदद भी करता है।

7.5.1 स्वातंत्र्योत्तर कविता : एक परिचय

जैसा कि कहा गया, स्वातंत्र्योत्तर कविता यात्रा की विकास यात्रा सीधी -सपाट नहीं है। प्रयोगवाद का प्रवर्तन अज्ञेय करते हैं। नयी कविता का नामकरण भी वही करते हैं और तीसरे सप्तक का संपादन भी। इसी प्रकार रामविलास शर्मा की कृतियाँ 'तारसप्तक' में संकलित हुई हैं, लेकिन मूलरूप से वे प्रगतिशील कवि रहे है। मुक्तिबोध भी 'तारसप्तक 'के कवि हैं लेकिन रूपवादी रूझानों से उनका वास्ता नहीं रहा है। फिर भी कुछ प्रवृत्तियाँ रही है, जिनके कारण उनमें अंतर किया गया है। प्रयोगवाद के प्रारम्भ होने के पीछे 'तारसप्तक' नामक काव्य-संकलन की भूमिका रही है। 'तारसप्तक' के संपादक अज्ञेय थे ओर इसमें सात कवि शामिल हैं। द्वितीय तारसप्तक का प्रकाशन सन् 1951 ई. में हुआ। इस सप्तक का संपादन भी अज्ञेय करते हैं। लेकिन अन्य कवि बदल गए हैं। द्वितीय तारसप्तक के प्रकाशन से ही 'नयी कविता ' की शुरुआत मानी जाती है। कुछ लोगों के अनुसार अंग्रेजी साहित्य के ' न्यू पोयट्री' आन्दोलन का प्रभाव नयी कविता आन्दोलन पर पड़ा है। पश्चिम के आन्दोलन से प्रभावित होकर भी यह आन्दोलन अपने देश की भूमि, परिस्थितियों की उपज है। 1954 ईसवी में प्रकाशित 'नयी कविता' नामक पत्रिका के प्रकाशन के उपरान्त इस आन्दोलन को विशेष बल मिला। इसके अतिरिक्त 'प्रतीक' 'कृति', 'कल्पना', 'निकष', 'नये पत्ते', 'कखग', आदि अनेक पत्रिकाओं का नयी कविता के विचारधारात्मक सरोकारों के प्रतिष्ठापन में योगदान रहा।

स्वातंत्र्योत्तर काल से ही जनता के सामने जो चुनौतियाँ और समस्यायें थी , वे साठ के बाद और गहरा गई। व्यवस्था की अमानवीयता, निर्ममता, शोषण, दमन, अत्याचार, बर्बरता बढ़ती गई। व्यवस्था के प्रति मोहभंग की सबसे तीव्र प्रतिक्रिया मध्यवर्ग और निम्न मध्यवर्ग के बुद्धिजीवियों में हुई। हिंदी के अधिकांश रचनाकारों की साठोत्तरी पीढ़ी इसी वर्ग से आयी थी। स्वभावतः साहित्य में अधैर्य की अभिव्यक्ति हुई। जगदीश चतुर्वेदी की पत्रिका सन् 1963 में 'प्रारम्भ' नाम

से प्रकाशित हुई , जिसमें उन्होंने 'अकविता' नाम की घोषणा की , परन्तु शुरू में कविता की इस नयी दिशा को 'अभिनय काव्य' कहा गया। 1965 में श्याम परमार, जगदीश चतुर्वेदी, रवीन्द्र

त्यागी और मुद्राराक्षस के सम्मिलित सहयोग से 'अकविता' संकलन निकाला गया, जो 1969 तक निकलता रहा, जिसका 'अकविता' नामक नयी काल-प्रवृत्ति का स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान रहा। मोटे तौर पर सन् 1960 से 1963 की एब्सर्ड किस्म की कविताओं के लिए 'अकविता' नाम रूढ़ हो गया। इस धारा के कवियों में श्याम परमार, सौमित्र मोहन, जगदीश चतुर्वेदी, मोना गुलाटी, निर्भय मल्लिक, राजकमल चौधरी, कैलाश बाजपेयी, आदि मुख्य हैं। विद्रोह की अपनी नाटकीय मुद्रा के बावजूद अकविता अपने मूल रूप में यथास्थितिवाद के विरूद्ध बदलाव के संघर्ष को कमजोर बनाती हैं।

सत्ता के प्रति असंतोष एवं विद्रोह का स्वर अकवितावादी कवियों के नकार में व्यक्त हुआ वहीं दूसरा रूप विद्रोही अराजकतावाद में परिणत हुआ। पहले की अपेक्षा काम -कुंठा की अभिव्यक्ति इस धारा में कम रही। सन् 1965 के बाद विशेषकर सन् 68 के आसपास धूमिल , लीलाधर, जगूड़ी, चन्द्रकांत देवताले, वेणु गोपाल, कुमार विकल, अरूण कमल आदि की रचनाएँ सामने आई। इन रचनाकारों मे मध्यवर्गीय अराजकतावाद तो था, लेकिन अपने तीव्र -व्यवस्था विरोध के कारण इनकी रचनाएँ विशेष संदर्भवान हुई। यह युग मुख्यतः अनास्थावादी कविता का ही युग था। सब कुछ को अस्वीकार करने की यह मुद्रा केवल हिन्दी कविता में ही नहीं वरन् समस्त भारतीय भाषाओं की कविता में दिखती है। बंगाल में 'भूखी पीढ़ी', 'वीट पीढ़ी' के नाम से शुरू हुई साठात्तरी कविता, तेलगु में 'दिगम्बरी पीढी', मराठी में 'आसो' तथा गुजराती पंजाबी में ''अकविता'' नाम से जानी गयी। विदेशों में भी इसी समय इस प्रकार की कविता हो रही थी। अमेरिका में इस तरह की कविता को 'बीट जनरेशन' कहा गया। इग्लैण्ड में 'एंग्री यंग मैन' नामक पीढ़ी व्यवस्था के असंतोष पर ही पैदा हुई थी। इसी प्रकारा जर्मनी में 'छली गयी पीढ़ी' और जापान में 'हिगकुशा' नामक क्षुब्ध पीढी का जन्म हुआ। अमेरिका में 'बीट जनरेशन' की तरह भूखी पीढ़ी भी जन्मीं, जिसका नेतृत्व एलेन गिसवर्ग ने किया। बंगाल में तो 'भूखी पीढ़ी' के साथ 'कविता दैनिकी' या 'कविता घण्टिकी'भी लिखी गई। इसी के प्रभाव से हिंदी में भी अकविता, बीट कविता, श्मशानी कविता, युयुत्सावादी कविता, विटनिक कविता, विद्रोही कविता, नवप्रगतिशील कविता आदि अनेक नाम सामने आये। डॉ0 जगदीश गुप्त ने अपने निबंध 'किसिम की कविता' में लगभग चार दर्जन नाम गिनाये है। मूल्यहीनता के विरूद्ध इनकी प्रतिक्रिया कभी - कभी अराजक, उग्र और दुस्साहसिक विचारधारा की शक्ल में भी सामने आयी।

सन् 1975 ई0 तक आते -आते व्यवस्था विरोध की स्थिति में आक्रामकता कम होने लगी थी। विद्रोह की वाणी को व्यवस्थित रूप प्रदान करने की कोशिश की जाने लगी। इस प्रकार की कविताओं को जनवादी कविता कहा गया है। 'जनवादी कविता' एक तरह से प्रगतिवादी आन्दोलन का ही विस्तार थी। प्रगतिवादी वर्ग-वैयम्य की भावना से इतर जनवादी कविता ने जन केंद्रित भावनाओं को केंद्र मं स्थापित करने की पहल की। सन् 1990 के बाद भूमण्डलीकाण-वैश्वीकरण की गूँज भारत में भी सुनाई पड़ने लगी थी। भारत सरकार के उदारीकरण/ मुक्त व्यापार

इसी दिशा के कदम थे। यंत्रों का अधिकाधिक प्रयोग एवं तकनीक इस विचारधारा के प्रायोगिक उपक्रम बने। इस युग को 'उत्तर - आधुनिक काल' कहा गया। कुछ लोग इसे 'विमर्श केंद्रित काल' भी कहते हैं। इस युग की कविता ने पुरानें मूल्यों (आधुनिक)पर प्रश्न-चिह्न लगाया और किसी भी सिद्धान्त को अंतिम मानने से मना कर दिया। एक ओर जहाँ कविता का लोकतंत्रीकारण हुआ, वहीं दूसरी ओर विषय-वस्तु में अराजकता का दर्शन भी हुआ।

7.5.2 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के प्रमुख आन्दोलनों का आपने अध्ययन का लिया है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों का आपने संक्षिप्त में अध्ययन कर लियर है। आइए अब हम स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर (कवि) के बारे में संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करें।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हिन्दी कविता का प्रमुख काव्य-आन्दोलन 'दूसरा सप्तक' रहा है। सप्तक के माध्यम से और सप्तकेत्तर कई कवियों का आगमन हुआ। यहाँ हम प्रमख कवियोंका परिचय पाने का प्रयास करेंगं। शमशेर बहादुर सिंह को हिन्दी में 'कवियों का कवि' कहा गया है। चित्रकला, संगीत और कविता जहाँ आपस में घुल-मिल जातें हैं, वहाँ शमशेर की कविता बनती है। शमशेर कविता में कुछ बिन्दुओं, संकेतों के माध्यम से अर्थ की सृष्टि करते हैं। 'बात बोलेगी', 'चुका भी नहीं हूँ में' कविताएँ, 'कछ ओर कविताएँ शमेशर की प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। **'मुक्तिबोध'** ने अपने कविन प्रतीकों और फैंटेसी शिल्प के रचाव से तत्कालीन व्यवस्था की सभ्यता -समीक्षा की है। 'चाँद का मुहँ टेढ़ा है', 'भूरी - भूरी खाक धूल' जैसे काव्य-संग्रह में आपकी कविताएँ संग्रहीत हैं। समाज को बदलने की चिंता आपकी कविताओं की केंद्रीय समस्या है, जिसे आपने मार्क्सवादी विचारधारा को कविता में ढाल कर पूरा किया है।

भवानीप्रसाद मिश्र की कविताएँ बोलचाल की भाषा और लय में जीवन की विषम स्थिति को उकेरती हैं। 'गीत फरोश' कविता अपने लोकभाषा और लय-विधान के कारण चर्चित रही हैं। 'सतपुड़ा के जंगल', 'कमल के फूल' आपकी अन्य रचनाएँ हैं। **रघुवीर सहाय** दूसरे सप्तक के महत्वपूर्ण कवि है। मनुष्य जीवन की नियति को व्यापक संदर्भ में आपकी कविता उठाती है। 'सीढ़ियों पर धूव में', 'आत्महत्या के विरुद्ध', 'हँसो-हँसो जल्दी हँसो' जैसे काव्य-संग्रह वर्तमान विसंगतियों के आधार पर निर्मित हुए हैं। **धर्मवीर भारती** की सामाजिकतां व्यक्तिवादी धरातल से होकर निर्मित हई हैं। 'ठढ़ा लोहा' जैसी रचनाएँ किशोर अल्हड़ता से प्रभावित है। 'इन फिरोजी ओठों पर/बरबाद मेरी जिन्दगीं ' भारती के शुरूआती कविताओं की मुख्य थीम हैं। 'अंधा-युग' तक आते-आते धर्मवीर भारती पूरी व्यवस्था को कटघरे में खड़ा कर देते हैं/आस्था, मूल्य, विश्वास, कर्त्तव्य, सत्य, सभी अपना अर्थ खो चुके हैं ऐसी स्थिति में फिर समाज की अगली दिशा क्या होगी ? यह धर्मवीर भारती की भी अपनी सीमा है। मानव-नियति की सार्थकता का प्रश्न **कुँवरनारायण** की रचना 'आत्मजयी' की केंद्रीय समस्या है। कुँवरनारायण का पहला काव्य 'चक्रवयूह'

आधुनिकता की मनोदशा के बीच निर्मित हुआ है। 'परिवेशः हम-तुम ' ओर 'अपने सामने ' जैसे काव्यों में उनकी विषय-वस्तु व्यापक संदर्भो को अपने में समेटने में सफल हई है। **केदारनाथ सिंह** तीसरे सप्तक के महत्वपूर्ण कवि हैं। केदार अपने 'रुप - रस - वर्ण - स्पर्श - गंधी ' विंब योजना के कारण विशिष्ट हैं (बच्चन सिंह) 'जमीन पक रही है, अभी बिल्कुल अभी', 'यहाँ से देखो' , 'अकाल में सारस', 'बाघ तथा अन्य कविताएँ', जैसे संग्रह केदार की रचनाओं के मुख्य संग्रह हैं । **सर्वेश्वर दयाल सक्सेना** तीसरे सप्तक के महत्वपूर्ण कवि हैं। सर्वेश्वर कविताओं में समकालीनता के कई आयाम देखने को मिलते हैं। 'काठ की घंटियाँ', 'बाँस का पुल', 'एक सूनी नाव' और गर्म हवाएँ' आपके प्रमुख काव्य-सग्रह हैं। सप्तकेतर कवियों मे **श्रीकान्त वर्मा** महत्वपूर्ण कवि हैं। 'दिनारंभ', 'माया-दर्पण', 'जलसाघरः मगध' आपके महत्वपूर्ण काव्य- संग्रह हैं । **नरेश मेहता** की कविताएँ वैदिक संस्कृति और लोक संस्कृति के संदर्भो से निर्मित हुई हैं। 'संशय की एक रात' लम्बी कविता के रुप में काफी चर्चित हुई। छठे दशक के हिन्दी कविताओं की अगुवाई **राजकमल चौधरी** ने की। 'कंकावती' एवं 'मुक्तिप्रसंग' में राजकमल चौधरी का कवित्व अपनी समस्त संभावनाओं एवं सीमा के साथ चित्रित हुआ है। राजकमल चौधरी ने नंगेपन को गुस्से के साथ चित्रित किया है। सामाजिक मूल्यहीनता का पर्दाफाश करते-करते आपअराकतावाद तक चले जाते हैं। **सुदामा पाण्डेय** 'धूमिल' इस दौर का अन्य बड़ा कवि है। 'संसद से सड़क तक' एवं 'कल सुनना मुझे' आपके महत्वपूर्ण कविता संग्रह हैं। 'धूमिल' की कविता अपने चुस्त मुहावरे एवं सपाटबयानी के कारण चर्चित रही है।

अभ्सास प्रश्न 2)

(क) निम्नलिखित वाक्यों की रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए।

1) प्रयोगवाद का साहित्यिक विकास .... के रुप में हुआ।

2) दूसरे सप्तक का प्रकाशन वर्ष .... है।

3) नयी कविता का समय .... के बीच का है।

4) न्यू पोयट्री' आन्दोलन का सम्बन्ध .... से है।

5) प्रयोगवाद का सम्बन्ध .... के प्रकाशन से है।

(ख) निम्नलिखित कथन में सत्य/असत्य बताइए।

1) नयी कविता का प्रकाशन वर्ष 1954 है।

2) 'प्रारम्भ' पत्रिका के सम्पादक जगदीश गुप्त है।

3) अकविता में एब्सर्ड की प्रवृत्ति मिलती है।

4) भूखी पीढ़ी का मुख्य सम्बन्ध बंगाल से है।

5) 'किसिम-किसिम की कविता' निबन्ध का सम्बन्ध जगदीश गुप्त से है।

7.6 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्ति क्या है ? इसे स्पष्टतया बता पाना कठिन है। कारण यह कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् न तो कोई काव्य प्रवृत्ति लम्बे समय तक चली और न एक ही मुख्य काव्य-प्रवृत्ति थी। आधुनिक स्वचेतनवृत्ति के परिणामस्वरुप मानवीय समाज तेजी से बदल रहा है, जिसके कारण अनुभूतियों में भी बदलाव की प्रक्रिया तीव्र हो गई है। फलतः साहित्य/कविता मे भी मानवीय अनुभूतियों के बदलाव की प्रक्रिया तेज हुई है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के कई आन्दोलन अपनी विषय-वस्तु एवं ट्रीटमेंन्ट में अन्य काव्य आन्दोलनों से भिन्न थे। वस्तुतः नवीन प्रवृत्तियों ने ही नवीन काव्य-आन्दोलनों को जन्म दिया। प्रयोगवाद की प्रवृत्ति व्सक्तिवाद एवं रुप की रही। नयी कविता ने अस्तित्ववादी रूझानों के बावजूद 'लघुमानव'को नही छोड़ा । साठोत्तरी कविता में नकारवादी तत्व ज्यादा थे। मोहभंग की कविता गुस्से, विद्राह की कविता है। जनवादी कविता जनभावनाओं के साथ ही लोकवादी रूझानों को लेकर चलती है। उत्तर- आधुनिक कविता विमर्श को केंद्र में खड़ा करती है।

7.6.1 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की वैचारिकी

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के प्रवृत्ति की तरह ही वैचारिकी के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि इसे भी हिन्दी कविता की प्रवृत्ति की तरह किसी निश्चित वैचारिकी से नहीं बाँधा जा सकता । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता का पहला काव्यान्दोलन 'नयी कविता'था। इस आन्दोलन पर पूँजीवाद के व्यक्तिवाद फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद एवं सार्त्र के अस्तित्ववाद का गहरा प्रभाव पड़ा। व्यकितवादी भावनाएँ समाज से कटकर अपनी सत्ता स्थापित करने पर बल देती हैं। 'यह दीप अकेला' एवं 'नदी के द्वीप' जैसी भावनरएँ इसी की प्रतिध्वनि हैं। 'आधुनिक मनुष्य मौन वर्जनाओं का पुंज है' जैसे वाक्य मनोविश्लेषण की देन हैं वहीं फेंटेसी शिल्प का प्रयोग एवं जिजी विषा की भावना अस्तित्ववाद की देन हैं। पूँजीवादी बौद्धिकता ने सारे पुराने मूल्यों पर प्रश्न- चिह्न भी लगाया। 'एक क्षण-क्षण में प्रवहमान व्याप्त संपूर्णता' जैसे वाक्य अस्तित्ववाद की ही प्रतिध्वनि है। मार्क्सवादी विचारधारा ने स्वातंत्र्योत्तर साहित्य को सर्वाधिक प्रभावित किया है। प्रगतिवादी विचारधारा के केंद्र में तो मार्क्सवाद था ही, प्रयोगवाद के अधिकांश कवि मार्क्सवादी ही थे। 'नयी कविता' के दौर के कवियों पर मुक्तिबोध, केदारनाथ सिंह इत्यादि की काव्य - ऊर्जा भी मार्क्सवाद ही था। मोहभंग की कविता, जनवादी कविता एवं उत्तर - आधुनिक कविताओं के मूल में भी मार्क्सवाद विचारधारा ही है। मार्क्सवाद स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता को जन - जीवन से जोड़कर

सामाजिक संघर्ष को गति प्रदान की। 'अधेरे मे' कविता व्यापक लोकयुद्ध की संभावना से युक्त होकर रची गई। सन् 1990 के बाद की कविता पर उत्तर - आधुनिक विमर्शों का प्रभाव देखा जा सकता है। यह विचारधारा तकनीक को केंद्र में ले कर चलती है।

7.6.2 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की आलोचनात्मक संदर्भ

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता अपनी पूर्ववर्ती कविता से कई मायने में अलग है। स्वतंत्रता पूर्व की कविता (समाज की ही भाँति) सीधे-सादे ढंग से निश्चित लक्ष्यों एवं मूल्यों को लेकर चलने वाली कविता रही है। भारतेन्दु कालीन कविता भक्ति-नीति-श्रृंगार के आधार पर विकसित हुई हैं। द्विवेदी कालीन कविता के मूल में सुधारवादी भावना है। छायावाद के मूल में जहाँ नवजागरणवादी चेतना काम कर रही है, वहीं प्रगतिवाद के मूल में वर्ग-वैषम्य की भावना। वही प्रयोगवाद के मूल में नवीन सत्यों की खोज काम कर रही है। इसके विपरीत नयी कविता और बाद के काव्यान्दोलनो का हम सीधे - सादे ढ़ंग से मूल्यांकित नहीं कर सकते। मुक्तिबोध में एक ओर जहाँ प्रगतिवादी तत्व है वहीं दूसरी ओर प्रयोगवादी एवं अस्तित्ववादी रूझान भी कम नहीं हैं। विचारधारा का आग्रह तो बढ़ा लेकिल इसके संभावित खतरे की ओर भी लोगों का ध्यान कम नहीं गया। अब कविता के विषय-वस्तु में विविधता आई। समाकालीनता बोध ने कविता को ज्यादा प्रभावित किया। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता अपनी की विषयवस्तु के ऊपर सबसे बड़ा आक्षेप यह लगाया गया है कि इसमें व्यक्तित्व-निर्माण का घोर अभाव है। व्यक्तित्व-निर्माण की जगह आज की कविता उपभोक्ता पैदाकर रही है। वर्तमान की विसंगतियों का चित्रण तो है, किन्तु संवेदना का अभाव है।

7.6.3 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता का भाषागत संदर्भ

साहित्यिक भाषा की सबसे बड़ी विशिष्ठता यह होती है या होनी चाहिए कि वह अर्थ की वृहत्तर छवियों को कलात्मक ढंग से सम्प्रेषणीय बनाये। यानी सबसे पहले तो यह कि उसमें बहुअर्थीय छवियों को धारण करने की क्षमता हो। कविता के इसी गुण के कारण वह हर युग में अपनी प्रासंगिकता बनाये रखती है। बड़े कवियो की कविताएँ इसीलिए हर युग में संदर्भवान होती है। कविता का दूसरा प्रमुख गुण यह होना चाहिए कि वह कलात्मकता के मानक का पूरी तरह पालन करे। कविता की बड़ी विशिष्ठता यह होनी चाहिए कि वह सम्प्रेषणीय हो । सम्प्रषणीयता के लिए सरल भाषा के साथ ही लोकबद्धता की अनिवार्यता होती है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की भाषा में जहाँ एक ओर लोकधुनों का प्रयोग है (भवानी प्रसाद मिश्र, गोरख पाण्डेय इत्यादि) वहीं दूसरी और प्रतीकों-विम्बों का सुन्दर प्रयोग है (अज्ञेय, केदारनाथ सिंह, शमशेर आदि)। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता की भाषा एक ओर जहाँ विसंगतियों का पर्दाफाश कर पाने में सक्षम है (रघुवीर सहाय, धूमिल आदि) वहीं दूसरी ओर लोकवद्धता से भी जुड़ी हुई है।

अभ्यास प्रश्न 3)

(क) कोष्ठक में दिए गए शब्दों को भरकर रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

7. 'लघु मानव' का सम्बन्ध .... से रहा है

(प्रयोगवाद/प्रगतिवाद/नयी कविता)

7. 'यह दीप अकेला कविता' का सम्बन्ध .... की प्रवृत्ति से है।

(मनोविश्लेषणवाद/व्यक्तिवाद/अस्तित्ववाद)

7.मुक्तिबोध .... विचारधारा के कवि हैं।

(मनोविश्लेषणवाद/अस्तित्ववाद/मार्क्सवाद)

7. ....के मूल में वर्ग-वैषम्य की भावना काम कर रही है।

(प्रगतिवाद/प्रयोगवाद/अस्तित्ववाद)

5. बिम्ब प्रयोग की दृष्टि से .... महत्वपूर्ण कवि हैं।

(अज्ञेय/केदारनाथ/नागार्जुन)

7.7 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता का मूल्यांकन

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के इतने आयाम और धरातल हैं कि उसका मूल्यांकन करना अपने आप में जटिल (कठिन) कार्य है। कारण यह कि यह एक लम्बा कालखण्ड है, इसमें कई आन्दोलन हें और यह आन्दोलन विभिन्न धरातल पर विकसित हुए हैं। एक बात जरूर यहाँ हम कहना चाहते हैं, और वह यह कि हिन्दी कविता में विचारधारा का आग्रह लगातार बढ़ता गया, जिसके कारण संवेदना गौण होती चली गई। व्यंग्य, मुहावरे, विसंगति, विडम्बना, अंतर्विरोध जैसे तत्वों से कविता जरूर समृद्ध हुई लेकिन यह अनुभूति की सघनता की कीमत पर ज्यादा हुई। कहने का भाव ज्यादा हुआ. बजाय चित्र निर्मित करने या भाव निर्मित करने के, कविता के प्राथमिक कार्य के। विचारधारा एवं विमर्श के अत्यधिक दबाव से कविता की संवेदना तत्व क्रमशः क्षीण होता गया। आज जब कविता के पाठकीय संकट का खतरा मौजूद हो तब कविता को पुनः अपनी भूमिका के तलाश की आवश्यकता है।

7.8 सारांश

- स्वातंत्र्योत्तर काल की हिन्दी कविता से तात्वर्य यन् 1947 के बाद की कविता से है। द्वितीय तारसप्तक 1951 से इसे स्पष्टतया मान सकते है।

- स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व की कविता और बाद की कविता में 'स्वतंत्रा' एक आवश्यक प्रत्यय है, इससे हम दोनों कविताओं की तुलना के माध्यम से जान सकते हैं।
- स्वातंत्र्योत्तर काल की कविता पर राजनीतिक, सामाजिक,आर्थिक एवं धार्मिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों का गहरा प्रभाव पड़ा हैं।
- स्वातंत्र्योत्तर काल की कविता में कई काव्यान्दोलन निर्मित हुए, जो एक दूसरे से भिन्न धरातल पर विकसित हुए हैं।
- स्वातंत्र्योत्तर कविता विषयवस्तु एवं भाषा के धरातल पर पहले की कविता से भिन्न किस्म की कविता रही है। पहले की कविता में जहाँ भावगत स्पष्टता है, वहीं स्वातंत्र्योत्तर कविता में जटिल परिवेश को जटिल ढंग से व्यक्त किया गया हैं।

7.9 शब्दावली

- संवेदनशीलता - भाव एवं बुद्धि के योग से उत्पन्न प्रत्यय
- सृजनशीलता - रचनात्मक कार्य की स्थिति
- अंतर्विरोध - परस्पर विरोधी स्थिति
- विसंगति - असंगत स्थिति
- संत्रास - भय एवं पीड़ा जनक स्थिति
- उत्तर-आधुनिकता - आधुनिकता के बाद का काल
- विकेन्द्रीकरण - किसी वस्तु ,विचार का एक केन्द्र में न पाया जाना
- प्रतिबद्धता - किसी विचार के प्रति दृढ़ निश्चय की स्थिति
- समकालीनता - अपने काल का, वर्तमान काल में, एक साथ
- अराजकता - किसी विचार, स्थिति में अनियन्त्रण की स्थिति
- वर्ग- वैषम्य- दो विरीत वर्गो में विरोध की स्थिति

7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास 1)

1. सत्य 7. सत्य 7. असत्य 7. सत्य 5. सत्य

अभ्यास 2) (क) 7. नयी कविता 7. 1951 7. 1951-1959

7. तारसप्तक 5. नयी कविता

(ख) 7. सत्य 7. सत्य 7. सत्य 7. सत्य 5. सत्य

अभ्यास प्रश्न 3) 7. नयी कविता 7. व्यक्तिवाद 7. मार्क्सवाद 7. प्रगतिवाद 5. केदारनाथ सिंह

7.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. वर्मा, डॉ. धीरन्द्र, हिन्दी साहित्य कोश - भाग एक, ज्ञानमण्डल प्रकाशन।

2. सिंह, डॉ. बच्चन, हिन्दी साहित्य का आधुनिक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन।3

3. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन।

4. सिंह, डॉ. बच्चन, हिन्दी आलोचना के बीज शब्द, वाणी प्रकाशन।

7.12 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

2. सिंह, डॉ बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली ।

7.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के विभिन्न आन्दोलन का विकासक्रम स्पष्ट कीजिए।

2. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के महत्वपूर्ण कवियों का परिचय प्रस्तुत कीजिए।

इकाई 8 नई कविता: सन्दर्भ और प्रकृति

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 नई कविता का वस्तुगत परिप्रेक्ष्य

  8.4.1 छायावादोत्तर गीत धारा

  8.4.2 छायावादोत्तर कविता का प्रगतिवादी स्वर

  8.4.3 प्रयोगवाद

8.4 नई कविता की प्रवृत्तियाँ

8.5 नई कविता: संवेदना का स्वरूप

8.6 नई कविता: भाषा और रचनात्मक वैशिष्ट

8.7 नई कविता के कवि

  8.7.1 अज्ञेय

  8.7.2 मुक्तिबोध

  8.7.3 शमशेर बहादुर सिंह

  8.7.4 धर्मवीर भारती

  8.7.5 विजयदेव नारायण साही

8.8 सारांश

8.9 शब्दावली

8.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

8.12 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

हिन्दी कविता के इतिहास में नई कविता का दौर काव्य रचना और आलोचना के स्तर पर महत्वपूर्ण विचारोत्तेजना और बहस का दौर है। नयी कविता में जिस बदली हुई संवेदना, जीवनानुभव व भाषा का रूप दिखाई देता है उसके आरम्भ की स्थिति 1930 के आस-पास उभरती देखी गई है। सन 1936 में कांग्रेस का अधिवेशन लखनऊ में सम्पन्न हुआ। पं0 जवाहर नेहरू ने इस अधिवेशन की अध्यक्षता की और घोषित किया कि कांग्रेस का लक्ष्य स्वतंत्रता और समाजवाद है। इस घटना का एक समानार्थक रूप हमें लखनऊ में सन् 1936 में ही आयोजित

प्रगतिशील लेखक संघ के सम्मेलन में दिखाई देता है जिसकी अध्यक्षता महान उपन्यासकार प्रेमचंद ने की थी और साहित्य को जनता की मुक्ति के लक्ष्य से जोड़कर देखा था। प्रेमचंद भी अपने लेखन में महाजनी सभ्यता की शोषक प्रवृत्तियों की आलोचना कर रहे थे। कहा जा सकता है कि नई कविता की यथार्थोन्मुखता की भूमिका के पीछे इन संक्रान्त स्थितियों के दबाव थे जो नये कवियों के भीतर उनकी अपनी वैचारिकी तथा रचनात्मकता के अनुरूप प्रतिफलित और स्थिर हुए। यहाँ जिस तथ्य को हम निर्णायक रूप में देखते हैं, वह है छायावादोत्तर कविता का छायावादी रूमानियत से मुक्ति का संघर्ष तथा अपने समय के यथार्थ को समझने और व्यक्त करने के लिए नयी अभिव्यक्ति प्रणालियों को अर्जित करने का उसका प्रयत्न। इस प्रक्रिया के कारण वह पूर्ववर्ती कविता से काफी भिन्न दिखाई देती है तथा 'नई कविता' कही गई है।

8.2 उद्देश्य:

इस ईकाई का अध्ययन करने के बाद आप -

नई कविता के आरम्भ को उसके ऐतिहासिक वस्तुगत परिप्रेक्ष्य सहित समझ सकेंगे।

नई कविता का अपने से पूर्व की कविता से अन्तर समझ सकेंगे।

नई कविता में निहित प्रवृत्तियों के अन्तर को जान सकेंगे।

नई कविता की संवेदना को समझ सकेंगे।

नई कविता के रचनात्मक वैशिष्ट्य को जान सकेंगे।

नई कविता के कवियों के विषय में जान सकेंगे।

8.3 नई कविता का वस्तुगत परिप्रेक्ष्य

नई कविता का समय प्रायः दूसरा सप्तक (1951) से 1960 तक माना जाता है। अज्ञेय, मुक्तिबोध, शमशेर, विजयदेव नारायण साही, धर्मवीर भारती और जगदीश गुप्त नई कविता के प्रमुख कवि हैं। अज्ञेय, साही, भारती और जगदीश गुप्त की कविताओं में काव्य प्रकृति और काव्य प्रवृत्ति के स्तर पर काफी समानता पाई जाती है। अज्ञेय की कविता का विकास आत्मपरकता के विशेष अर्थ के साथ हुआ है। नई कविता के सन्दर्भ में अज्ञेय को प्रायः उसके पुरोधा कवि के रूप में स्वीकार किया गया है। इसका कारण 'सप्तकों' के सन्दर्भ में उनकी भूमिका है। 'सप्तकों' में आये कवि वक्तव्यों और अज्ञेय के सम्पादकीयों को लेकर कुछ अन्य प्रकार की चर्चायें भी हुई किन्तु कहा जा सकता है कि इतिहास की शक्ति ने अज्ञेय को नई कविता के पुरोधा के श्रेय से नवाजा है। अज्ञेय के संपादन में तारसप्तक (1943) दूसरा सप्तक (1951) और तीसरा सप्तक (1959) में

प्रकाशित हुआ। अज्ञेय के ही सम्पादन में 'चौथा सप्तक' भी प्रकाशित हुआ है मगर उसे ज्यादा चर्चा नहीं प्राप्त हुई।

'तारसप्तक' में संकलित कवि थे- गजानन माधव मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा, नेमिचन्द जैन, गिरिजा कुमार माथुर, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे और अज्ञेय। 'दूसरा सप्तक' में शामिल कवि थे- हरिनारायण व्यास, भवानी प्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, शंकुत माथुर, रघुवीर सहाय और धर्मवीर भारती तथा प्रयाग नारायण त्रिपाठी, कुँअर नारायण, कीर्ति चौधरी, केदार नाथ सिंह, मदन वात्स्यायन, विजयदेव नारायण साही और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना 'तीसरा सप्तक' के कवि थे। नई कविता का स्वरूप स्थिर करने में इन तीनों सप्तकों का विशेष योगदान था। विशेष रूप से 'तारसप्तक' और 'दूसरा सप्तक' की कविताएं इसके आरम्भ और क्रमशः अर्जित हुई संवेदना और शिल्प की परिपक्वता को सूचित करती है। इन दोनों काव्य संकलनों में उल्लेखनीय रूप से वैचारिकी का अंतर देखा गया जो 'तारसप्तक' में प्रायः अपने आभासी रूप में है और नई कविता के भीतर उनके बीच अंतर और स्पष्ट होता है। 'तारसप्तक' के अधिकांश कवियों पर समाजवादी विचारधारा का प्रभाव है। विशेष रूप से मुक्तिबोध, नेमिचंद जैन, रामविलास शर्मा और भारतभूषण अग्रवाल पर। कविता का यह समाजवादी स्वर प्रगतिवादी कविता के मेल में था। यह कहा जा सकता है कि 'तारसप्तक' के कवि तेजी से बदलते समाज की मानवीय पुनर्रचना के संघर्ष से जुड़े हैं। वे समाज की संक्रान्त स्थितियों की जटिलता को समझ कर मनुष्य को उसके रूपान्तरण के संघर्ष से जोड़ना चाहते हैं और इसी परिप्रेक्ष्य में वे कविता की बदलती हुई भूमिका के विषय में गंभीर है। रचनात्मक स्तर पर बदले हुए भावबोध की समस्या के साथ संप्रेषण की समस्या भी आ जुटती है और अनुभावन की रूढ़ियों को तोड़ने की चुनौती भी, अतः इस दौर में कवियों के सामने चुनौतियाँ कई तरह की हैं। अतः हमें नई कविता का वस्तुसंगत विश्लेषण करने के लिए इस परिप्रेक्ष्य को समझ कर चलना होगा।

छायावादोत्तर कविता को छायावाद से अलगानेवाली काव्य प्रवृत्ति उसकी यथार्थ दृष्टि है। नामवर सिंह ने अपनी पुस्तक 'कविता के नये प्रतिमान' में सन् 1938 से नई काव्य प्रवृत्तियों को पूर्ववर्ती छायावादी काव्य प्रवृत्तियों से भिन्न होते देखा। उन्होंने लिखा कि- 'इस युग का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है यथार्थवादी रूझान' (नामवर सिंह, 'कविता के नये प्रतिमान')इस प्रकार छायावाद के बाद सामने आने वाली कवि पीढ़ी के सामने प्रमुख चुनौती थी अपने समय के यथार्थ के साक्षात्कार की तथा इस यथार्थ के लिए अर्जित यथार्थवादी दृष्टि के साथ छायावादी यथार्थविरोधी प्रवृत्तियों से संघर्ष की।

8.4.1 छायावादोत्तर गीत धारा

छायावादोत्तर काव्य परिदृश्य में प्रमुखतः तीन प्रकार की काव्यधाराएँ दिखाई देता है। छायावादोत्तर गीतधारा ने छायावादी स्वच्छन्द चेतना और स्वस्थ रागात्मकता की छायावादी विरासत को नया

किया। यही नहीं बल्कि युगबोध का स्वरूप अपने बदलाव के साथ इसमें विन्यस्त हुआ। विशेषरूप से हरिवंशराय बच्चन की हालावादी कविताओं ने भाषा का एक नया मिजाज दिया जिसमें सहजता और रवानी थी। इस धारा के प्रमुख कवियों में बच्चन समेत गोपालदास नेपाली, अंचल, सोहनलाल द्विवेदी, भगवतीचरण वर्मा आदि कवि थे। विजयदेव नारायण साही ने इस काव्यधारा में छायावाद का अंत देखा साथ ही इसी के भीतर उन्हें नई कविता का आरम्भ भी दिखाई दिया। यह अवश्य है कि नई कविता की पृष्ठभूमि को छायावादोत्तर गीतों में घटित संवेदना और भाषा के बदलाव को एक तरफ करके नहीं देखा जा सकता। यह भी देखा जा सकता है कि इस काव्य धारा में नरेन्द्र शर्मा, दिनकर, गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', शिवमंगल सिंह 'सुमन', शैलेन्द्र आदि कवि थे जिन्होंने बहुत सुन्दर गीत लिखे। इन गीतों में विसंगतियों के चित्र उभरे। जीवन संघर्ष का एक अनूठा पहलू किंचित दार्शनिक झलक देता हुआ सा इसमें प्रकट हुआ, विशेष रूप से बच्चन के गीतों में। इसके अतिरिक्त इन गीतों का विषय प्रकृति, प्रेम, राष्ट्रीयता, मानवता, वेदना, ओज और प्रहार आदि थे। जहाँ तक इन गीतों की संवेदना का प्रश्न है तो इसमें अनुभूतिप्रवणता अधिक थी।

8.4.2 छायावादोत्तर कविता का प्रगतिवादी स्वर

प्रगतिवादी प्रवृत्तियाँ केवल कविता में प्रकट न होकर समस्त साहित्यिक विधाओं में प्रकट हुई। सन् 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ का लखनऊ में प्रथम अधिवेशन हुआ। प्रगतिवादी कवि मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित थे। उनके लिए शोषित वंचित जन का आर्थिक सामाजिक मुक्ति का प्रश्न महत्वपूर्ण था। अपनी कविता को उन्होंने इस मुक्तिचेतना का पैरोकार बनाया। छायावादोत्तर दौर की प्रगतिवादी और प्रयोगवादी कविताओं के सन्दर्भ में एक तथ्य की समानता मिलती है। इन दोनों धाराओं में कवियों ने सचेतन रूप से छायावादी प्रवृत्तियों के प्रभाव को अस्वीकार किया। प्रगतिवादी कवियों ने अपने बदले हुए संघर्षधर्मी काव्यबोध के निकट छायावादी ढंग की भाषा की अनुपयुक्तता समझी, अतः अपने ऐसे परिवर्तित काव्य विषयों के लिए उन्हें व्यापक जीवन से जुड़ी हुई भाषा अनुकूल लगी। वस्तुतः यह काव्य भाषा वंचित मनुष्य के जीवन संघर्ष की कठिन दुनिया में अपनी प्रतिबद्धता के साथ प्रवेश कर रही थी और सौन्दर्य प्रतिमान बदल रहे थे। ये श्रम के जीवन से उभरते हुए सौन्दर्यबोधीय मूल्य थे। इस प्रकार प्रगतिवादी कविता ने अपने लिए जो मूल्य स्थिर किये वे प्रायः सर्वहारा यानी किसान मजदूर जनता की आर्थिक-सामाजिक मुक्ति की पक्षधरता, समानतामूलक समाज का स्वप्न, सक्रिय सामाजिकता और मैत्रीभाव, जनता के संघर्ष की अभिव्यक्ति और उसकी शक्ति का चित्रण आदि थे।

8.4.3 प्रयोगवाद

नई कविता के सन्दर्भ में सबसे ज्यादा चर्चा प्रयोगवाद की हुई है तथा कुछ आलोचकों ने नई कविता को प्रयोगवाद का ही विकास माना है। यहाँ एक तथ्य समझ लेना चाहिए कि 'प्रयोगवाद' से नई कविता का इस प्रकार का सम्बन्ध मान लेने पर इसके भीतर निहित दो विपरीत स्वरों का

विश्लेषण संभव नहीं हो सकेगा। इसके अतिरिक्त प्रयोगवाद की चर्चा कविता के संरचना विषयक प्रयोगों के सन्दर्भ में अधिक हुई है। अतः नई कविता को काव्यभाषा सम्बन्धी बदलाव के सन्दर्भ में समझने की स्थितियाँ बन जाती हैं। 'तारसप्तक' के सम्पादक अज्ञेय ने 'प्रयोग' शब्द का उपयोग कविता के रचनात्मक नवोन्मेष के सन्दर्भ में किया। वे भाव और भाषा की नवीनता के साथ-साथ इस प्रकार की नवीन संरचनाओं के अनुभावन या कि संप्रेषण के प्रश्न को भी उठा रहे थे। इस तरह 'तार सप्तक' में संग्रहीत कवियों की रचनाओं के सम्बन्ध में अज्ञेय के वक्तव्य की प्रातिनिधिकता मानी गई और 'प्रयोग' के प्रभाव की व्याप्ति समझकर उसे कविता के स्वर का प्रभावी अनुशासक मान लिया गया। अन्यत्र भी हम देख चुके हैं कि 'तारसप्तक' में संग्रहीत कवियों में सामाजिक सरोकार, रचनादृष्टि और संवेदना में परस्पर पर्याप्त अंतर था। यह अंतर इसी प्रकार नयी कविता के भीतर भी कायम रहा। इन्हें परस्पर दो विरोधी प्रवृत्तियों के रूप में पहचाना गया। 'नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' में मुक्तिबोध ने लिखा है कि 'नई कविता में अनेक अवधारणाएं तथा अनेक वैयक्तिक दृष्टियाँ काम कर रही थीं'। (मुक्तिबोध, नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र)

अज्ञेय ने प्रयोग को दोहरा साधन कहा। इसमें शामिल कवियों को उन्होंने 'राहों के अन्वेषी' कहा है। प्रयोग को जो दोहरा दायित्व निभाना था वह क्रमशः इस प्रकार था- (1) नई वास्तविकता को उसकी जटिलता में प्रवेश कर समझना तथा (2) उस वास्तविकता में निहित आशयों की अभिव्यक्ति के लिए सक्षम नयी अर्थ भंगिमाओं वाली भाषा की तलाश करना। इस प्रकार इस प्रयोगधर्मिता का बीज शब्द बन कर जो शब्द उभरा वह था 'अन्वेषण'। आगे चलकर विशेष रूप से अज्ञेय की कविता में इस 'अन्वेषण' को हम अतिरिक्त गरिमा के साथ प्रतिफलित होते देखते हैं। 'तारसप्तक' में संग्रहीत कवियों के स्वर की पहचान करते हुए हमने देखा कि प्रयोगधर्मिता का उनके लिए अपना भिन्न अर्थ है। वे सभी अपने रचना स्वभाव के अनुसार चले हैं तथा उनमें से अनेक का झुकाव समाजवादी विचारधारा के प्रति है। इसके अतिरिक्त हमें विशेष रूप से 'तारसप्तक' की कविताओं में मध्यवर्गीय अनुभवों पर निर्भरता दिखाई देती है। यहीं से कवि की वह आत्मोन्मुखता समझी जा सकती है जिसका कारण विसंगतियों को गहराता हुआ वह सामाजिक अलगाव है जो सबसे ज्यादा शहरी मध्यवर्ग के अनुभव में आता है। छायावादी रूमानियत का अतिक्रमण करने के लिए प्रयोगवादी कवियों की कविता में बौद्धिकता का सन्निवेश दिखाई देता है। इस बौद्धिकता ने उनकी यथार्थ दृष्टि को तीखा किया। इसके कारण वे कवि अपने संक्रान्त समय के जटिल अनुभवों का साक्षात्कार संभव कर पाये तथा उसमें निहित विद्रूप को उधेड़ सके। यहाँ हम 'तारसप्तक' में संग्रहीत अज्ञेय की 'शिशिर का राकानिशा' शीर्षक कविता की ये पक्तिंया देखें : **वंचना है चांदनी सित/झूठ वह आकाश का निरवधि गहन विस्तार/शिशिर की राकानिशा की शांति है निस्सार/निकटतर- धंसती हुई छत, आड़ में निर्वेद/मूत्रसिंचित मृत्तिका के वृत्त में/तीन टांगो पर खड़ा नतग्रीव/धैर्यधन गदहा।** (तारसप्तक-संपा, अज्ञेय) इस प्रकार हम यहाँ शुद्ध तत्सम की शब्द भंगिमाओं द्वारा यथार्थ का

विद्रूप उद्धाटित होते देखते हैं। छायावादी कविता में रचनात्मकता को उभारने वाले शब्द यहाँ उस पूरे ऐश्वर्यमय बिंब को झूठ बता रहे हैं। अज्ञेय ने संक्रांत समय के बोध को कई तरह से देखा है। आधुनिक मनुष्य के मन और चेतना पर ऐसा समय एक भारी दबाव की तरह था। मूल्य संक्रमण की टकराहटें अलग थीं कहीं विद्रोह था तो कहीं कुण्ठा, कहीं प्रणयानुभूति की मांसलता के दबाव से उभरा आवेग तो कहीं संशय और पलायन। इस प्रकार इन कवियों के अन्तर्द्वन्द्वों के कई रूप थे। प्रयोगवादी कवियों में शब्दान्वेषण की प्रवृत्ति प्रमुख थी। प्रचलित शब्दों का नया उपयोग भी इनके विधान में था। डॉ. जगदीश गुप्त ने लिखा भी कि- 'आधुनिक कविता की भाषा खड़ी बोली केवल 50-60 वर्ष पुरानी है किन्तु कुछ कारणों से उसका दायित्व देशगत चेतना की उस विधा की अभिव्यक्ति करना हो गया है, जो उसकी अपेक्षा कहीं अधिक विकसित हो गई। (नयी कविता: डॉ. जगदीश गुप्त)।

अतः हम देखते हैं कि प्रयोगवादी कविता के लिए प्रयोग और अन्वेषण के साथ 'शब्द' का महत्व भी प्रमुख होकर सामने आया, बल्कि अन्वेषण धर्मिता की एक प्रमुख दिशा के रूप में सामने आया है, जो क्रमशः इस प्रकार है-

4. भाषा के रचनात्मक सामर्थ्य का अन्वेषण।

4. शब्दों की अर्थसंभावना की खोज।

4. शब्दों के अंतराल में गर्भित मौन का सृजनात्मक उपयोग।

4. जाने-पहचाने शब्दों की नयी अर्थ छवियों की खोज।

8. बहुआयामी जीवन के विस्तार में शब्दों का उनकी वैविध्यमयी अर्थक्षमता के साथ उपयोग।

अभ्यास प्रश्न: एक

प्रश्न 1: रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

तार सप्तक का प्रकाशन वर्ष .... है।

प्रयोगवाद का प्रवर्तक .... को माना जाता है।

प्रगतिवाद का सम्बन्ध .... विचारधारा से है।

'नई कविता और अस्तित्ववाद' शीर्षक किताब के लेखक .... हैं

प्रश्न 2: तीन या चार पक्तियों में उत्तर दीजिए।

क) छायावाद से छायावादोत्तर कविता को अलगाने वाली काव्य प्रवृत्ति के विषय में बताइए।

....

....

....

ख) 'प्रयोग' को दोहरा साधन किसने कहा है? इससे क्या अभिप्राय है।

....

....

....

ग) 'दूसरा सप्तक' और 'तीसरा सप्तक' में संकलित कवियों के नाम बताइए।

....

....

....

....

प्रश्न 3: सही और गलत लिखिए

क) प्रगतिशील लेखक संघ का प्रथम अधिवेशन लखनऊ में सम्पन्न हुआ था।
ख) 'तारसप्तक' में संकलित कवियों में हरिनारायण व्यास हैं।
ग) प्रगतिवादी कविता का सम्बन्ध किसान मजदूर जनता के मुक्ति संघर्ष से है।

प्रश्न 4: पाँच या छः पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

क) नई कविता का स्वरूप स्थिर करने में सप्तकों की भूमिका पर प्रकाश डालिए।

ख) प्रयोगवादी कविता की अन्वेषण धर्मिता पर प्रकाश डालिए।

8.4 नई कविता की प्रवृतियाँ

हमने देखा है कि अनेक आलोचकों ने नई कविता को प्रयोगवाद का विस्तार माना है किंतु उसके निकट आकलन के बाद यह तथ्य सही नहीं लगता। नई कविता के भीतर एक ओर

हम प्रयोगवादी कविता की भाषिक और अन्तर्वस्तुपरक नवीनता के अतिरिक्त आग्रह का स्थगित होना लक्ष्य करते हैं तो दूसरी ओर प्रगतिवादी कविता की वैचारिकी का अधिक सर्जनात्मक प्रतिफलन भी देखते हैं। 'नई कविता' का अभ्युदय 'दूसरा सप्तक' के प्रकाशन के साथ माना जाता है। नन्दकिशोर नवल ने उल्लेख किया है कि- दूसरा सप्तक के प्रकाशन के बाद अज्ञेय ने अपने एक रेडियो साक्षात्कार में सप्तकीय कविता के लिए 'नई कविता' नाम की प्रस्तावना की (बीसवीं सदी का हिन्दी साहित्य: संपा, डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी)

नई कविता की अन्तर्वस्तु के विषय में एक मान्यता यह भी मिलती है कि इसका मुख्य स्वर अस्तित्ववादी है अर्थात् व्यक्ति स्वातंत्र्यवादी है। डॉ. रामविलास शर्मा ने नई कविता के भीतर अस्तित्ववादी प्रवृत्तियों का प्रतिफलन लक्षित किया तथा इसकी कठोर आलोचना की। मुक्तिबोध की कविताओं पर भी उन्होंने अस्तित्ववाद का गहरा प्रभाव देखा है तथा उनमें समाजवादी दृष्टि की स्पष्ट और मजबूत पक्षधरता का अभाव माना। नई कविता के सन्दर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा ने लक्षित किया कि- 'हिन्दी के अधिकांश नई कविता लिखने वालों का हाल रोकांते जैसा है। ऊब, ऊबकाइ, अकेलापन, त्रास, भीड़ में अजनबीपन का अहसास होने की समस्या से परेशानी आदि-आदि लक्षण इनमें भी मिलते हैं। . . . . सार्त्र के नायक रोकांते को हर चीज थुलथुल, निर्जीव, लिजलिजी मालूम होती थी। हिन्दी के अस्तित्ववादी कवि आत्मवत् सर्वभूतेषु देखते हुए उसी प्रकार संसार और उसमें सजीव-निर्जीव पदार्थों का वर्णन करते हैं।' (डॉ. रामविलास शर्मा: 'नयी कविता और अस्तित्ववाद') . इस प्रकार रामविलास शर्मा ने मार्क्सवादी विचारधारा के केन्द्र से नई कविता के कवियों की व्यक्तिवादिता को चरम पर जाकर देखा और उनके खण्डित इतिहास बोध और अस्तित्ववादी प्रवृत्तियों की आलोचना की। यद्यपि अज्ञेय जैसे कवि पर अस्तित्ववाद के ऐसे विघटनकारी अर्थ प्रभावी नहीं थे। कार्ल यास्पर्स जैसे विचारकों का प्रभाव उन पर अधिक था और वे व्यक्तित्व की खण्डित स्थिति से ज्यादा आत्मपर्याप्त सर्जनात्मक इकाई की बात करते थे और उसी अर्थ में उसकी सामाजिक भूमिका पर जोर देते थे। यह देखा गया कि मानव अस्तित्व को जानना-सहेजना नई कविता का केन्द्रीय आग्रह है। इस प्रकार 'अस्तित्ववाद' का इकहरे ढंग का प्रभाव' नई कविता' पर नहीं हैं किन्तु उसके भावबोध पर इसके प्रभाव से इन्कार नहीं किया जा सकता। यहाँ से हम क्रमशः नई कविता की प्रवृत्तियों की पहचान करें। इस प्रकार नई कविता के भीतर दो प्रमुख प्रवृत्तियाँ पाई गई। एक, जिसमें व्यक्तिनिष्ठता प्रधान थी। यहाँ अभिव्यक्त मनुष्य की अन्तःप्रक्रियायें और संघर्ष एक संक्रान्त जटिल समय के अनुभवों से प्रभावित थे। दूसरे काव्यधारा पर मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव है। समाजोन्मुखता इस कविता के लिए जरूरी तत्व है। वस्तुतः कविता का यह प्रगतिशील स्वर है जो 'तारसप्तक' के बाहर तो मौजूद था ही 'तारसप्तक' में भी मौजूद था। यही नहीं बल्कि 'दूसरा सप्तक' के दौर में भी उससे बाहर के कवियों में ज्यादा सुसंगत ढंग से अभिव्यक्त हुआ। इस प्रकार इन दो अनुशासक प्रवृत्तियों के प्रभाव से 'नई कविता' में क्रमशः उभरने वाली विशेषताएं इस प्रकार थी।

व्यक्ति स्वातंत्र्य चेतना - नई कविता में इस आशय में हमें कई प्रयोग मिलते हैं। कुछेक बारीक अंतरों के साथ यही आत्मान्वेषण या कि व्यक्तित्व की खोज भी है। 'अनुभूति की प्रामाणिकता' में भी इसी आशय की ध्वनि है। मार्क्सवादी आलोचकों ने इसे यथार्थवाद विरोधी रचनादृष्टि की उपज माना है तथा रेखांकित किया है कि इसके भीतर व्यक्तिवादी रूझान काम कर रही थी। व्यक्ति केन्द्रिकता के ऐसे प्रभाव के कारण ही नई कविता की संवेदना में अनुभववादी प्रवृत्तियाँ सक्रिय हुई। 'भोगा हुआ यथार्थ' जैसे प्रयोग भी इसी भावबोध के निकट के है। मैनेजर पाण्डेय ने नई कविता की इस प्रवृत्ति की कड़ी आलोचना करते हुए लिखा कि ''गैर यथार्थवादी लेखक समाजवाद के विरोधी, जनता की आकांक्षा की उपेक्षा करने वाले और व्यक्तिवाद के सहारे पूंजीवाद के पोषक सिद्ध होते हैं . . . साहित्य को आत्माभिव्यक्ति का पोषक मानते हुए व्यक्तित्व की खोज को ही अपनी रचना का लक्ष्य मानते हैं। (साहित्य और इतिहास दृष्टि- मैनेजर पाण्डेय.)

अज्ञेय के लिए 'व्यक्ति स्वातंत्र्य' का अर्थ उसका संपृक्त सर्जनात्मकता में संभव होने का संघर्ष है। साही की चिन्तन भूमि में भी हम 'व्यक्ति स्वातंत्र्य' के प्रश्न को 'लघुमानव' जैसे प्रत्यय से संवरते देखते हैं। उन्होंने भी इस व्यक्ति को युगसंकट के सापेक्ष देखा है। इस प्रकार व्यक्ति स्वातंत्र्य चेतना के अलग-अलग रूप नई कविता के कवियों में प्रतिफलित हुए। विशेष रूप से अस्तित्ववादी वैचारिकी के प्रभाव भी कवियों में भिन्न-भिन्न ढंग से घटित होते दिखाई देते हैं। मोटे तौर पर हम यह कह सकते हैं कि कहीं यह अस्तित्वबोध संकट बोध के रूप में है, कहीं अस्मिता की खोज है तो कहीं अस्मिता के सर्जनात्मक संगठक तत्वों की तलाश का संघर्ष है।

अनुभूति की प्रामाणिकता - जैसा कि हमने देखा कि आत्मकेन्द्रिकता के सघन प्रभाव के कारण 'नई कविता' के कवियों ने 'अनुभूति की प्रामाणिकता' पर विशेष बल दिया। आलोचकों ने इसे ही लक्ष्य कर इस प्रकार की कविता को अनुभववादी कविता कहा है। मैनेजर पाण्डेय ने सन् 1951-52 से 60-61 के दौर में साहित्य की प्रधान प्रवृत्ति वैयक्तिकता और आत्मनिष्ठता मानी यद्यपि इस दौर की कविता में यथार्थवादी प्रवृत्ति भी मौजूद थी। किन्तु वैयक्तिकतावादी प्रवृत्तियों के फैलाव ने उसे प्रमुखता से उभरने नहीं दिया। 'अनुभूति की प्रामाणिकता के तर्क से उभरते यथार्थबोध तथा संवेदना को समाजवादी आलोचकों ने खण्डित या विच्छन्न माना। अनुभूति की प्रामाणिकता ने जीवनानुभवों के सामने आत्मबोध का वह सांचा रख दिया जिसकी सीमाएं थी। यहाँ से कवि ने यह अनुभव किया कि संक्रान्त और जटिल समय का यथार्थ उसकी अस्मिता को खण्डित कर कुंठा निराशा इत्यादि की ओर ढकेल देता है।

नई कविता के प्रखर प्रवक्ता लक्ष्मीकान्त वर्मा ने 'अनुभूति की प्रमाणिकता' को अनुभूति की ईमानदारी कहा है। उनके अनुसार यह व्यक्ति की स्वतंत्रता से सन्दर्भित सत्य का साक्षात्कार है। स्पष्ट है कि 'स्वविवेक' को वे कवि की सर्वोपरि शक्ति मानते हैं। जिसके द्वारा वह यथार्थ जगत से

अपनी संवेदना, अर्थ और भाषा का चुनाव करता है। वस्तुतः 'अनुभूति की प्रामाणिकता' में कवि की आत्मोन्मुखता ही सबसे ज्यादा ध्वनित है।

क्षणबोध - नई कविता के कवि के अनुसार यह क्षणबोध क्षणिकता का बोध नहीं है। वे यह भी उद्घाटित करते हैं कि इसे परम्परा या भविष्य से कटा हुआ निरपेक्ष या खण्डित समझना भी ठीक नहीं है। यह 'क्षण' कविता में 'सृजन' का क्षण है इसलिए रागात्मक और गरिमामय है। अज्ञेय ने इसकी 'अद्वितीयता' को बहुत महत्व दिया है। वस्तुतः सृजनात्मकता के कारण ही यह आलोकित और अद्वितीय हो उठता है। अन्यत्र अज्ञेय कहते हैं कि सृजनात्मकता की गरिमा से भरापूरा 'क्षण' मनुष्य को मुक्त करता है। इस प्रकार के क्षणबोध में वे भौतिक स्थूलता का तिरस्कार करते दिखाई देते हैं। अज्ञेय की इस कविता में ऐसे क्षणबोध का अर्थ इस प्रकार उद्घाटित हुआ है-

एक क्षण क्षण में प्रवहमान/व्याप्त सम्पूर्णता/इससे कदापि बड़ा नहीं था महा अम्बुधि /जो/पिया था अगस्त्य ने।/एक क्षण। होने का/अस्तित्व का अजस्र अद्वितीय क्षण। (अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या: रामस्वरूप चतुर्वेदी में)।

यथार्थोन्मुखता - नई कविता के अस्तित्ववादी प्रभाव के अन्तर्गत काव्य रचना करने वाले कवियों ने यथार्थ को 'निजता' के केन्द्र से देखा है। उनके लिए यथार्थ 'संकटबोध' के रूप में उपस्थित होता है। वे जटिल और संक्रान्त परिवेश के दबाव से त्रस्त मनुष्य के अकेलेपन यातना और पीड़ा का साक्षात्कार तो करते हैं किन्तु एक ओर तो वे ऐसे यथार्थ को वस्तुगत ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में न देखकर इतिहास से विच्छिन्न रूप में देखते हैं तथा दूसरे वे मनुष्य को इसके प्रति संघर्ष में प्रायः नहीं देखते। हम देखते हैं कि ऐसे भयावह यथार्थ के समक्ष उनका मनुष्य अपना 'अकेलापन' चुन लेता है और इसके द्वारा विभाजित और संत्रस्त पड़ी अपनी अस्मिता के अनुभवों को कहता-सुनता है। धर्मवीर भारती विजयदेवनारायण साही जैसे कवियों के यहाँ प्रायः ऐसे मनुष्य के अकेलेपन का साक्षात्कार मिलता है। लक्ष्मीकांत वर्मा के लिए नये कवि के समक्ष उपस्थित यथार्थ विषम और तिक्त है। उस परिवेश का सामना करते हुए उसे अपने अस्तित्व को संभालना है। अतः हम कह सकते हैं कि 'व्यक्ति की निजता' की धुरी मान कर चले कवियों और आलोचकों ने अपने भावबोध में एक तरफ तो व्यक्ति की स्वतंत्रता का पहलू महत्वपूर्ण माना है और परिवेश को ऐसे व्यक्ति से द्वन्द्व में देखा है, तो दूसरी ओर परिवेश से अलगाव के इर्द-गिर्द गहराते यथार्थ की समझ उन्हें ऐसे व्यक्ति के अकेलेपन का अनुभव देती है। अतः व्यक्ति स्वातंत्र्य के साथ यह अकेलापन लगभग एक नियति की तरह आ जुड़ता है। हम अन्यत्र देखेंगे कि व्यक्तिवादी रचना प्रवृत्तियों ने अपने आशय को लेकर चलने वाली रचनाओं को गहराई का काव्य कहा है और व्यापकता को अर्थात् मनुष्य की सामाजिक सम्बद्धता यानि व्यापकता को लेकर चली रचनाशीलता पर उथलेपन का आरोप भी लगाया है। यहाँ तक कि प्रेमचंद तक पर सतहीपन का आरोप लगाया है।

अब हमें नई कविता की आधुनिकतावादी प्रवृत्तियों के प्रतिरोधी पक्ष पर ध्यान देना चाहिए। मुख्य रूप से हमें मुक्तिबोध और शमशेर बहादुर सिंह की कविताओं में व्यक्ति स्वातंत्र्य की सामाजिक सम्बद्धता और मनुष्य की मुक्ति के संघर्ष से जुड़ कर चली अर्थ छवियाँ दिखाई देती हैं। मुक्तिबोध नई कविता में कल्पनाप्रवण, भावुकतापूर्ण वायवीय आदर्शवादी व्यक्तिवाद के विरुद्ध यथार्थवादी व्यक्तिवाद की बगावत देखते हैं। (नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, मुक्तिबोध,) अतः मुक्तिबोध व्यक्ति की जिस स्वतंत्रता की बात करते हैं उसमें यह देखा जा सकता है कि 'कांग्रेस फॉर कल्चरल फ्रीडम' (1950 में बर्लिन में उदित एक संगठन, जिसे शीतयुद्धीय राजनीति का सांस्कृतिक मूल्य निर्धारक माना जाता है) की प्रतिध्वनि नहीं है। इस तथ्य को ज्यादा अच्छी तरह से समझने के लिए हम चाहें तो एक रूपक का उपयोग कर सकते हैं। अस्तित्ववादी प्रभाव की आत्मकेन्द्रिकता की परवाह करने वाले कवियों के लिए मम और ममेतर के बीच का दरवाजा भीतर की ओर यानि 'मम' की ओर खुलता है, ममेतर में अवस्थित बहुत सारी चीजें सन्देहपूर्वक देखी जाती हैं जैसे वे 'मम' को निरर्थक या प्रदूषित कर देगी। मुक्तिबोध के लिए 'मम' की मुक्ति 'ममेतर' यानि समाज की मुक्ति से जुड़कर है। वे कहते भी हैं कि 'मुक्ति के रास्ते अकेले नहीं मिलते'। व्यक्ति स्वातंत्र्य को एक आदर्श मानते हुए मुक्तिबोध ने लिखा है कि- ''फिर भी वह मानव गौरव की आधारभूत शिक्षा है। व्यक्ति स्वातंत्र्य का प्रश्न जनता के जीवन से उसकी मानवोचित आकांक्षाओं से सीधे-सीधे सम्बन्धित है किन्तु व्यवहारिक रूप से देखा जाए तो समाज में ऐसी आर्थिक स्थिति और सामाजिक स्थिति पैदा हो गई है जिसके कारण व्यक्ति स्वातंत्र्य व्यक्ति केन्द्रिकता का ही दूसरा नाम रह गया है।'' (मुक्तिबोध रचनावली खण्ड-5)

इस प्रकार मुक्तिबोध ने व्यक्ति स्वातंत्र्य को प्रतिरोध से जोड़कर देखा है। यही नहीं बल्कि आधुनिकतावादी नई कविता के कवियों के क्षणबोध को भी चुनौती देते हुए वे लिखते हैं- ''केवल एक क्षण का उत्कर्ष करने के बजाय हमें लम्बी नजर फेंकनी होगी और वह सारा ताना बाना अंकित करना होगा जिससे वह समस्या एक विशेष काल और परिस्थिति में विशेष रंग और रूप में विकसित ग्रन्थिल हुई है। यह सब कार्य तथाकथित सौन्दर्यानुभूति से बाहर का कार्य है।'' (मुक्तिबोध, नई कविता का आत्मसंघर्ष)

8.5 नई कविता: संवेदना का स्वरूप

नई कविता की संवेदना में भी हम यथार्थवादी और यथार्थवाद विरोधी दृष्टि का अन्तर देखते हैं। अज्ञेय की कविता में संवेदना के विन्यास का आधार मूलतः वे व्यक्तिवादी या व्यक्तित्ववादी प्रवृत्तियाँ हैं जो यथार्थ को व्यक्ति के केन्द्र से देखती है और व्यक्ति की विशिष्ट निजता की बात करती है। कुछेक अन्तर के साथ व्यक्ति की विशिष्ट अस्मिता का बोध विजयदेव नारायण साही, धर्मवीर भारती, जगदीश गुप्त आदि कवियों में है। यही नहीं बल्कि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और रघुवीर सहाय पर उस दौर में अज्ञेय का घना प्रभाव था और वे उसी ढंग की कविताएं

लिख रहे थे, यद्यपि बाद में वे उस प्रभाव से बाहर आए। हम इसे क्रमशः देखें कि नई कविता में संवेदना के स्तर पर इन प्रवृत्तियों का कैसा प्रतिफलन है तथा किस अर्थ में यह संवेदना अपनी पूर्ववर्ती कविता से भिन्न और नई है।

आधुनिक भाव बोध - नई कविता के कवियों ने सचेत रूप से अपनी पूर्ववर्ती कविता की संवेदना को आधुनिक जीवन बोध के समक्ष पिछड़ी हुई बताया। वे अपने समय के यथार्थ की चुनौतियों को देख रहे थे। यह 'यथार्थ' कविता में रूपायित होने के लिए दबाव बना रहा था। कविता की पूर्वपीढ़ी से नई कविता की संवेदना की भिन्नता को व्यक्त करने के लिए हम अज्ञेय की 'कलंगी बाजरे की' जैसी कविता को देख सकते हैं। मुक्तिबोध ने 'आधुनिक भावबोध' को नई कविता की आत्मा कहा है वे लिखते हैं, ''विज्ञान के इस युग में उसकी दृष्टि यथार्थोन्मुख तथा संवेदनशील होती है। वह यथार्थ सम्बन्धों को ग्रहण कर यथार्थबोध द्वारा संवेदनात्मक प्रतिक्रियाएं करता है।'' (मुक्तिबोध, नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र,)

आधुनिक भावबोध के बारे में नई कविता के कवियों को हम अनेक बार यह कहते सुनते हैं कि यह संक्रान्त समय का बोध है। अस्तित्ववादी दर्शन के प्रभाव से जुड़े कवि इसे भयानक मूल्य ध्वंस के रूप में अनुभव करते हैं। वे एक ऐसे देश काल का अनुभव करते हैं जिसमें आदर्शों, मूल्यों, मान्यताओं, परम्पराओं और आस्थाओं की चूलें हिला देने वाली पतनशीलता है। 'अंधायुग' में धर्मवीर भारती 'मिथक' में जिस आधुनिक बोध को रूपायित कर प्रस्तुत करते हैं, वह यही है। नई कविता के इन कवियों के सामने आत्यंतिक रूप से विसंगत अनुभव थे। मूल्यविचलन के सन्दर्भों ने उन्हें 'विडम्बनाबोध' दिये। इस प्रकार आधुनिक भावबोध एक प्रकार से उनके लिए 'संकटबोध' के रूप में प्रस्तुत हुआ। अब हम इसके परिप्रेक्ष्य को देखे तो पायेंगे कि यह भारत की आजादी के बाद का समय है। एक तरफ आर्थिक विकास की पूंजीवादी प्रणालियाँ जारी हो रही थीं और इसके चलते शहरों, महानगरों की वे संरचनाएँ उभर रही थीं जिनमें नये सामाजिक सम्बन्ध थे। पूंजीवादी प्रभाव के कारण सामाजिक विच्छिन्नता का समाज उभर रहा था। संवेदनशील मनुष्य पर सबसे बड़ी चोट यह थी कि उसके सामने एक परायेपन से भरी दुनिया थी। मनुष्य और मनुष्य के बीच सम्बन्धों को जटिल बनाने वाली वर्ग स्थितियाँ चतुर्दिक थीं। कई बार कवि ने इस परिदृश्य से निजी पराजय या निष्फलता को अनुभव किया और उसमें अपने समय के मनुष्य की निष्फलता को व्यंजित करना चाहा। नई कविता में अभिव्यक्त रिक्तता, व्यर्थताबोध या परायापन की भूमिका यही है। इस परिदृश्य को समझकर रामदरश मिश्र ने लिखा है कि ''समाज और व्यक्ति आज की अपेक्षा अधिक गहरे अभावों से गुजरा था किन्तु सामाजिक सम्बन्धों की ऐसी विच्छिन्नता, व्यक्तिमन में ऐसी अकुलाहट और मूल्यों के प्रति ऐसी उदासीनता शायद ही कभी आई थी। . . . . वास्तव में यांत्रिक सभ्यता पूरे विश्व को प्रभावित कर रही है, किन्तु वह देशगत परिस्थितियों से कटी हुई कोई सिद्ध सत्ता नही है। . . . . . हम अपने अनुभवों से यह पा रहे हैं कि इस नवस्वतंत्र देश की यात्रा भटक गई है। स्वतंत्रता प्राप्ति के आरम्भिक वर्षों में उभरने वाली

स्थितियाँ भविष्य की कुछ सम्भावनाएँ लिए हुए थी। किन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, मोहभंग होता गया। जिस सामाजिकता और मूल्य का हम सपना देखते आये थे वह कभी उभरा ही नहीं और रहे-सहे मूल्य भी बुरी तरह टूटते गए।'' (आज का हिन्दी साहित्य: संवेदना और दृष्टि: रामदरश मिश्र) रामदरश मिश्र ने अस्तित्ववादी प्रवृत्तियों के अधीन होकर देखे जाते हुए इस विसंगत यथार्थबोध की आलोचना भी की है। उन्होंने माना है कि यह व्यापक यथार्थबोध नहीं है बल्कि वैयक्तिक बोध के रूप में देखा गया विच्छिन्न यथार्थ है। यही हम मुक्तिबोध को देखें। वे आधुनिक भाव बोध के लिए सच्चे आधुनिक भावबोध जैसे वाक्य का प्रयोग करते हैं। उनके लिए इसका अर्थ यथार्थ को उसकी समग्रता में जानना है और समग्रता को वे इस 'यथार्थ के परस्पर अन्तःसम्बन्धों को उसकी गहराई समेत' मानते हैं (नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, मुक्तिबोध)। जीवन का वैविध्य इस प्रकार प्रस्तुत हो कि उससे हम कोई निष्कर्ष निकाल सकें। (वही)

स्पष्ट है कि मुक्तिबोध ने 'आधुनिक भावबोध' को उसमें निहित अग्रगामी गतिशीलता के अर्थ में देखा है।

मध्यवर्गीय जीवनानुभवों की प्रधानता - नई कविता के केन्द्र में मध्यवर्गीय जीवन के अनुभव हैं। देखा जाए तो प्रायः ये शहरी या कस्बाई जीवन के अनुभव हैं। शहरी जीवन प्रायः मानवीय सामूहिकता का जीवन नहीं होता। पूंजी का चरित्र व्यक्तिवादिता को बढ़ावा देना है। इस कारण मनुष्य में सामाजिक सम्बन्धों में स्वार्थ या आत्मकेन्द्रिकता के कारण जड़ता यथास्थितिवादिता ही नहीं कभी-कभी प्रतिगामिता भी आ जाती है। नई कविता मध्य वर्ग की कविता है। स्वाधीनता के लिए संघर्ष में मध्यवर्ग की एक प्रगतिशील भूमिका भी थी। जिसके अन्तर्गत आजादी के अर्थ में साम्राज्यवाद सामंतवाद से मुक्ति का अभिप्राय भी शामिल था। मध्यवर्गीय युवाओं ने गहरी छटपटाहट के साथ इस आजादी से अपनी उम्मीदों को भंग होता अनुभव किया। इस तथ्य को हम यदि वस्तुपरक ढंग से देखेंगे तो पायेंगे कि वे व्यापक जीवन में क्रान्तिकारी बदलाव के लिए जरूरी संघर्ष से कटे हुए व्यक्तियों का मोहभंग था जिनकी इस प्रकार की उम्मीदों में वैयक्तिक आकांक्षाओं में पूरा होने का भाव प्रबल था। कई बार तो इस प्रकार की वैयक्तिक रूझानों वाले कवियों ने निष्फलता या मोहभंग को व्यक्तिवाद के लगभग अतिरेकी छोर पर जाकर देखा और व्यक्त किया, इस सन्दर्भ में यह उद्धरण देखें- 'ओ मेरे अफसर/तुम्हारी एक लाइन ने/मेरे जीवन की कविता को निरर्थक कर दिया/बीच ज़िन्दगी में मैं एकाएक/विधवा हो गया' (तीसरा सप्तक, संपा- अज्ञेय)

हम देख सकते हैं कि इस कविता में आत्मग्रस्तता का ही एक रूप व्यंजित है। नई कविता की प्रवृत्तियों को समझने के क्रम में हमने देखा कि अनुभूति की प्रामाणिकता का आग्रह उसके लिए नियामक तत्त्व की तरह हैं। इस प्रकार स्वाभाविक रूप से कविता निजी अनुभवों पर निर्भर हो जाती है। दूसरी ओर नई कविता के अधिकांश कवि मध्यवर्ग के है। अतः उनकी कविता में मध्यवर्गीय अनुभव प्रमुखता से अभिव्यक्त होते हैं। अन्यत्र हमने जिस विडम्बनाबोध की

अभिव्यक्ति नई कविता में लक्षित है उसके मूल में भी अधिकांशतः ये मध्यवर्गीय जीवन के अनुभव ही हैं।

इस प्रकार नई कविता के भीतर व्यक्ति केन्द्रिकता के इस छोर से यथार्थ की वे जटिलताएं प्रकट हुई जिनमें कवि की अपनी टकराहट, संघर्ष और संकट के अनुभव थे। अपनी प्रतिभा के द्वारा कवि ने इन्हें युग संकट के रूप में स्फीत करके प्रस्तुत किया। जिसे यहाँ लघुमानव का बोध कहा गया वस्तुतः वह वैयक्तिक अनुभवों का वह रूप था जिसमें समाज और सामाजिकता के घटित को मिलाकर प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई थी। गिरिजा कुमार माथुर की इस कविता में देखें- **हम सब बौने हैं/मन से मस्तिष्क से भी/भावना से, चेतना से भी/बुद्धि से, विवेक से भी/क्योंकि हम जन हैं, साधारण हैं/हम नहीं हैं विशिष्ट/क्योंकि हर ज़माना हमें चाहता है/बौने रहें।//हमको हमेशा ही/घायल भी रहना/सिपाही भी रहना है/दैत्यों के काम निभा/ बौने ही रहना है** (जो बंध नहीं सका, गिरिजा कुमार माथुर)

यह परिवेश की जटिलता के दबाव में आये मनुष्य का अनुभव है। यहाँ जीवन एक संकटबोध के रूप में उपस्थित है। हमें नई कविता में सक्रिय यथार्थवादी और आधुनिकतावादी प्रवृत्तियों के अन्तर को भी समझते हुए चलना है इसलिए हम यह अवश्य देखें कि मुक्तिबोध के यहाँ मध्यवर्गीय मनुष्य का रास्ता संघर्ष का है। वह स्वयं को जनता की आर्थिक-सामाजिक मुक्ति के लक्ष्य से संयुक्त करता है और इसके लिए अपनी व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों से संघर्ष करता है। शमशेर ने भी भावबोध और सौन्दर्यबोध को व्यापक जनता के जीवन से जुड़कर अर्जित करने का संघर्ष किया है। यह प्रगतिशील कविता का स्वर है। अज्ञेय के यहाँ व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों का प्रतिफलन वैसे अवरूद्ध या यथास्थितिवादी रूपों में नहीं है न ही मध्यवर्ग की दिशाहारा होने की नियति को वे अन्तिम मानते हैं। उनके यहाँ भी मनुष्य की सामाजिक सोद्देश्यता का संघर्ष है किन्तु उसकी दिशायें अन्तर्मुखी हैं।

नगरीय बोध का प्रतिफलन - नई कविता के संवेदनशील कवियों ने शहर को एक अमानुषिक तत्व के रूप में अनुभव किया है। उद्योग, प्रौद्योगिकी, मशीनें, कारखानें, सड़कें, अट्टालिकाएं जिस सुविधाजनक रिहाइशी स्थल का स्वरूप पैदा करती है। उसमें मनुष्यों के मानवीय गुण नष्ट कर देने की स्थितियाँ हैं। अज्ञेय ने भी इसे प्रविधि के अन्तर्गत देखते हुए प्रकृति को इसके विरुद्ध रखना चाहा है। वे मनुष्य की मानवीय स्वाभाविकता की रक्षा चाहते हैं। प्रविधि से उभरते विकास ने मानवीय मूल्यों का क्षरण किया है। नई कविता के कई कवियों को हम प्रकृति, गांव, पहाड़ आदि के प्रति गहरे मोह में पड़ा हुआ देख सकते हैं। छायावाद के प्रकृति प्रेम की प्रवृत्ति से अलग नई कविता में कवि इसे अपने समय की बड़ी चुनौती के रूप में लेते हुए दिखाई देते हैं। उनका कहना है कि पूंजी प्रौद्योगिकी के ऐसे विकास के सम्मुख आधुनिक मनुष्य पलायन का रास्ता चुन कर किसी नीरव एकांत को नहीं चुन सकता। उसे इनके बीच में रह कर मानवीय सम्बन्धों मूल्यों

हार्दिकताओं को बचाने का संघर्ष करना पड़ेगा। इसलिए वह शहर केन्द्रित संस्कृति के क्षरण के प्रति आलोचनात्मक है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की इस कविता में आये प्रश्न में हम इस आलोचना की ध्वनि सुन सकते हैं। यही कहीं एक कच्ची सड़क थी/जो मेरे गांव को जाती थी/अब वह कहाँ गयी?/किसने कहा उसे पक्की सड़क में बदल दो/उसकी छाती बेलौस कर दो/स्याह कर दो यह नैसर्गिक छटा/विदेशी तारकोल से (बांस का पुल- सर्वेश्वर दयाल सक्सेना,)

बौद्धिकता - नई कविता के आलोचकों ने रूमानियत के विरोध को नई कविता की प्रवृत्ति माना है। इस सन्दर्भ में हम देखते हैं कि नई कविता की रूमानियत छायावादी कविता से भिन्न अवश्य है किन्तु यह पूरी तरह से रूमानियत या भाववादिता से मुक्त नहीं है। रामविलास शर्मा ने तो इससे प्रतिफलित नई रूमानियत को समझते हुए इसे छायावादोत्तर छायावादी कविता कहा है। वस्तुतः नई कविता संवेदना की बौद्धिक बुनावट की कविता है। नई कविता का कवि ‘मोहभंग’ आदि स्थितियों को कविता में रूपायित करने के लिए बौद्धिकता का आश्रय लेता है। कई बार हम देखते हैं कि इस बौद्धिकता का सम्बन्ध उसकी यथार्थवादी दृष्टि से न होकर भाववादिता से ही है। विशेष रूप से अपने कहने के ढंग को बौद्धिकता के द्वारा वह नया तेवर देता दिखाई देता है। बौद्धिकता कई बार उसकी रचनात्मक मदद करती हुई भी दिखाई देती है। अनुभवों की सघनता, रचनात्मक तनाव या विडम्बना को वह इसके द्वारा नये रूप में निर्मित कर पाता है और भाषा की प्रचलित रूढ़ियों को तोड़कर अनुभव के नये क्षेत्रों में प्रवेश करता दिखाई देता है। जहाँ कहीं इस बौद्धिकता के साथ यथार्थवादी दृष्टि का संयोग होता है कविता ज्यादा अर्थ समृद्ध होती दिखाई देती है किन्तु ऐसा न होने पर वह शाब्दिक चमत्कार होकर रह जाती है।

रागात्मकता - नई कविता ने जिस मनुष्य को परिभाषित किया है उसे मनुष्य के उस मानवीय गुणों को आधार देने वाले रागात्मक संसार की आकांक्षा है। यह अलग प्रश्न है कि कुछ कवियों को इस आकांक्षा के असंभव होने का बोध हुआ है। तो कुछ कवियों को लगा है कि ऐसे रागात्मक मानवीय संसार की रचना के लिए संघर्ष का दायित्व भी मनुष्य का है और कविता को ऐसे संघर्ष के साथ होना चाहिए। नई कविता के रागात्मक क्षेत्र मानवीय सम्बन्ध हैं, प्रेम और प्रकृति है, और रूढ़ियों दुहरावों से मुक्त होती हुई काव्य भाषा है। अज्ञेय के यहाँ सत्य या यथार्थ ‘रागदीप्त’ होकर सार्थक होता है। नई कविता के कवियों की आधुनिकता ‘रागात्मकता’ को भी बौद्धिक संस्पर्श के साथ नया करती है। अज्ञेय का मानना है कि विघटनकारी परिस्थितियों में भी मानवीय अस्मिता को उसकी आंतरिक रागानुभूति ही सुरक्षित रख सकती है। इस प्रकार ‘रागात्मकता’ का नया अन्तर्गठन नई कविता के लिए जरूरी हो उठता है। यह रागात्मकता अपने समय की बौद्धिक उपलब्धियों से यथा विज्ञान, दर्शन, राजनीति, समाज चिन्तन आदि से निरपेक्ष नहीं है। युगबोध को निर्मित करने वाली इन सरणियों को भी उसे पहचान कर चलना है। साथ ही आदर्शवादी रूमानियत से अलग यथार्थवादी सरोकारों के साथ कविता की अन्तर्वस्तु और शिल्प को निर्मित करने की चुनौती भी है। इस नई रागात्मकता की छवियाँ अनेक हैं। इसे विजयदेव नारायण साही की इस कविता में देखें-

मृत्यु के सुनसान दर्पण में प्रतिबिम्बित/केवल यह फुफकारता हुआ/अग्निकमल बच रहता है/यही परम्परा है, यही क्रान्ति है/यही जिजीविषा है/यही आयु है यही नैरन्तर्य है। (समकालीन काव्य यात्रा: नन्द किशोर नवल)

इस प्रकार मुक्तिबोध ने क्रान्तिकारी जनसंघर्षों में जुटे जन को गहरी आत्मीयता और प्यार से सम्बोधित किया। रागात्मकता के ये रूप नई कविता में कई बार कविता में सहज ही पहचाने जा सकें ऐसे सरल रूपों में नहीं हैं। अपनी पक्षधर काव्यचेतना के स्वभाव के अनुरूप कवियों ने इसे कविता की अन्तर्रचना में शामिल किया है।

प्रकृति - नई कविता के कवि अज्ञेय के आरम्भिक काव्य में हम छायावादी कवियों जैसा प्रकृति का सम्मोहन भी देख सकते हैं। आधुनिक भावबोध के साथ बदलती हुई उनकी चेतना प्रयोगवादी कविता के दौर में प्रकृति का इस प्रकार तिरस्कार करती है कि जैसे ऐसा करते हुए वह कहीं न कहीं छिछली ढंग की भावुकता रूढ़िवाद या प्रतीकों के रूढ़ प्रचलित रूपों से मुक्त हो सकती है। इस सन्दर्भ में हम उनकी 'शिशिर की राकानिशा' जैसी कविता को देखें जिसमें वे चांदनी को वंचना कहते हैं। एक अन्य कवि की कविता में चांदनी को खोटे सिक्के की तरह कहा गया है, जिसमें चमक है पर खनक गायब है। इस प्रकार यहाँ पूर्व प्रतिमानों को ही नहीं पूर्व भावबोध को भी छोड़ा जा रहा था। नई कविता तक आते-आते कवि ने प्रकृति को अपनी मुक्त आकांक्षा चिंतन और संघर्ष से जोड़ा। अन्तर्वस्तु के क्षेत्र में अब उसकी मनोरमता मात्र नहीं थी बल्कि उसका वह चेतन विकसित रूप था जो मनुष्य की चेतना को तमाम जटिलताओं के बावजूद संघर्ष में बने रहने की शक्ति दे रहा था। प्रकृति के स्वायत्त अनदेखे रूप भी कविताओं में आये, विशेष रूप से अज्ञेय की कविता में प्रकृति मानवीय स्निग्धता धारण करती दिखाई देती है। देखा जाए तो जिस नगरीकरण, बढ़ती यांत्रिकता, असामंजस्य और विषमता के अनुभव कवि के यथार्थबोध का अंग बने उन्हें स्वभावतः प्रकृति के लिए कोई जगह नहीं छोड़नी थी किन्तु अज्ञेय, भवानी प्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता मे ही नहीं रघुवीर सहाय और धर्मवीर भारती में भी प्रकृति से जुड़े बोध ने अपने नयेपन के साथ प्रवेश किया। इन कविताओं में प्रकृति छायावादी प्रकृति से बहुत भिन्न रूपों में है भवानी प्रसाद मिश्र की कविता में इसे देखें- **बूंद टपकी एक नभ से/ये कि जैसे आँख मिलते ही/झरोखा बंद हो ले और नुपुर ध्वनि, झमक कर/जिस तरह द्रुत छंद हो ले/उस तरह बादल सिमट कर/चंद्र पर छाये अचानक/और पानी के हजारों बूंद/तब आये अचानक** (दूसरा सप्तक)

भवानी प्रसाद मिश्र की इस कविता में नई आँख से देखी जाती हुई वर्षा है। कई बार नगर की संक्रान्त अमानुषिक स्थितियों के बरक्स प्रकृति को रखकर कवि ने अपने संवेदनात्मक जुड़ावों को व्यक्त किया है। इस छोर से उसकी संवेदना का विस्तार होता है।

अभ्यास प्रश्न: दो

प्रश्न 1: रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

क) ‘नदी का द्वीप’ या ‘दीप अकेला’ जैसी अज्ञेय की कविताओं का केन्द्रीय आग्रह .... है।

ख) नई कविता में कवि के अनुसार यह क्षणबोध .... का बोध नहीं है।

ग) लक्ष्मीकांत वर्मा के अनुसार नये कवियों के समक्ष उपस्थित यथार्थ.................... है।

प्रश्न 2: पाँच या छः पंक्तियों में उत्तर दीजिए-

क) नई कविता की मूल प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।

ख) नई कविता की संवेदना की विशेषताएँ बताइए।

प्रश्न 3: दो या तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए-

क) नगरीय जीवन बोध से क्या तात्पर्य है?

....
.

....
.

ख) ‘क्षणबोध’ से क्या अभिप्राय है?

....
.

....
.

ग) ‘अस्तित्ववाद’ का प्रभाव नई कविता के किन कवियों पर है।

....

....

8.6 नई कविता: भाषा और रचनात्मक वैशिष्ट्य

नई कविता की भाषा के सामने नये यथार्थ बोध को अभिव्यक्त करने की चुनौतियाँ थीं। भाषा के सामने एक बड़ा प्रश्न संप्रेषणीयता का होता है। प्रयोगवादी कविता के दौर में अज्ञेय ने

भाषा के दुहरे दायित्व की बात कही है। हमने देखा है कि नई भाषा के समक्ष अपनी पूर्वरूढ़ भाषा के प्रभावों से मुक्त होने का संघर्ष तो होता ही है साथ ही पाठकों की अवरूद्ध हुई स्वाद प्रक्रिया को भी बदलने का प्रश्न होता है। नई होती हुई रचनात्मक विधाओं ने नएपन के ऐसे प्रत्येक मोड़ पर इन समस्याओं का सामना किया है। 'हरी घास पर क्षणभर' शीर्षक अपने काव्य संग्रह की 'कलंगी बाजरे की' शीर्षक कविता में अज्ञेय काफी हद तक नई रचनात्मक भाषा की समस्या से टकराते दिखाई देते हैं। एक साथ यह नये अछूते ताजे शब्द पाने की समस्या है, साथ ही नई अन्तर्वस्तु को समग्रता में कहने की समस्या है और अनुभावन की समस्या तो है ही। इसके अतिरिक्त जटिल संक्रान्त स्थितियों के उन दबावों को समझने की समस्या भी है जिनका प्रभाव मनुष्य के संवेदन तंत्र पर पड़ रहा है तथा जिसके कारण प्रचलित रूढ़ चीजों में नये सत्य के बोध और अभिव्यक्ति की क्षमता नहीं रह गयी है। यह इसी प्रकार हुआ है कि जैसे- 'कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है' (कलंगी बाजरे की, अज्ञेय)।

नई कविता की भाषा - नई कविता के कवियों ने अपने अनुभवों के अनुरूप नई भाषा को अर्जित करने का संघर्ष किया है। भाषा की तलाश में वे जीवन के वृहत्तर क्षेत्रों में प्रवेश करते हैं।

तद्भव शब्दों की शक्ति - नई कविता की दृष्टि भाषा की पुनर्रचना पर है। यह एक प्रकार की नवोन्मेषी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत कविता के संसार में व्यापक अछोर जीवन के तद्भव शब्द अपनी स्मृति और साहचर्य के साथ दाखिल होते हैं इस प्रकार के शब्द सुसंस्कृति का अंग बनकर स्थापित हुए शब्दों के अगल-बगल आकर बैठ जाते हैं और अपने नयेपन से उन शब्दों को भी नया आलोक प्रदान करते हैं। यहाँ हम इन दो उद्धरणों को देख सकते हैं।

प्रात नभ था बहुत नीला शंख जैसे/भोर का नभ/शंख से लीपा हुआ चौका/अभी गीला पड़ा है. (कवितांतर: संपा. जगदीश गुप्त)

ये शमशेर की कविता की पंक्तियाँ हैं जो नये बिंब की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं किन्तु यहाँ हम 'लीपा' क्रिया को विशेष रूप से देखें। यह लोक जीवन से सीधे ले ली गई है और यहाँ अपनी गहरी अर्थवत्ता के साथ दिखाई देती है। इसी तरह अज्ञेय की इस कविता को देखें जो जापानी 'हाइकू' छंद में है।

खेत में एक डरोने पर/बैठा है डरा हुआ कौआ/पूस की हवा कटखनी सी बहती है (अरी ओ करुणा प्रभामय, अज्ञेय)

ठण्डी हवा के स्वभाव के लिए 'कटखनी' विशेषता लोक में पर्याप्त प्रचलित है। तद्भवों के ऐसे प्रयोग की प्रवृत्ति नई कविता के कवियों में खूब दिखाई देती है। नई कविता के प्रत्येक कवि के समक्ष यह बात लगभग प्रधानता में निश्चित है कि नये भावबोध के हिसाब से नई काव्यभाषा को रूप देना है। तद्भव शब्दों के सहारे कवि की भाषा की व्यंजकता बढ़ जाती है और अभिव्यक्ति

को अपेक्षित सृजनात्मकता प्राप्त होती है। इन शब्दों की निकटता से 'तत्सम' शब्दों में आ गई जड़तायें टूट जाती हैं तथा उनका ओज बढ़ जाता है। इस प्रकार तद्भव शब्द तत्सम के रूढ़ आभिजात्य मूलक प्रभाव को भी मांजकर सहज बना देते हैं। अज्ञेय की कविताओं में तद्भव शब्दों की अर्थ क्षमता सबसे ज्यादा दिखाई देती है, जबकि विजयदेव नारायण साही और कुँअर नारायण में यह सबसे कम है। भवानी प्रसाद मिश्र, गिरिजा कुमार माथुर, रघुवीर सहाय और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना में इसकी ताजगी का अनूठा रंग भरपूर है। रघुवीर सहाय की इस कविता में देखिए: अपनी कथा की व्यथा का अथाह शून्य / मेरे छटंकी भर दुख से लिया करो /तो क्या करोगे कम वह जो दरद है / हाँ थकन हमारी कभी-कभी हर लिया करो।'

इस प्रकार तद्भव के प्रभाव से हम नई कविता के वाक्य रचना में आए नयेपन को भी देख सकते हैं। तद्भव से निर्मित कुछ क्रियाओं को अज्ञेय की कविता में देखें।

4. तुम पर्वत हो अभ्रभेदी शिलाखण्डों के गरिष्ठ पुंज/चांपे इस निर्झर को रहो, रहो (कवितांतर: संपा. जगदीशगुप्त,)

4. क्या मैं चीन्हता कोई न दूजी राह (हरी घास पर क्षण कर: अज्ञेय)

4. हम आ जाते हैं अभी लौट कर छिन में (हरी घास पर क्षण कर: अज्ञेय)

मुक्त छंद - नई कविता छंद से मुक्त है किन्तु वाक्यों की गद्य में 'लय' का नया प्रयोग इसे कविता की विधा में बनाए रखता है। इसे हम गद्य में अन्तर्लय का विधान भी कह सकते हैं। गद्य की सहजता और गति को कवि इसी अन्तर्लय के द्वारा रचनात्मकता प्रदान करता है। रघुवीर सहाय जैसे कवि ने तो 'सपाट बयानी' में भी कविता को संभव किया है। इस विधान से कविता में उभरते रचनात्मक तनाव को हम सबसे ज्यादा मुक्तिबोध की कविता में प्रतिफलित होते देखते हैं। इस प्रकार की भाषा अल्पविराम, बिन्दु, डैश, कोष्ठक आदि का भी सृजनात्मक उपयोग करती देखी जा सकती है। नई कविता के सन्दर्भ में खड़ी बोली के गद्य को अधिक तीक्ष्णता, बौद्धिकता और गहरी परिपक्व गत्यात्मकता के द्वारा संवरते देखते हैं। अपने समय के कठिन यथार्थ को कविता की रचनात्मकता में बदलता हुआ नई कविता का कवि एक सक्षम भाषा का निर्माण करता दिखाई देता है।

शब्द संसार - नई कविता की भाषा की शब्दान्वेषिणी प्रवृत्ति को समझने के लिए हम उसके विकसित, व्यापक शब्द संसार को देख सकते हैं। हमें यहाँ बिना किसी दुराव के तद्भव देशज ग्रामज शब्दों के साथ अंग्रेजी और उर्दू भाषा के शब्दों का भी व्यवहार मिल जाएगा।

बिंब विधान - नये बिंबों की दृष्टि से नई कविता अत्यधिक समृद्ध है। इन बिम्बों के द्वारा साकार होता हुआ क्रिया व्यापार या रचनानुभव लगभग अछूता होता है। इनमें आधुनिक संवेदना को संवेद्य बनाने की क्षमता है। वस्तुतः नई कविता के कवि के सामने भाषा की इसी प्रकार की

चुनौतियों का क्षेत्र है। अज्ञेय, गिरिजा कुमार माथुर, धर्मवीर भारती, विजयदेव नारायण साही आदि कवियों की काव्य भाषा में नये बिम्बों के प्रयोग से सशक्त होती अर्थछवियों को हम देख सकते हैं। केदारनाथ सिंह को बिंब इतने प्रिय हैं कि उन्हें बिंबों का कवि कहा गया है। इन बिम्बों के कुछ उदाहरण देखें-

जिसकी सुधि आते ही पड़ती

ऐसी ठंडक इन प्राणों में

ज्यों सुबह ओस गीले खेतों से आती है

मीठी हरियाली खुशबू मंद हवाओं में' (धूप के धान, गिरिजा कुमार माथुर)

श्री माथुर के कविता संग्रह का 'घूप के धान' जैसा शीर्षक ही नये बिम्ब को सूचित करता है। ध्यान देने की बात है कि ये बिम्ब अपनी सहज भाषा की रवानी के कारण छायावादी बिम्बों से अलग है। इन बिम्बों की ऐन्द्रिकता भी उल्लेखनीय है। कठिन जीवनानुभवों से जुड़कर इनकी संश्लिष्टता निखर जाती है। जहाँ कहीं वे छायावादी कविता में प्रचलित उपमाओं को स्पर्श करते हैं। वहाँ भी अपनी संवेदना का अछूतापन रचने का संघर्ष भी करते हैं। इसे हम उपर्युक्त उद्धरण में तो देख सकते हैं, इसके अलावा भी हमें चांदनी, ओस, दीपक, सांझ, सवेरा, नदी, भोर, आदि का बिम्बों में भरपूर उपयोग दिखाई देता है किन्तु कवि का ध्यान नई अर्थ छवियों के प्रति एकाग्र दिखाई देता है। प्रतीकों की दृष्टि से मुक्तिबोध के सौन्दर्यबोध का उल्लेख करना आवश्यक है। वे कविता की सर्वाधिक नई अर्थ संभावनाओं के अन्वेषक कवि हैं। मुक्तिबोध मराठी भाषी थे। सम्भवतः इसलिए संस्कृत भाषा पर उनकी निर्भरता अधिक थी। इसके अतिरिक्त वे प्रगतिशील चेतना के कवि थे। उनका रचनात्मक संघर्ष भाषा को मनुष्य की आर्थिक-सामजिक मुक्ति के संघर्ष से जोड़ने का था। हम देखते हैं कि उन्होंने अनेक प्रचलित बिम्बों और प्रतीकों को अपनी रचना के प्रगतिशील अर्थ से नया किया है। उनके कविता संग्रह के शीर्षक ने ही रोमेंटिक मिजाज़ वालों को पर्याप्त चौंकाया था। यह शीर्षक है 'चांद का मुंह ढेढ़ा' है। अनेक सुन्दरियों के सौन्दर्य के लिए प्रचलित यह 'चाँद' टेढ़े मुंह का हो गया। मुक्तिबोध ने इस प्रयोग के द्वारा पूंजीवादी प्रवृत्तियों में धंसे रोमान को यथार्थवादी ढंग से उद्घाटित करना चाहा। यहाँ वे नया सौन्दर्य शास्त्र निर्मित करते दिखाई देते हैं। उनका सौन्दर्यबोध पूंजीवादी सामंती पतनशील प्रवृत्तियों की आलोचना करता है। इस प्रकार 'ब्रह्मराक्षस' 'अंधेरे में' 'लकड़ी का रावण' आदि सभी उनके नये प्रतीक हैं, दूसरी तरफ अज्ञेय के यहाँ भी 'कलंगी बाजरे की' सांप' 'नदी के द्वीप' 'दीप/अकेला', 'चक्रान्त शिला' 'असाध्य वीणा' आदि सब नये प्रतीक हैं। वस्तुतः प्रतीक वह योजना है जो मूल संवेद्य को सादृश्य आदि के आधार पर पुनर्नियोजित करती है। सांकेतिकता इसका प्रधान गुण है। नई कविता ने प्रतीकों का प्रयोग कर भाषा में अर्थ सामर्थ्य को गहराई से भरा और कलात्मक बनाया है। उनके

सामने जटिल संक्रान्त यथार्थ है इसलिए 'चांद' का मुंह यहाँ आकर ढेढ़ा हो जाता है, मछली 'हाँफती हुई मछली' में बदल जाती है, जूते का कील, खाली गुलदस्ते सा सूर्योदय, बांस का पुल, अग्निकमल, आदि कितने ही नये-पुराने प्रतीक नये अर्थ की रचना में जुटे दिखाई देते हैं

नये मिथ - धर्मवीर भारती, कुँअर नारायण, नरेश मेहता, अज्ञेय, मुक्तिबोध आदि कवियों ने इतिहास पुराण के मिथकीय सन्दर्भों का समकालीन अर्थवत्ता के साथ पुनराविष्कार किया है। कुँअर नारायण ने 'आत्मजयी' में कठोपनिषद् के एक आख्यान में आई प्रश्नाकुलता को नये अर्थ से जोड़कर प्रस्तुत किया है। मुक्तिबोध की कविता 'ब्रह्मराक्षस' का अर्थ वह बुद्धिजीवी है जिसने अपने ज्ञान का सामाजिक उपयोग नहीं किया है और व्यक्तिवादी किस्म का आत्मसम्मोही जीवन बिताया है, इसलिए वह अभिशप्त ब्रह्मराक्षस हैं। नरेश मेहता की लम्बी कविता 'संशय की एक रात' में हम 'राम' का समकालीन मनुष्य की संशयग्रस्तता के अर्थ से जुड़कर पुनरावतार लक्ष्य कर सकते हैं। राम उस आधुनिक मनुष्य का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो अन्तर्द्वन्द्व की जटिलता से गुजर रहा है। अज्ञेय की कविता 'इतिहास की हवा' में महाभारत युग का प्रसंग है। धर्मवीर भारती का 'अंधायुग', 'कनुप्रिया' आदि काव्यकृतियाँ मिथक को आधुनिक युगबोध के साथ जोड़ कर प्रस्तुत करती हैं, इस प्रकार नई कविता मिथकीय आख्यानों का नया प्रयोग करती है।

फैंटेसी - फैंटेसी का सबसे अधिक उपयोग मुक्तिबोध ने किया है। 'असाध्यवीणा' में वीणा बज कर फैंटेसी का ही सृष्टि करती है। फैन्टेसी वस्तुतः एक भाववादी संरचना है, जो यथार्थ की तार्किक सुसंगति को तोड़ती है किन्तु नई कविता के कवियों ने अपनी यथार्थवादी रचना दृष्टि की शक्ति के रूप में इसका सृजनात्मक उपयोग किया है। मुक्तिबोध की 'अंधेरे में' शीर्षक कविता में फैंन्टेसी की गढ़न से एक नाटकीयता उभरती है जो कविता के प्रभाव को सघन बनाती है।

नये उपमान - नई कविता के कवि ने असंख्य नये उपमान गढ़े हैं। यही नहीं बल्कि भाषा को नया करते हुए वे पुराने उपमानों को भी नये अर्थ में बदल देते हैं। इस प्रकार यहाँ भाषा को वह नया संस्कार मिलता है जो इन कवियों को अभीष्ट है। सुलगती अंगीठी, सिगरेट का धुआँ, चाय की पत्तियों, चाय की प्याली, मेज कुर्सी, चटाई, राख, धूल, दीवारें, खुले मैदान, कमरे, फाइलें, जूते, लाठी जैसे कितने ही उपमान इस कविता संसार में दाखिल होते दिखाई देते हैं।

नया अप्रस्तुत विधान - अप्रस्तुत विधान के कई नए रूप अपनी सृजनात्मकता के साथ नई कविता में मिलते हैं, मूर्त के लिए अमूर्त अप्रस्तुत विधान, मूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुत विधान, अमूर्त के लिए अमूर्त अप्रस्तुत विधान, अमूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुत विधान, रूपक के रूपमें अप्रस्तुत विधान, मानवीकरण आदि के लिए प्रयुक्त अप्रस्तुत विधान इसके अन्तर्गत मिलते हैं। नए प्रतीक, बिंब, रूपक आदि इस विधान की रचना में संलग्न दिखते हैं, एक उदाहरण देखें-

आवारा मछुओं सी शोहदों सी चांदनी/लहरें घायल सांपों सी, मणि खोये सांप सा समय (कवितांतर, संपा.: जगदीश गुप्त)

8.7 नई कविता के कवि

सप्तक श्रृंखला में जो कविता के दौर में भी रचनाशील रहे तथा साठोत्तर दौर की रचनाशीलता में भी जिनकी रचनात्मक सक्रियता कुछेक बदलावों के साथ कायम रही है उनमें से अज्ञेय, मुक्तिबोध, शमशेर बहादुर सिंह, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, कुअँर नारायण, केदारनाथ सिंह का नाम लिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकांत वर्मा, विजयदेव नारायण साही, गिरजाकुमार माथुर आदि कवि नई कविता के कवि हैं। नई कविता के सन्दर्भ में सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन महत्वपूर्ण कवि हैं। प्रयोगवाद के साथ-साथ नई कविता के भी पुरस्कर्ता कवि के रूप में आपका नाम लिया जाता है।

8.7.1 अज्ञेय

अज्ञेय ने आधुनिक संवेदना और कविता के सृजनात्मक सार्थक सम्बन्ध की चिंता की है। नई कविता को नये सौन्दर्यबोध, पारिभाषिक और आधुनिक चिंतन के सन्दर्भ में वे सबसे ज्यादा रेखांकित करते हैं और उसके पक्ष में धारणाएं और विमर्श रचते हुए दिखाई देते हैं। उस दौर में नई कविता पर हुए आक्रमणों ने सबसे ज्यादा अज्ञेय को ही लक्ष्य किया और उन्होंने उसके सुचिंतित उत्तर देने का प्रयत्न भी किया। अज्ञेय चिंतक कवि हैं। विशिष्ट प्रकार की बौद्धिकता उनका स्वभाव है। पारिवारिक परिवेश शिक्षा और जीवन संघर्ष ने उन्हें आधुनिकता के चिन्तनपूर्ण सृजनात्मक रूप से जोड़ कर विकसित किया है। उनकी काव्य संवेदना का आधार एक सुसंकृत ढंग का आभिजात्य है। सरल ढंग की जनोन्मुखता के पक्षधर कवियों और समीक्षकों ने उनके आभिजात्य पर बड़ा प्रहार किया है।

अज्ञेय की प्रमुख काव्य कृतियाँ हैं 'भग्नदूत', 'चिन्ता', 'इत्यलम्', 'हरीघास पर क्षणभर', 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये, 'बावरा अहेरी,' 'अरीओ करुणा प्रभामय, 'आँगन के पार द्वार', 'कितनी नावों में कितनी बार', 'सागर मुद्रा', 'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ ', 'महावृक्ष के नीचे', 'ऐसा कोई घर आपने देखा है'। 'तार सप्तक', 'दूसरा सप्तक' और 'तीसरा सप्तक' उनकी संपादित कृतियाँ हैं। शेखर:एक जीवनी के दो खण्ड, 'नदी के द्वीप', 'अपने-अपने अजनबी' उनकी औपन्यासिक कृतियाँ हैं तथा 'उत्तर प्रियदर्शी' शीर्षक से उन्होंने नाटक भी लिखा है। अज्ञेय की गद्य कृतियाँ भी अनेक हैं जिनमें कहीं संस्मरण है, यात्रा वृतान्त है अथवा साहित्यिक चिन्तन है। कुछ प्रमुख गद्यकृतियाँ इस प्रकार हैं- 'आलवाल', 'त्रिशंकु', 'आत्मनेपद', 'एक बूंद सहसा उछली,' 'अरे यायावर रहेगा याद' आदि।

8.7.2 मुक्तिबोध

मुक्तिबोध की कविताएँ 'तारसप्तक' में संग्रहीत थीं। कवि का विकास मार्क्सवादी विचारधारा से जुड़कर हुआ है। यही कारण है कि उनकी कविता में क्रान्तिकारी जनोन्मुखता का रूप दिखाई देता हैं। 'जनमन की उष्मा' उनकी कविताओं का प्राणतत्त्व है। मुक्तिबोध 'लम्बी कविताओं' के कवि हैं। कविता को उन्होंने क्रान्तिकारी जनसंघर्ष में भागीदारी की गहरी मानवीय उम्मीद के साथ देखा और उसे निरन्तर चलने वाली कालयात्री कहा है। उनकी कविताओं में शोषित उत्पीड़ित जन के प्रति बहुत गहरा प्यार दिखाई देता है। वे जन की आर्थिक-सामाजिक मुक्ति का स्वप्न देखते हैं। तथा ऐसी शिक्षा-दीक्षा की आलोचना करते हैं जो मनुष्य को जनता की मुक्ति के लक्ष्य से काट कर सुविधाभोगी, परजीवी और पतनोन्मुख बनाती है। रामविलास शर्मा ने मुक्तिबोध पर सार्त्र, कामू जैसे अस्तित्ववादी चिन्तकों का प्रभाव माना था तथा उनकी कविता में अस्तित्ववादी प्रकार के अर्थ की छायाएं देखी थीं। जबकि नामवर सिंह जैसे आलोचक ने मुक्तिबोध की कविता की क्रान्तिकारी चेतना के संघर्ष को रेखांकित किया और उन्हें कबीर तथा निराला की परम्परा का कवि माना है। वस्तुतः मुक्तिबोध की रचनाशीलता के केन्द्र में मध्यवर्ग के व्यक्तित्वांतरण की चुनौतियाँ रही है। हिन्दी कविता के इतिहास में मध्यवर्ग की अवसरवादी संरचनाओं की जटिलता में प्रवेश करने वाले वे पहले कवि हैं। मध्यवर्गीय व्यक्तित्व के भीतर पड़ी सामंती पूंजीवादी प्रवृत्तियों के दबाव को पुर्जा-पुर्जा खोलकर देखते हैं और इसी के साथ बाह्य परिवेश के विघटन, मूल्यहीनता और पतन को भी समूचा पहचानते हैं। मुक्तिबोध की कविता में छठें-सातवें दशक के भारत के आर्थिक-राजनैतिक अन्तर्विरोधों के असली रूप दिखाई देते हैं।

मुक्तिबोध के यहाँ हमें 'संवेदनात्मक ज्ञान' और 'ज्ञानात्मक संवेदना' जैसे प्रत्यय मिलते हैं। इसे उन्होंने व्यक्ति की रचना प्रक्रिया के सन्दर्भ में विश्लेषित भी किया है। वस्तुतः यह अनुभव के रचनात्मक अनुभव में बदलने की ऐसी प्रक्रिया है जिसे मार्क्सवादी विचारधारा के द्वारा प्रगतिशील आशय की चमक मिल जाती है। 'चांद का मुंह ढेढ़ा है' शीर्षक उनकी काव्यकृति को अत्यधिक प्रसिद्धि मिली है। साठोत्तर दौर के कवियों ने अपने लिए मुक्तिबोध को सबसे ज्यादा संभावनापूर्ण रचनात्मक विरासत माना है। मार्क्सवादी दृष्टि का सृजनात्मक सौन्दर्य के साथ सबसे प्रभावी रचनात्मक तालमेल मुक्तिबोध की कविता में ही दिखाई देता है। विचारधारा को वे अपना मूल्यवान अर्जित मानते हैं। और मार्क्सवाद को विश्वदृष्टि कहते हैं। पूंजीवादी विकास द्वारा पैदा की गई विषमताओं को वे मनुष्य के लिए सबसे ज्यादा घातक मानते हैं। पूंजीवाद की विशाल संरचना के प्रत्येक पुर्जे को जिस प्रकार मुक्तिबोध ने पहचाना है उस प्रकार शायद ही किसी ने पहचाना हो। क्रान्ति में उन्होंने ऐसे पूंजीवाद को चुनौती देने वाली शक्ति देखी। इसलिए वे मध्यवर्ग से जनता का सही नेतृत्व बनने की मांग करते हैं। इसीलिए उन्होंने मध्यवर्ग के व्यक्तित्वांतरण की बात कही है क्योंकि जनता से एकमएक हुए बिना केवल सहानुभूति या निष्क्रिय करुणा के द्वारा समाज के

क्रान्तिकारी बदलाव की लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती। अपनी कल्पना में जनता को क्रान्ति के लिए एकजुट होते देखते हैं और लिखते हैं कि जिन्दगी बुरादा तो बारुद तो बनेगी ही' (मुक्तिबोध)

8.7.3 शमशेर बहादुर सिंह

शमशेर बहादुर सिंह की कविताएं दूसरा सप्तक में संकलित हैं। इन्हें नई कविता की प्रगतिशील धारा से सम्बद्ध कवि माना जाता है। शमशेर ने स्वयं को मार्क्सवाद से प्रभावित माना है। वे अपनी रचनादृष्टि का मार्क्सवादी विचारधारा से जुड़कर दृष्टिवान होना स्वीकार करते हैं। 'बात बोलेगी', 'कुछ कविताएं', 'कुछ और कविताएं' 'चुका भी हूँ नहीं मैं', 'इतने पास अपने' आदि उनके काव्य संग्रह हैं। शमशेर में गहरी संवेदना और तीव्र प्रतिभा थी। उर्दू और अंग्रेजी भाषा के साहित्य को उन्होंने डूब कर पढ़ा और उसमें निहित रचनात्मक अर्थ की गहराइयों से प्रभावित हुए। शमशेर साहित्य के बड़े तन्मय पाठक थे। उनकी चेतना को साहित्य और संस्कृति की गहरी निकटता मिली। उनके साहित्यिक संस्कार तुलसी, मतिराम, निराला और मैथिलीशरण गुप्त को पढ़ने के साथ-साथ ग़ालिब, हाली, टेनिसन, एज़रा पाउंड आदि को पढ़कर विकसित हुए। चौथे दशक के आस-पास प्रगतिशील लेखकों के सम्पर्क में आये और मार्क्सवादी दर्शन में निहित मनुष्य की मुक्ति की आकांक्षा का महत्व पहचाना। शमशेर कविता में एक चितेरे की सी भूमिका चुनते हैं। उन्हें लगता है कि शब्द और चित्रकारी में बड़ा घना आदान-प्रदान का सम्बन्ध है। शमशेर की कविता में उनके ज्ञान अनुभव और विश्वासों के रंग खुल पड़े हैं। नई कविता के इतिहास के सर्वाधिक ऐन्द्रिक कवि शमशेर ही हैं। शमशेर के लिए यथार्थ का रचनात्मक रूपान्तरण प्रमुख है। वे उसके भीतर रूप, रस, गन्ध की सुन्दरता खोजते हैं। शमशेर की काव्य संवेदना में गहरी आवेगात्मकता का स्पन्दन मिलता है। अज्ञेय ने शमशेर को कवियों का कवि कहा है। शमशेर की कविता में बारीक संश्लिष्टता मिलती है। उनकी कविताएं सतह पर अर्थ खोलने वाली कविताएं नहीं हैं। छायावादी सौन्दर्यप्रियता को शमशेर ने अपनी कविता में नया किया है। उनकी कविता में अभिव्यक्त वस्तुसंसार छायावादी विषयों से बहुत मिलता जुलता है, विशेषरूप से प्रकृति की नाना छवियाँ, किन्तु हम यह स्पष्ट देख सकते हैं कि वे भाव बोध की नवता के द्वारा नये रूप में आविष्कृत छवियाँ हैं।

यहाँ से अगर हम देखें तो प्रेम सौन्दर्य और उन्मुक्त उल्लास के निकट का जो एक और भाव शमशेर की कविता में मिलता है वह करुणा का है। शमशेर का काव्य लोक गहरी मानवीय संवेदनाओं के जीवित लोक की तरह है जिसमें स्पन्दन व्यापता है। उनकी काव्य पंक्तियाँ अर्थ की गतिशीलता में स्फुरित होती हैं। वहाँ एक अद्भुत सकर्मकता दिखाई देती है जिसमें सहज ही ठहरावों को तोड़ देने का उद्यम है। यहाँ तक कि उदासियों के सघन चित्रण में भी गति के ये रूप अंकित हैं। संवेदना के इन रूपों में कवि में आत्मविस्तार का उदात्त व्यक्त हुआ है। मनुष्य की गति, संघर्ष, प्रेम और असफलताएं शमशेर को आकृष्ट करती हैं। मजदूर किसान और वंचित भारतीय जन की मुक्ति आकांक्षा उनकी कविता में व्यक्त हुई है। शमशेर ने जनता के लिए आर्थिक-सामाजिक समानता

का मानवीय भविष्य चाहा है। मेहनतकश जन का शोषण करने वाली व्यवस्था और संस्कृति की आलोचना भी शमशेर की कविता में दिखाई देती है। किन्तु उनके सौन्दर्यबोधीय मूल्य वहाँ उस मानवीय आवेग को धारण करते हैं जिनसे उस भाव का प्रभाव विशिष्ट हो उठता है। शमशेर कविता की संश्लिष्ट मितव्ययी संरचना के कवि हैं। उनकी कविताओं में अर्थ समृद्धि आंतरिक स्तर पर दिखाई देती है।

8.7.4 धर्मवीर भारती

धर्मवीर भारती की कविताएं भी दूसरा सप्तक में संग्रहीत हैं। भारती नई कविता को गति देने वाली संस्था 'परिमल' के संयोजकों में से एक थे, इलाहाबाद के साहित्यिक रचनात्मक परिदृश्य ने धर्मवीर भारती की रचनात्मक चेतना को संवारा है। भारती सन् 60 में धर्मयुग के यशस्वी सम्पादक हुए। उनके सम्पादन काल में इस पत्रिका ने स्तरीय साहित्यिकता को भरपूर योगदान दिया। 'अंधायुग' 'कनुप्रिया' जैसे नाटकों से उनके कवि को अत्यधिक प्रतिष्ठा मिली है। 'अंधायुग' में धर्मवीर भारती ने महाभारत युद्ध के महाविध्वंस को समकालीन संकट से जोड़कर नई अर्थछवि प्रदान की है। इस प्रकार नई कविता में अभिव्यक्त संकटबोध का सर्वाधिक तनावपूर्ण और सृजनात्मक रूप 'अंधायुग' में व्यक्त हुआ। इस कृति में भारती की प्रतिभा का उत्कर्ष दिखाई देता है। 'अंधायुग' में भारती प्रबन्धात्मकता का वह नया प्रयोग करते हैं जिसका परम्परा से बड़ा ही सृजनात्मक सम्बन्ध है। इस काव्यनाटक के नियोजन में उन्होंने नाट्य तत्वों में भी भारतीय तथा पाश्चात्य नाट्यकला के तत्वों का बड़ा ही सार्थक सम्मिलन कराया है। भारती ने भारतीय मिथकों का समकालीन अर्थ की विराटता और प्रभाव को निर्मित करने के लिए एक प्रकार से अन्वेषण किया है। भारती की कविताओं में गहरी रागात्मकता और ऐन्द्रिकता परिलक्षित होती है। अपने समय के इतिहास के प्रश्नों से वे बौद्धिकता और रागात्मकता के सृजनात्मक मेल के द्वारा टकराते हैं। मनुष्य के अधीन लघु या क्षुद्र होने की स्थिति का नियति बन जाना भारती को स्वीकार नहीं है। भारती ने 'मिथक' द्वारा निर्दिष्ट नायकों के प्रभाव का अतिक्रमण करते हुए युगसंकट की जटिलता को व्यक्त करने वाले नायकों और प्रतिनायकों का निर्माण किया है।

'सप्तक' में संग्रहीत कविताओं के अतिरिक्त 'ठंडा लोहा' 'सात गीत वर्ष' आदि भारती के काव्य संग्रह हैं जिनकी कविताएं गहरी जिम्मेदारियों के साथ अपने समय के विसंगत स्वरूप से टकराती हैं। भारती की काव्य संवेदना में अभिजात्य और लोक का घुला मिला रूप दिखाई देता है। गहरी आवेगात्मक रूमानियत से इनके शिल्प का अलग प्रभाव निर्मित होता है। भाषा में भी लोक का प्रभाव उसकी व्यंजकता को रचता हुआ दिखाई देता है। धर्मवीर भारती के काव्यानुभव के केन्द्र में भारतीय मध्यवर्ग का संघर्ष और आकांक्षा है।

8.7.5 विजयदेव नारायण साही

विजयदेव नारायण साही 'तीसरा सप्तक' के कवि हैं। नई कविता के कवियों में अज्ञेय और मुक्तिबोध के बाद विजयदेव नारायण साही ही ऐसे कवि हैं जो कविता को चिंतन के निष्कर्षों से जोड़ते हैं। स्वातंत्र्योत्तर भारत के आर्थिक-सामाजिक संकट का तीव्रतर बोध साही की कविता को रागात्मक बौद्धिक भूमिका के लिए प्रेरित करता है। वे लोहिया, जय प्रकाश और आचार्य नरेन्द्र देव के समाजवादी विचारों के निकट रहे हैं तथा उनके चिंतन का प्रभाव भी उन पर पड़ा है। 'मछलीघर' और 'साखी' उनकी कविताओं के संग्रह हैं। साही की रचनादृष्टि यथार्थबोध की जटिलता को समझते हुए परिपक्व हुई है। कठिन जीवन की चुनौतियों को साही ने सरल समाधान में नहीं लेना चाहा है। अपने समय के मनुष्य को वे संकट को पहचान कर उससे संघर्ष की क्षमता में देखना चाहते हैं, इसलिए संकट के दृश्य अदृश्य तंतुओं को कविता में उद्घाटित करते दिखाई देते हैं। विसंगति और विडम्बना से भरे समय में मनुष्य की तैयारी उसका विवेक है और निर्वैयक्तिकता भी, ऐसा साही का मानना है। साही एक प्रतिभाशाली कवि हैं। उनकी कविताएं संवेदना को चिंतन से जोड़ती दिखाई देती है। जैसे संघर्ष, जिजीविषा, सृजन, सौन्दर्य, परम्परा, आस्था, सार्थकता, विषाद और पूर्णता आदि को साही ने एक चिन्तक कवि के रूप में देखा है। 'आत्मोन्मुखता' का एक अलग रूप साही की कविताओं में प्रतिफलित होता है। उनके वैचारिक आदर्श उन्हें अपने अनुभवों और विश्वासों को व्यापक समाज के पक्ष में परखने के लिए प्रेरित करते हैं। साही की कविताएं मनुष्य के अन्तहीन संघर्ष को देखती है।

विजयदेव नारायण साही की भाषा में बौद्धिकता ज्यादा है। उनमें रूपक बिम्ब और प्रतीक बहुधा अमूर्तन की ओर चले जाते हैं। साही भाषा के द्वारा काव्यानुभव का एक नाटकीय तनाव भरा रूप निर्मित करना चाहते हैं। मुक्तिबोध की तरह साही ने भी अधिकांश लम्बी कविताएं लिखीं हैं, जिनमें नाटकीय एकालाप और चिंतन है। 'अलविदा' 'एक आत्मीय बातचीत की याद' 'सन्दर्भहीन बारिश', 'घाटी का आखिरी आदमी' आदि उनकी चर्चित कविताएं हैं।

इन कवियों के अलावा भवानी प्रसाद मिश्र, गिरिजा कुमार माथुर, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय, केदार नाथ सिंह आदि नई कविता के महत्वपूर्ण कवि हैं। इन कवियों का भी अपना भिन्न रचनात्मक स्वर है। अन्तर्वस्तु के स्तर पर भी ये अलग-अलग काव्य संसार के रचयिता हैं।

अभ्यास प्रश्न: तीन

प्रश्न 1: सही विकल्प बताइए (सही /गलत चिह्नित करें)

क) 'प्रात नभ था बहुत गोला शंख जैसे' काव्य पंक्ति किस कवि की है?

शमशेर बहादुर सिंह

गजानन माधव मुक्तिबोध

गिरिजा कुमार माथुर

ख) ‘कवितांतर’ के संपादक है:

अज्ञेय

जगदीश गुप्त

गोविन्द रजनीश

ग) ‘ब्रम्हराक्षस’ शीर्षक कविता के कवि हैं

कुंवर नारायण

नरेश मेहता

गजानन माधव मुक्तिबोध

प्रश्न 2: तीन या चार पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

क) नई कविता के प्रमुख कवियों का नाम बताइए

....
.....

....
.....

....
.....

ख) ‘फैंटेसी’ से क्या अभिप्राय है।

....
.....

....
.....

....

.....

ग) नई कविता द्वारा खोजे गए नये उपमानों के विषय में बताइए।

....

.....

....

8.8 सारांश

नई कविता में नये भावबोध की केन्द्रीयता है तथा इसमें नया सौन्दर्यबोध प्रतिफलित होता दिखाई देता है। आलोचकों ने नई कविता को प्रयोगवाद के आगे की स्थिति माना है और इसमें वे संवेदना और शिल्प की दृष्टि से विकास लक्षित करते हैं। सन् 1952 में रेडियो से प्रसारित अपने व्याख्यान में अज्ञेय ने 'नई कविता' सम्बन्धी कई मान्यताओं को स्पष्ट किया था। नई कविता के विकास के सन्दर्भ में अज्ञेय द्वारा संपादित सप्तकों का महत्वपूर्ण योगदान है, इसके अतिरिक्त सन् 1946 से प्रकाशित 'ज्ञानोदय', सन् 1947 से प्रकाशित 'प्रतीक' नामक पत्रिकाओं के द्वारा नई कविता का स्वरूप सामने आने लगा था। सन् 1949 में प्रकाशित 'कल्पना' के द्वारा नई कविता के साथ-साथ 'नई कहानी', 'नई आलोचना' आदि का स्वरूप भी सामने आने लगा। सन् 1953 में 'नये पत्ते' पत्रिका सामने आई और सन् 1955 में जगदीश गुप्त और रामस्वरूप चतुर्वेदी के सहयोग से 'नई कविता' पत्रिका का प्रकाशन हुआ। इसके अतिरिक्त 'निकष', 'कविता' आदि ने नई कविता को आधार और प्रचलन दिया। अज्ञेय, मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती, विजयदेव नारायण साही, जगदीश गुप्त, गिरिजा कुमार माथुर, भवानी प्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुर सिंह, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय, नरेश मेहता, आदि नई कविता के कवि थे। नई कविता में व्यक्तिवादी व वस्तुवादी रूझानों की कविताएं मिलती हैं। कार्ल मार्क्स और सार्त्र, काल यास्पर्स जैसे दार्शनिकों के साथ-साथ गांधी, लोहिया, जयप्रकाश, आचार्य, नरेन्द्र देव की वैचारिकी ने भी नई कविता के कवियों को प्रभावित किया है। नई कविता की संवेदना का आधार आधुनिक भावबोध है। ये कविताएं जीवन के व्यापक क्षेत्रों से अर्थग्रहण करना चाहती हैं। वैयक्तिक रूझानों वाली आधुनिकतावादी कविता की संवेदना के केन्द्र में 'संकट बोध' है तो मार्क्सवादी प्रभाववाली यथार्थवादी कविता के भावबोध का सम्बन्ध प्रतिरोध और संघर्ष की चेतना से है। इसके अतिरिक्त बौद्धिकता, क्षणबोध, अनुभूति की प्रामाणिकता आदि इसके भावबोध की विशेषताएं हैं। भाषा में नया बौद्धिक संस्पर्श दिखाई देता है। नाटकीयता और अप्रस्तुत विधान आदि भी यहाँ अपनी नवीनता में दिखाई देते हैं।

8.9 शब्दावली

4. संप्रेषणीयता: श्रोता सहृदय पाठक या भावक द्वारा अर्थ ग्रहण संप्रेषण है।

4. अनुभूति की प्रमाणिकता: विश्वसनीय आंतरिक अनुरूप।

4. विडम्बनाबोध: आधुनिक जीवन की जटिलता के कारण अनुभव में निहित वैषम्य को सूचित करने वाला पद है।

4. अमानुषीकरण: मानवीय संवेदनशीलता का अभाव इसे पूंजीवादी उपभोक्ता संस्कृति में मौजूद व्यक्तिवादिता के अतिरेक में देखा गया है।

8. लघुमानव: व्यापक यथार्थ की विकटता के निकट मध्यवर्गीय मनुष्य का निजताबोध जिसमें वह अपने व्यक्तित्व की सीमाओं से अनजान नहीं किन्तु उससे लज्जित भी नहीं।

6. मोहभंग: सन् 1947 में मिली स्वतंत्रता के प्रति उम्मीद के टूटने का अनुभव।

7. अस्तित्ववाद: विचारधारा नहीं अपितु दर्शन है जिसमें मनुष्य की अस्मिता की चिंता कार्ल यास्पर्स, हेडेगर, सार्त्र, कीकेगार्द आदि अस्तित्ववादी दार्शनिक हैं। इस दर्शन का आविर्भाव विश्वयुद्धोत्तर योरोप में हुआ। यह मृत्यु, अजनबीपन, सामाजिक अलगाव आदि परिणतियों पर विचार करता है।

8. मार्क्सवाद: सर्वहारा जन की आर्थिक सामाजिक मुक्ति का दर्शन है। मार्क्सवाद समाज का आधार पूंजी को मानता है, कला संस्कृति, दर्शन, राजनीति, कानून, उसकी अधिरचना है। आधार और अधिरचना का सम्बन्ध द्वंद्वात्मक होता है। ऐतिहासिक भौतिकवाद के द्वारा वह सामाजिक विकास की व्याख्या करता है। इसका बल पूँजीवादी समाज व्यवस्था की आलोचना है तथा साम्यवादी समाज अर्थात आर्थिक-सामाजिक समानता का मानवीय समाज इसका स्वप्न है जिसे वह क्रान्तिकारी जन एकता और संघर्ष के द्वारा संभव होता देखता है।

9. व्यक्ति स्वातंत्र्य: व्यक्ति की आत्मपर्याप्त निजता का बोध।

8.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न: एक

प्रश्न 1: रिक्त स्थानों की पूर्ति

क) ‘तारसप्तक’ का प्रकाशन वर्ष 1943 है।
ख) प्रयोगवाद का प्रवर्तक अज्ञेय को माना जाता है।

ग) नई कविता और अस्तित्ववाद शीर्षक' किताब के लेखक हैं डॉ. रामविलास शर्मा

प्रश्न 2: दो या तीन पंक्तियों में उत्तर

क) छायावाद से छायावादोत्तर कविता को अलगानेवाली काव्य प्रवृत्ति कविता की यथार्थदृष्टि है। छायावादोत्तर कविता ने अपने समय के यथार्थ को वस्तुनिष्ठ ढंग से देखने और व्यक्त करने का संघर्ष किया।

ख) प्रयोग को दोहरा साधन अज्ञेय ने कहा है। उनके अनुसार कविता की रचना प्रक्रिया में इस प्रयोग का दायित्व नई वास्तविकता को उसकी जटिलता में प्रवेश कर समझना है तथा उस वास्तविकता की अभिव्यक्ति के लिए नई अर्थभंगिमा युक्त भाषा का अन्वेषण है।

ग) दूसरा सप्तक के कवि हैं हरिनारायण व्यास, भवानी प्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, शकुंत माथुर, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती तथा 'तीसरा सप्तक' के कवि हैं प्रयाग नारायण त्रिपाठी, कुअँर नारायण, कीर्ति चौधरी, केदारनाथ सिंह, मदन वात्स्यायन; विजय देव नारायण साही और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना।

प्रश्न 4. कुछ सही कुछ गलत कथन-

क) प्रगतिशील लेखक संघ का प्रथम अधिवेशन लखनऊ में सम्पन्न हुआ था - सही कथन

ख) 'तारसप्तक' में संकलित कवियों में हरिनारायण व्यास हैं - गलत कथन

ग) प्रगतिवादी कविता का सम्बन्ध किसान मजदूर जनता के मुक्ति संघर्ष से है - सही कथन

प्रश्न 4: पाँच या छः पंक्तियों में उत्तर-

क) 'दूसरा सप्तक' सन् 1951 में प्रकाशित हुआ। प्रायः इसके साथ ही नई कविता का आरम्भ माना जाता है। विशेष रूप से सप्तकों के सम्पादक अज्ञेय की भूमिका इस संदर्भ में उल्लेखनीय मानी गई है। सप्तकों की भूमिका में अज्ञेय ने निरन्तर बदले हुए काव्यबोध की अभिव्यक्ति की चुनौतियों को रेखांकित किया। 'सप्तकों में आई कविताओं ने नई संवेदना और भाषा की बानगी भी प्रस्तुत की।

ख) 'प्रयोग' अज्ञेय के लिए एक सृजनात्मक मूल्य है जिसे वे काव्यवस्तु के साक्षात्कार और अभिव्यक्ति तक सक्रिय मानते हैं। 'अन्वेषण' इस प्रयोग का बुनियादी आधार है। कविता को रचनात्मक नवोन्मेषता प्रदान करने के लिए यह नये भावों की खोज से लेकर नई भाषिक भंगिमा की खोज तक अग्रसर है। कवि के सामने सम्प्रेषण की समस्या भी है। अतः इस अन्वेषण का सम्बन्ध प्रयोगधर्मी रचना प्रक्रिया से है।

अभ्यास प्रश्न: दो

प्र.1: रिक्त स्थानों की पूर्ति-

क) 'नदी के द्वीप' या 'दीप अकेला' जैसी अज्ञेय की कविताओं का केन्द्रीय आग्रह व्यक्ति की स्वातंत्र्य चेतना है।

ख) नई कविता के कवि के अनुसार क्षण बोध क्षणिकता का बोध नहीं है।

ग) लक्ष्मीकांत वर्मा के अनुसार नये कवियों के समक्ष उपस्थित यथार्थ विषम और तिक्त है।

प्र. 2: पाँच या छः पंक्तियों में उत्तर:

क) नई कविता की मूल प्रवृत्तियाँ हैं- 4. व्यक्ति स्वातंत्र्य चेतना 4. अनुभूति की प्रामाणिकता 4. क्षणबोध 4. यथार्थोन्मुखता। अज्ञेय, विजयदेव नारायण साही और मुक्तिबोध की कविताओं में ये प्रवृत्तियाँ प्रायः उनकी वैचारिक प्राथमिकताओं के कारण भिन्न रूपों में प्रतिफलित होती हैं। मोटे तौर पर हम इन्हें आधुनिकतावादी और मार्क्सवादी प्रभावों के अनुरूप घटित होते देखते हैं।

ख) नई कविता की संवेदना का फलक प्रायः मध्यवर्गीय जीवनानुभवों के प्रसार और गहराई से रूप लेता दिखाई देता है। प्रायः इसे आधुनिक भावबोध जो संकटबोध के साथ संघर्ष चेतना के अर्थ में हैं, उसके प्रतिफलन के रूप में देखते हैं। इसके अतिरिक्त रागात्मकता और प्रकृति के बदले हुए रूपों का नगरीयबोध के सापेक्ष साक्षात्कार यहाँ सम्मिलित है।

प्र.4. दो या तीन पंक्तियों में उत्तर:

क) नगरीय महानगरीय मनुष्य का भावबोध उसके सामाजिक सम्बन्ध, उसकी चेतना और मर्म को प्रभावित करने वाले दबाव और उनसे बनती जटिलताओं का साक्षात्कार नगरीय जीवनबोध में निहित है।

ख) क्षणबोध: यह एक सृजनात्मक आभा से भरा देशकाल के अलावा काल की निरन्तरता से सम्बद्ध रागात्मक क्षण के रूप में हैं। अज्ञेय ने इसकी अद्वितीयता पर बल दिया है।

ग) अस्तित्ववाद का प्रभाव अज्ञेय, विजयदेव नारायण साही, लक्ष्मीकांत वर्मा, कैलाश बाजपेई आदि कवियों पर देखा गया है। माना गया है कि अस्तित्ववाद के प्रभाव के कारण नई कविता के कवियों में मोहभंग, अजनबीपन, आत्मविघटन आदि घटित हुए।

अभ्यास प्रश्न: तीन

प्रश्न 1: सही विकल्प

क) प्रात नभ था बहुत गीला शंख 'जैसे' पंक्ति शमशेर बहादुर सिंह की है।

ख) 'कवितांतर' के सम्पादक जगदीश गुप्त हैं।

ग) 'ब्रह्मराक्षस' शीर्षक कविता के कवि हैं गजनान माधव मुक्ति बोध।

प्रश्न. 4. तीन या चार पंक्तियों में उत्तर।

क) नई कविता के कवि हैं अज्ञेय, मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती, शमशेर बहादुर सिंह, जगदीश गुप्त, गिरिजाकुमार माथुर, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, कुँअर नारायण, नरेश मेहता आदि।

ख) 'फैंटेसी' को अतियथार्थवादी कला कहा जाता है। इसका सम्बन्ध स्वप्न या अवचेतनमन के असम्बद्ध बिंब विधान से भी माना गया है। इसकी प्रक्रिया में बिंब प्रतीक मिथक आदि स्वप्न के तर्क से नियोजित होते हैं अर्थात् कार्य कारण पद्धति या सुसम्बद्धता को परे करते हुए निर्मित हो सकते हैं।

ग) नई कविता द्वारा अनेक नये उपमान खोजे गये हैं। आधुनिक भाव के अनुरूप बाजरे की कलंगी, मुलम्मा लगा बेसन, चाय की प्याली, सिगरेट का धुंआ, मेज, कुर्सी, चटाई, फाइलें, जूते वगैरह।

8.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

4. सिंह, नामवर, कविता के नये प्रतिमान।

4. बाजपेई, नन्द दुलारे, हिन्दी साहित्य: बीसवीं शताब्दी।

4. कुंतल, रमेश 'मेघ', क्योंकि समय एक शब्द है।

4. मिश्र, रामदरश, आज का हिन्दी साहित्य: संवेदना और दृष्टि।

8. डॉ. रघुवंश, साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य।

6. राय, डॉ. रामबचन, नयी कविता: उद्भव और विकास।

7. शुक्ल, डॉ. ललित, नया काव्य: नये मूल्य।

8. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, नई कविताएँ: एक साक्ष्य।

8.12 निबंधात्मक प्रश्न

4. नई कविता से आप क्या समझते हैं ? सविस्तार स्पष्ट कीजिए . नई कविता कि पृष्ठभूमि एवं प्रमुख प्रवृतियों को भी स्पष्ट कीजिए .

4. नई कविता पर एक विस्तृत निबंध लिखिए तथा नई कविता के दो प्रमुख कवियों का समीक्षात्मक परिचय दीजिए .

ईकाई 9 अज्ञेय: पाठ और आलोचना

ईकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 अज्ञेय: कवि परिचय
9.4 असाध्यवीणा: अभिप्रेत
9.5 असाध्यवीणा:संवेदना और भाष्य (व्याख्या सहित)
9.6 सारांश
9.7 शब्दावली
9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.10 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

यह इकाई सच्चिदानंद हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय की महत्वपूर्ण कविता 'असाध्यवीणा' के पाठ और मूल्यांकन पर केन्द्रित है। जैसा कि हमें ज्ञात है अज्ञेय ने छायावादोत्तर दौर की काव्य संवेदना और भाषा में परिवर्तन की समस्या के सृजनात्मक हल के लिए 'अन्वेषण' को जरूरी रचनात्मक युक्ति माना था। इसी संदर्भ में प्रयोग उनके लिए महत्वपूर्ण हो उठा। प्रयोग को लेकर चली कवि की सक्रियताओं ने हिन्दी कविता के इतिहास में एक मोड़ भी प्रस्तुत किया तथा काफी हद तक नई कविता के लिए नये सौन्दर्यबोधीय मूल्यों का स्वरूप सामने आया। 'असाध्यवीणा' शीर्षक कविता में अज्ञेय के सृजन सम्बन्धी सरोकारों का प्रातिनिधिक स्वरूप उभरता दिखाई देता है। इस कविता में अज्ञेय 'मम' और 'ममेतर' अर्थात् 'आत्म' और 'वस्तु' के सम्बन्ध को दार्शनिक बारीकियों में जाकर हल करते हैं साथ ही 'असाध्यवीणा' के बज उठने में सृजन प्रक्रिया के निष्पन्न होने का निरुपण करते हैं। इस कविता का आधार एक चीनी लोककथा है। उसके सूत्रों को अज्ञेय एक भारतीय सन्दर्भ प्रदान करते हैं तथा सृजन की समग्रता के लिए साधक के या कि रचनाकार के सम्पूर्ण समर्पण का पक्ष रखते हैं। इसके अलावा 'असाध्यवीणा' में वर्णित कथा के द्वारा अज्ञेय ने सृजन की व्याप्ति के स्तरों को स्पर्श किया है। अज्ञेय की निरन्तर विकसित होती हुई सृजन प्रक्रिया में यह विश्वास पुष्ट होता चला है कि रचयिता द्वारा सृजन में निष्पन्न होता हुआ अर्थ और आलोक पुनः रचयिता में भी उस आलोकमय स्फुरण को भरकर उसे मुक्त करता है। 'असाध्यवीणा' में उन्होंने स्रष्टा और सृजन के परस्पर मेल के अर्थ को पूरी गरिमा में उभारा है। इस विलय में 'अस्मिता'

के घुल जाने को वे श्रेयस्कर नहीं मानते, बल्कि सृजन की उच्चतम भावभूमि की असाधारणता के आविष्कार द्वारा चेतना का सारपूर्ण ढंग से संघटित होना लक्ष्य करते हैं। इस संघटन के द्वारा व्यक्ति का व्यक्तित्व बनता है। इसके मूल में सर्जनात्मक संपृक्ति है जिसके विषय में अज्ञेय की 'दीप अकेला' या 'नदी के दीप' जैसी कविताएं संकेत करती हैं। यही है 'संघटित' निजता'। इस प्रकार के व्यक्तित्व की अर्थवान सामाजिक उपादेयता है, अज्ञेय यह रेखांकित करते हैं।

9.2 उद्देश्य

इस ईकाई को पढ़कर हम अज्ञेय की रचनाशीलता के वैशिष्ट्य को जान सकेंगे।

- 'असाध्यवीणा' शीर्षक लम्बी कविता की संवेदना के विषय में जान सकेंगे।
- 'असाध्यवीणा' में निहित आख्यान के रूपकात्मक अभिप्राय के विषय में समझ सकेंगे।
- 'असाध्यवीणा' की भाषा का विश्लेषण कर सकेंगे।
- 'असाध्यवीणा' की व्याख्या में सक्षम हो सकेंगे।

9.3 अज्ञेय: कवि परिचय

अज्ञेय कवि कथाकार चिंतक आलोचक और सम्पादक रहे हैं। वे विलक्षण यात्रा-वृत्तान्तों और संस्मरणों के लेखक हैं। 'उत्तर प्रियदर्शी' शीर्षक से उनका एक नाटक भी है। इसके अलावा अज्ञेय ने शरतचन्द्र के 'श्रीकांत' और जैनेन्द्र के 'त्यागपत्र' का अंग्रेजी में अनुवाद भी किया। अज्ञेय का जन्म 7 मार्च 191को कुशीनगर में एक पुरातात्त्विक खनन स्थल पर हुआ। पिता पं0 हीरानन्द शास्त्री पुरातत्त्व विभाग के उच्चाधिकारी थे। अज्ञेय ने विज्ञान में स्नातक उपाधि प्राप्त की थी तथा अंग्रेजी विषय में स्नातकोत्तर के प्रथम वर्ष में अध्ययन किया किंतु 1929-36 तक क्रान्तिकारी गतिविधियों में सक्रियता के कारण शिक्षा में व्यवधान आया। अज्ञेय चन्द्रशेखर आजाद, बोहरा और सुखदेव के साथ क्रान्तिकारी गतिविधियों में शामिल थे। इसी सिलसिले में उन्हें जेल भी हुई। 'चिन्ता' शीर्षक काव्य संग्रह तथा 'शेखर: एक जीवनी' जैसा उपन्यास जेल में ही लिखा गया। एक वर्ष तक (1936) 'सैनिक' के संपादक मण्डल में रहे। 1937 में 'विशाल भारत' के सम्पादन से जुड़े। 1943 में सेना में नौकरी की तथा असम बर्मा फ्रंट पर नियुक्ति मिली। 1950-55 में आल इंडिया रेडियो, दिल्ली में नियुक्ति मिली। स्वदेश और विदेश के विभिन्न भागों का भ्रमण किया। दद्दा यानी कि राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त से कवि की अत्यधिक निकटता थी। विदेश यात्राओं में 'जापान यात्रा' का प्रभाव उनके रचनाकार पर सर्वाधिक है। बर्कले के कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में अध्यापन भी किया। 1965 से 69 तक साप्ताहिक दिनमान का सम्पादन किया। अंग्रेजी साप्ताहिक 'एवरीमैंस' का भी सम्पादन किया। 'प्रतीक' और 'नया प्रतीक' जैसे साहित्यिक पत्रों में सम्पादन के साथ इसी दौर में कविता कहानी उपन्यास लेखन भी चलता रहा। सप्तकों के सम्पादन का कार्य

भी हुआ। 1961 में प्रकाशित काव्यकृति 'आँगन के पार द्वार' को 1964 में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। 'कितनी नावो में कितनी बार' शीर्षक काव्यकृति को 1979 में भारतीय ज्ञानपीठ सम्मान मिला। उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान का भारत भारती सम्मान मरणोपरान्त इला डालमिया ने ग्रहण कर उसे वत्सलनिधि को प्रदान कर दिया था।

अज्ञेय की प्रथम काव्यकृति 'भग्नदूत' (1933) है। क्रमशः इस रचना यात्रा में 'चिन्ता' (1942) 'इत्यलम्' (1946) 'हरी घास पर क्षण भर' (1949) 'बावरा अहेरी' (1954) 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये' (1957) 'अरी ओ करुणा प्रभामय' (1959) 'आँगन के पार द्वार' (1961) 'कितनी नावों में कितनी बार' (1967) 'क्यों कि मैं उसे जानता हूँ' (1968) 'सागर मुद्रा' (1969) 'पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ' (1970) 'महावृक्ष के नीचे' (1977) 'नदी की बांकपर छाया' (1981) 'ऐसा कोई घर आपने देखा है' (1986) आदि हैं। 'प्रिजन डेज एंड अदर पोयम्स' (1946) उनकी अंग्रेजी कविताओं का संग्रह है। 'शेखर: एक जीवनी' के दो भागों के अलावा 'नदी के द्वीप' और 'अपने-अपने अजनबी' (1961) उनके उपन्यास हैं। विपथगा (1937) परम्परा (1944) कोठरी की बात (1945) शरणार्थी (1948) जयदोल (1951) आदि उनके कहानी संग्रह हैं। 'त्रिशंकु', 'आत्मनेपद', 'आलवाल', 'भवंती', 'सर्जना और संदर्भ' उनके लेखों का संग्रह है। तारसप्तक (1943) दूसरा सप्तक (1951) तीसरा सप्तक (1959) चौथा सप्तक (1978) का अज्ञेय ने सम्पादन किया। इसके अतिरिक्त 'अरे यायावर रहेगा याद' तथा 'एक बूंद सहसा उछली' उनके यात्रा वृत्तांत हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि अज्ञेय का रचना संसार व्यापक और विविध हैं।

9.4 असाध्यवीणा: अभिप्रेत

'असाध्यवीणा' 'आँगन के पार द्वार' शीर्षक संग्रह की महत्वपूर्ण कविता है। 'अरी ओ करुणा प्रभामय' शीर्षक संग्रह की अनेक कविताएं जैसे इस महत्त्वपूर्ण कविता का पूर्व पक्ष है। इस उल्लेख का तात्पर्य यह है कि अज्ञेय की कविताएं यहाँ विशेष आध्यात्मिक गहराई में ढलती दिखाई देती है। इस आध्यात्मिकता के केन्द्र में ईश्वर नहीं बल्कि मनुष्य है। इस अध्यात्म की विशेषता यह है कि यहाँ कवि उस आत्म का आविष्कार करता है जो उदात्त और समर्पणशील है। उसका संघर्ष व्यापक सत्य से जुड़ने का है। अज्ञेय इस एकात्म में व्यक्ति का शेष हो जाना ठीक नहीं मानते। व्यापक सत्य ही उनके लिए ममेतर है जो अपनी व्याप्ति और अर्थ से व्यक्ति अर्थात 'मम' को अर्थवान सोद्देश्य और मानवीय बनाता है। इस दार्शनिक बोध से भरी हुई अज्ञेय की अनेक कविताएं हैं, जिनमें से एक की ये पंक्तियाँ देखिए: 'मुझको दीख गया:/सूने विराट के सम्मुख'/हर आलोक छुआ अपनापन/है उन्मोचन/नश्वरता के दाग से।(अरी ओ करुणा प्रभामय) 'असाध्यवीणा' की कथा वस्तुतः एक रूपक के रूप में प्रयुक्त है। पूरी कविता 'सृजन' की उस प्रक्रिया का अर्थ बताना चाहती है जिसके द्वारा सृजन व्यापक अर्थवान और गहरे अर्थ में मानवीय उद्देश्य को अर्जित करता है।

अभ्यास प्रश्न: 1

- अपने उत्तर नीचे दिये गये स्थान में दीजिए।
- ईकाई के अन्त में दिए गये उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कीजिए।

1) दो या तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

क) 'असाध्यवीणा' शीर्षक कविता का मूल मन्तव्य बताइए।

ख) अज्ञेय के लिए 'अन्वेषण' का क्या महत्व है बताइए।

ग) अज्ञेय ने रचनाकार के लिए क्या जरूरी माना है?

घ) अज्ञेय के जन्म वर्ष और पिता के विषय में बताइए

----

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

क) 'असाध्यवीणा' .... शीर्षक काव्यसंग्रह में संकलित कविता है।

ख) अज्ञेय के नाटक का शीर्षक है ....

ग) अज्ञेय को .... शीर्षक कृति पर साहित्य अकादमी सम्मान मिला।

घ) अज्ञेय .... के साथ क्रान्तिकारी गतिविधियों में सक्रिय थे।

3) पाँच या छः पंक्तियों में उत्तर दीजिए-

क) 'आँगन के पार द्वार' संग्रह की कविताओं की विशेषता क्या है?

ख) अज्ञेय के लिए अस्मिता के विलय का क्या अर्थ है?

----

4) बहुविकल्पीय प्रश्न:-

क) अज्ञेय द्वारा संपादित कृति का नाम है।

i) चिंता ii) इंद्रधनु रौंदे हुए ये iii) तारसप्तक

ख) अज्ञेय के यात्रा वृत्तांत सम्बन्धी पुस्तक का नाम है-

i) आलवाल ii) त्रिशंकु iii) अरे यायावर रहेगा याद!

9.5 असाध्यवीणा: संवेदना और भाष्य (व्याख्या सहित)

अज्ञेय आधुनिक कवि हैं यह कहने का तात्पर्य यह है कि अज्ञेय के भावबोध और मूल्यदृष्टि के केन्द्र में मनुष्य है। यह मनुष्य अपने चतुर्दिक के तीव्र परिवर्तनशील और किन्हीं अर्थों में विघटन की ओर जाते हुए जीवन से निरपेक्ष या दायित्वहीन नहीं है। एक सजग रचनाकार की तरह अज्ञेय की चिंता में मानवीय गतिशील समाज और सामाजिकता का पक्ष है। अपनी रचनाशीलता में अज्ञेय ने अपनी अर्जित वैचारिकी और अनुभव से यह निष्कर्ष प्राप्त किया है कि ऐसे विघटन के विरुद्ध मूल्यावेषी समर्पणशील व्यक्तित्व ही सकारात्मक भूमिका जरूरी है। इसके लिए मनुष्य को अपनी सृजनात्मकता के मानवीय रूप के लिए संघर्ष करना होगा। प्रत्येक मनुष्य के भीतर एक मानवीय दीप्ति है जो अपनी रचने की क्षमता को रहस्य में आवेष्टित किये पड़ी रहती है। उन्होंने प्रत्येक मानवीय अस्तित्व के भीतर ऐसे अनूठेपन की थाह ली। इस भाव को हम अज्ञेय की ‘दीप अकेला’ शीर्षक कविता में देख सकते हैं। ‘त्रिशंकु’ में अज्ञेय ने लिखा है कि कला एक श्रेष्ठतम नीति(एथिक) की दिशा में गतिशील होती है, इस श्रेष्ठतम नीति को वे सामान्य नैतिकता से अलग भी करते हैं इसी अर्थ में वे कला की सामाजिकता का पक्ष भी रखते हैं। अज्ञेय ने संवेदना

को वह यंत्र कहा है- 'जिसके सहारे जीवयष्टि अपने से इतर के साथ सम्बन्ध जोड़ती है' (अज्ञेय: आलवाल)। अज्ञेय मनुष्य के लिए दायित्वबोध से भरी सामाजिकता को जरुरी मानते हैं किन्तु इसके लिए उसकी 'अस्मिता' के मिट कर विलयित हो जाने को ठीक नहीं मानते। मानव व्यक्तित्व वाह्य संघर्ष की टकराहट का अपने सृजनात्मक केन्द्र पर अडिग रहकर सामना करता है तब वह अपने व्यक्तित्व को अधिक संघटित सामाजिक उपादेयता में प्राप्त करता है।

इस प्रकार के अपने विश्वासों को कविता में ढालते हुए अज्ञेय ने अपने अभिप्रेत अर्थ को जीवन की गहरी सारपूर्णता में अर्जित किया है इसीलिए उनकी कविता में यह मूल्यबोध अपनी सूक्ष्मता में व्यक्त होता है। यहाँ से यदि हम 'असाध्यवीणा' के धुरी भाव की खोज करें तो सम्भवतः वह सृजन को समर्पणशील आत्मोत्तीर्णता के द्वारा लेने का भाव है। यही 'आत्म' और 'आत्मेतर' का वह मिलन बिंदु है जहाँ वे एक दूसरे को अपना-अपना अर्जित 'विराट' सौंपते हैं और पूर्णकाम होते हैं। यह अलग प्रकार का आत्मदान है जो दाता को रिक्त नहीं करता बल्कि देय की महिमा और आलोक से दोनों को भर देता है, दाता को भी और पाने वाले को भी। 'असाध्यवीणा' में यह प्रक्रिया प्रियंवद और 'असाध्यवीणा' के बीच इसी गरिमापूर्ण संपूर्णता में घटित होती है। यहाँ आकर साधक, साधना और साध्य तीनों के भीतर वह संगीत बज उठता है जो आस्वादन की उस उच्च भूमि तक ले जाता है जहाँ जाकर सारी निजताएं अपने आकांक्षित सत्य का एक सघन आत्मिक एकांत में साक्षात्कार करती हैं। इस प्रकार 'असाध्यवीणा' में निहित आख्यान में सृजन प्रक्रिया का रूपक ध्यान या समाधि के द्वारा एक विलक्षण लोकोत्तरता में सम्पन्न होता है जिसमें 'लौकिक' या 'लौकिकता' के स्थूल अर्थ को लेकर चलना संभव नहीं है। वस्तुतः इस संसार को सच्चे अर्थ में सुसंस्कृत और मानवीय रूप में ढालने के स्वप्न और आकांक्षा को अज्ञेय मनुष्य में ऐसे आत्मविस्तार के द्वारा संभव होते देखते हैं। यहाँ से हम इस कविता में मनुष्य के उस रागबोध प्रज्ञा और साधना का रूप निष्पन्न होते देखते हैं जहाँ वह व्यापक सत्य के साक्षात्कार और तादात्म्य के योग्य हो पाता है। अकारण नहीं है कि 'असाध्यवीणा' को सुनते हुए सभी अपने व्यक्तित्व की तुच्छता द्वेष इत्यादि से मुक्त होते हैं और उसके भीतर अपने प्रिय स्वप्नों की छवि देखते हैं। 'आँगन के पार द्वार' शीर्षक काव्य संग्रह के तीन खण्ड हैं, 'अन्तः सलिला', 'चक्रांतशिला' और 'असाध्यवीणा'। तीनों खण्डों में रूपक और प्रतीक मिलजुल कर 'व्यापक सत्य' के अनिर्वचनीय साक्षात्कार बोध और अभिव्यक्ति को संभव करना चाहते हैं। 'अन्तः सलिला' में रेत रिक्त या सूखी हुई नहीं है उसके भीतर रस की निरन्तर गति है। अज्ञेय का प्रिय 'मौन' यहाँ अपने प्रेय और सार्थक रूप में मौजूद हैं, 'ज्ञेय' को सम्पूर्णता में जानने के लिए यह मौन या कि चरम एकांत आवश्यक है। जानने की सीमा से परे स्थित सत्य को जानने की साधना इस मौन में है, इसके बावजूद वह अव्यक्त रूप में ही बना रह सकता है। अज्ञेय इन कविताओं में बौद्ध दर्शन की निष्पत्तियों के बहुत निकट दिखाई पड़ते हैं। इस प्रकार 'अन्तः सलिला' में जीवन बाह्य रूपाकारों से अलग आंतरिक गतियों के अर्थ में जाना गया है और कई बार अर्थ को एक रहस्यमयता मिलती दिखाई देती है। ऐसा

लगता है कि अज्ञेय अस्तित्व की सार्थकता के प्रश्न को 'विराट' से उसके सम्बन्ध के नजदीक जाकर समझाना चाहते हैं। वह 'मछली' उनका प्रिय प्रतीक है जो सागर और आकाश के नील अनन्त के बीच अपनी जिजीविषा के संघर्ष के साथ अपनी प्राणवायु के लिए उछलती है और उन विराटों के बीच अपने अस्तित्व की सार्थकता बता जाती है। इस तरह उसका जीवन सागर और आकाश दोनों को अपनी समाई भर छूकर भी क्षुद्र नहीं है बल्कि अर्थवान बनता है। 'इयत्ता' के भीतर विराट के अर्थ को अज्ञेय इस प्रकार समझते हैं।

'चक्रांतशिला' शीर्षक खण्ड में एक 'चक्रमितशिला' का रूपक है। फ्रांस के ईसाई बेनेडिक्टी संप्रदाय के मठ 'पियेर-क्वि-वीर' से अज्ञेय को इस चक्रमण करती शिला का रूपक मिला, जिसे उन्होंने 'काल' के अर्थ में ग्रहण किया है। 'एक बूंद सहसा उछली' में वे लिखते हैं- 'वह पत्थर जो घूमता है, चक्रमित शिला, चक्रांतशिला.......... वह काल के अतिरिक्त और क्या है।' इस खण्ड में अज्ञेय पुनः तथागत करुणामय बुद्ध की उस छवि का साक्षात्कार करते हैं जो सारी विषमताओं पर अपनी धवल करुणामयी मुस्कान डालते हैं। इस प्रकार कालरुपी काक जो कुछ भी लिखता जाता है, उसे यह मुक्ति दूत मिटाता जाता है।

'आँगन के पार द्वार' का अर्थ समझते चलें। यह वह द्वार है जो हमें बाहर से जोड़ता है किंतु भीतर भी आँगन है यानी व्यक्ति के अर्जित विस्तार को व्यापक विस्तार से जोड़ता है। इस प्रकार 'आत्म' का 'आत्मेतर' से सम्बन्ध रागात्मक और परस्पर आलोक का सृजन करने वाला बनता दिखाई देता है।

इस कविता में अज्ञेय ने एक चीनी लोक कथा का आधार लिया है। यह लोककथा उस भारतीय रंग रूप के आख्यान में बदल जाती है जिसमें किरीटीतरु के अंश से गढ़ी गई वीणा वस्तुतः असाधारण साधक वज्रकीर्ति के जीवन भर की साधना थी। विडम्बना यह कि वीणा तो पूरी हुई किंतु उसके भीतर का संगीत जागता इसके पूर्व ही वज्रकीर्ति का जीवन शेष हो गया। पहले हम उस चीनी लोककथा को देखें। डॉ. रामदरश मिश्र ने सन्दर्भ दिया है कि 'ओकाकुरा की 'द बुक ऑफ ट्री' में 'टेमिंग ऑफ द हार्फ' शीर्षक कथा में किरी नामक विलक्षण वृक्ष का उल्लेख मिलता है। इसी वृक्ष के अंश को लेकर एक जादूगर ने वीणा को निर्मित किया। वीणा चीनी सम्राट के पास थी। सम्राट को इसके भीतर सोये असाधारण संगीत का भान था किंतु उसने देखा कि इस वीणा का संगीत जगा सकने में कोई कलाकार सक्षम नहीं हो सका। राजकुमार पीवो ने एकांत साधना के द्वारा उस उच्चतर भूमि को स्पर्श कर लिया कि जिससे वह 'वीणा' बज उठी। सम्राट के पूछने पर राजकुमार ने यह अद्भुत उत्तर दिया कि उसे कुछ भी ज्ञात नहीं है। सिवाय इसके कि वीणा और उसके बीच एक योग बन गया, अर्थात उनके बीच का पार्थक्य मिट गया और वीणा बज उठी।

अज्ञेय इस कथा को जापानी ज़ेन साधना के सोपानों में ढाल देते हैं। उनकी दृष्टि में कहीं यह रचना और रचयिता के सम्बन्ध को गहराई से समझा जाने वाला अर्थवान रूपक है। इसीलिए प्रायः इस कविता को सृजन प्रक्रिया की निष्पत्तियों के साथ मिलाकर देखा गया है।

व्याख्या - वज्रकीर्ति के जीवन भर की साधना का प्रतिफल हुई वीणा राजा के पास है। अनेक कलावंतो ने उस वीणा को बजाने का उद्यम किया है किंतु निष्फल हुए हैं। राजा पुनः नयी उम्मीद के साथ प्रियवंद का आवाह्न करते हैं और उस विलक्षण वीणा को प्रियवंद को सौंपते हैं। राजसभा टकटकी लगाए प्रियवंद को देख रही है। प्रियवंद कम विलक्षण नहीं है। केशकंबली गुफागेह वासी प्रियवंद भी अनन्य साधक हैं। अपनी विकट लंबी साधना के चलते ही वे केशकंबली हुए हैं। अज्ञेय प्रियवंद की विशेषताओं के सन्दर्भ से साधना की उन एकांत नीरव स्थितियों की ओर संकेत करते हैं जिसके द्वारा कोई साधक अपने मन आत्मा और व्यक्तित्व की उच्चतम भूमि को प्राप्त कर सकता है। यह उस उदात्त को अर्जित करना है जिसमें स्वार्थ, संकीर्णता और किसी प्रकार का कलुष नहीं है। एक प्रकार से यही एकांत समर्पण के योग्य मन आत्मा और प्रतिभा की तैयारी है। अज्ञेय इसे 'अहं' का विलयन कहते हैं। प्रियंवद के सम्मुख राजा उस किरीटीतरु की विशालता गहराई व्यापकता और ऊँचाई का स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। वस्तुतः यह वृक्ष अखण्ड गतिमान परम्परा ही नहीं है, बल्कि समूची संसृति है। इस वृक्ष के आदि मध्य अंत में सृष्टि का पूरा वैभव विस्तार और भविष्य समाहित है। कविता में स्पष्ट रूप से यह प्रसंग आता है कि उत्तराखण्ड के उस शांत आत्मिक वैभव से परिपूर्ण वन खण्ड में वह वृक्ष संस्कृति के पितर सरीखा स्थित था। उसकी वत्सलता, शांति गंभीरता और विस्तार को अज्ञेय ने अनूठे ढंग से कहा है। वृक्ष इतना विशाल कि उसके कंधों पर बादल सोते थे, कानों में हिमशिखर अपना रहस्य कह जाते थे। जड़ें पाताल में दूर तक गयीं थी कि जिन पर फण टिका कर वासुकि सोता था। वन प्रान्तर के वासी हिमवर्षा से बचने के लिए उसके विस्तृत आच्छादन के नीचे आ जाते थे। भालू, सिंह आदि उसकी छालों से अपनी पीठ रगड़ लेते। सबका आत्मीय पितर, गुरू और सखा सरीखा यह वृक्ष अपनी काया में ही नहीं अपितु अपनी आत्मा में भी ममता से भरा हुआ सबके आत्मविस्तार को संभव करने वाला है। राजा का विश्वास है कि वज्रकीर्ति की कठिन साधना व्यर्थ नहीं होगी। वीणा बजेगी अवश्य अगर कोई सच्चा साधक उसी ममता समर्पण और आत्मविस्तार में ढल कर उसे अपने अंक में लेगा। यह कह कर राजा वीणा प्रियंवद को सौंपते हैं। सभी अत्यधिक उत्सुकता जिज्ञासा और प्रतीक्षा पूर्वक इसे देख रहे हैं, अर्थात् राजा, रानी, प्रजा समेत पूर्ण सभा उत्सुक और आतुर हैं।

प्रियवंद अपने केश कंबल पर बैठे, वीणा उस पर रखकर प्राणों को उर्ध्वता में साधा, आँखें बंद की और वीणा को प्रणाम किया। यह समाधि की आरम्भिक अवस्था थी। प्रियवंद के द्वारा रचा हुआ वह एकांत जिसमें उन्हें सभी चीजों से हटा कर अपने ध्यान को चरम एकाग्रता में केन्द्रित करना था। अज्ञेय ने यहाँ लिखा है- 'अस्पर्श छुवन से छुए तार' अर्थात प्रियंवद ने अपनी गहन होती हुई समाधि में 'वीणा' को अपने ध्यान में धारण किया। 'वीणा' उनके ध्याता का एकांत

ध्येय थी और ध्यान को उस पर केन्द्रित करना उनकी ध्यान प्रक्रिया का आरम्भ था। ध्यान में डूबे हुए मद्धिम स्वर में प्रियंवद ने 'अहं' से मुक्त होने का प्रमाण भी दिया। उन्होंने कहा कि वे कलाकार नहीं बल्कि शिष्य साधक हैं। वे साधक होने की अपनी स्थिति को किसी महत्व बोध के साथ नहीं बताते। प्रियंवद उस महान वीणा की निकटता से रोमांचित है। 'वीणा' जो उस परम अव्यक्त सत्य की साक्षी है, वज्रकीर्ति की महान साधन का प्रतिफल है और वह महान किरीटी वृक्ष। ऐसी अभिमंत्रित वीणा के ध्यान ने प्रियंवद में विलक्षण हर्षाकुलता को भर दिया।

क्रमशः प्रियंवद ध्यान की गहराइयों में उतरते हैं। प्रियंवद मौन है, इस मौन के साथ सभा भी मौन है। प्रियंवद ने वीणा को गहरे समर्पण भरे प्रेम के साथ अपने अंक में ले लिया। इस अहंमुक्त साधक ने धीरे-धीरे झुकते हुए अपने माथे को वीणा के तारों पर टिका दिया। सभा की प्रतिक्रिया यह हुई कि क्या प्रियंवद सो गए, क्या वीणा का बजना सचमुच असंभव है?

अज्ञेय यहाँ कथा में नाटकीयता की युक्ति को सहेजते हैं। 'असाध्यवीणा' एक लंबी आख्यानपरक कविता है। इस युक्ति से कथा का नाटकीय तनाव बनता है।

कवि की दृष्टि प्रियंवद पर टिकती है और वह उस साधक की गहनतर होती हुई ध्यानावस्था के विषय में बताता है।

अज्ञेय ने अपनी कविताओं में प्रायः व्यक्तित्व के संघटन की बात कही है। इस प्रक्रिया के द्वारा व्यक्तित्व की सर्जनात्मक अर्थवत्ता बनती है। अपने व्यक्तित्व के एकांत साक्षात्कार के उन्हीं क्षणों में उसकी क्षमता का साक्षात्कार या आविष्कार किया जा सकता है। ज़ेन बुद्धिज्म द्वारा अर्जित सातोरी ध्यान पद्वति के अर्थ ने अज्ञेय को इसीलिए आकृष्ट किया। इस आत्म साक्षात्कार के द्वारा सबसे पहले आत्मपरिष्कृति रूप लेती है। इस कविता में भी प्रियंवद उस महान वीणा के स्वर को मुक्त करने लायक साधक होने की साधनावस्था में जब उतरते हैं तो आत्मपरिष्कार की भावभूमि को छूते हैं। एक स्पंदित एकांत का परिवेश है जो मौन से संभव है। शब्दों के निर्मम कोलाहल का थम जाना ही आत्मिक स्फुरण को गति प्रदान कर सकता है।

ध्यान दें कि सातोरी ध्यान पद्धति में निहित ध्यान की चारो अवस्थाओं का क्रमशः निरुपण 'असाध्यवीणा' में है। प्रथम अवस्था में ध्याता अपने अहं से मुक्त होकर विस्तृत भावभूमि के प्रति उन्मुख होता है। ऐसा करते हुए वह एक प्रकार की विस्मृति में चला जाता है जो समाधि की तरह है। इस समाधि में उसकी चेतना का ध्येय से सम्बन्ध होता है और उसकी विराटता और व्याप्ति को धारण करता है। तीसरी अवस्था में ध्याता और ध्येय का 'योग' अपनी अखंडता निर्मित करता है और चौथी अवस्था में ध्येय ध्याता के भीतर आविर्भूत होता है। यहाँ से हम 'प्रियंवद' के मौन समर्पण एकात्म और वीणा में संगीत अवतरण को समझ सकते हैं। इस प्रकार यह नीरव मौन की मुखरित महामौन तक की यात्रा है। इस समाधि के भीतर प्रियवंद की 'वीणा' के पितर कीरीटीतरू

से गहरी समर्पित एकात्मकता बनती है। इसके साथ ही किरीटीतरू अपने व्यापक विशद विलक्षण जीवनानुभवों के साथ प्रियंवद की स्मृति में प्रकट होता है। प्रियवंद उसकी स्मृतियों का आह्वान करते हुए कहते हैं कि सदियों, सहस्राब्दियों में असंख्य पतझरों के बाद नव-नव पल्लवनों ने जिसे निर्मित किया। जीवनानुभवों के ऐसे कितने ही वैविध्य हैं जिनका साक्षी है किरीटीतरू! बरसात की अंधेरी रातों में जुगनुओं ने जिसकी अपनी समवेत चमक से आरती उतारी। दिन को भँवरों ने अपनी गूंज से भर दिया। रात झिंगुरों ने अपने संगीत से सजाया और सवेरा अनगिनत प्रजातियों के पक्षियों के कलरव से भरता गया। उनका उल्लास उनकी क्रीड़ाएँ किरीटीतरू के सर्वांग में आनंद की विह्वलता भर देती हैं। प्रियंवद सम्बोधन देते हैं ओ दीर्घकाय! अर्थात् ऐसे प्रकृत स्वर संभार के आमोद से भरे हुए विशाल वृक्ष उस वन प्रदेश में सबसे सयाने पिता, मित्र, शरणदाता सरीखे महावृक्ष तुम्हारे भीतर वे तमाम वन्य ध्वनियाँ समाहित हैं, मैं चाहता हूँ कि वे समस्त मेरी अनुभूति में अवतरित हों, मैं तुम्हारी उस मुखरित साकारता को अपने ध्यान में धारण करूं। महावृक्ष का इस प्रकार आह्वान करते हुए प्रियवंद को पुनः अपनी लघुता का बोध होता है, कहते हैं उस साक्षात्कार और योग का साहस कैसे पाऊँ, वीणा में अवस्थित संगीत को बलात मुखरित करने की स्थिति प्रियवंद को काम्य नहीं है, वह उसे उस अद्भुत वीणा से छीनने की स्पर्धा से विरत होकर पुनः अहं के विलयन के साथ महावृक्ष को राग और समर्पण पूर्वक सम्बोधित करते हैं। वे उसकी वत्सल गोद का आह्वान करते हुए कहते हैं कि हे तुम पिता मुझे अपने शिशु की तरह सम्हालो, मेरी बालसुलभ किलकें तुम्हारे वत्सल स्पर्श की प्रसन्नता से भर जाएं। इस प्रकार प्रियंवद अपने अस्तित्व को शिशु की निश्छल प्रेममयी भावभूमि में ले आते हैं। वे उस महावृक्ष में व्याप्त संगीत का स्वर में प्रकट होने का आह्वान करते हैं। वह संगीत जो उनकी सांसो को अपनी लय से आनन्द की चरम 'विश्रांति' की भावभूमि में भरा-पूरा करेगा। वे पुनः उस महावृक्ष का आदर और प्रेम के साथ आह्वान करते हैं। यहाँ हम प्रियंवद और किरीटीतरू के बीच के वत्सल एकात्म को अनुभव कर सकते हैं। प्रियंवद वीणा के अंगी स्वरूप तरु को जो रसविद् और स्मृति और श्रुति का सार स्वरूप है, तू गा! तू गा! कह कर पुकारते हैं।

महावृक्ष अपने समस्त जीवनानुभवों व स्मृतियों सहित मुखर हो उठा है। तू गा! के मनुहार को गुनता हुआ सा वह प्रियंवद की साधना को स्वीकार कर अपनी स्मृतियों का पुनः पुनः साक्षात्कार करता प्रतीत होता है। यहाँ हम उसके विशाल और निरन्तर हुए अनुभवों की लड़ियों को क्रमशः खुलते देखते हैं। महावृक्ष की स्मृति में निर्मल प्रकृति के अनेक अनुभव हैं। विशाल वन प्रदेश के नैसर्गिक क्रियाकलापों में बदली भरे आकाश की कौंध, पत्तियों पर वर्षा की बूंदों की टप-टप ध्वनि, निस्तब्ध रात में महुए का टप-टप टपकना, शिशु पक्षियों का चौंक-चिहुंक जाना, शिलाओं पर बहते झरनों का द्रुत जल, उनका कल-कल स्वर संभार, शीतभरी रातों का कुहरा, उसे चीर कर आती गाँवों में उत्सव के वाद्य वृंद की आवाजें, गड़रिये की बांसुरी के खोये-खोये से स्वर, कठफोड़वा का अपनी लम्बी चोंच से काठ पर ठक-ठक करना, फुलसुंघनी की क्षिप्र-चंचल गतियाँ ढ़रते हुए ओसकणों

का हरसिंगार बन जाना, कुंजपक्षी की ध्वनियाँ, हंसों की पंक्तियाँ, चीड़ वनों में गंध उन्मद पतंग का ठिठकना टकराना, जलप्रपातों के स्वर, इन सबके भीतर निसर्ग की मुखरता, स्वरों के गतिरूप उसकी स्मृति में उतरते हैं।

इस क्रम में हम निरंतर दृश्यों में एक सूक्ष्म बदलाव देख सकते हैं। स्मृति के ऐसे आह्वान में जीवनानुभवों के शांत मृदुल कोमल ही नहीं भीषण रूप भी हैं। ये सभी प्रकृति के रूप हैं, स्वरों में नाना वैभव से सजी प्रकृति के इन रूपों में सुदूर पहाड़ों को घेरते आक्रान्त करते बढ़ते चले आते ऐसे काले बादल हैं जो हाथियों के समूह से लगते हैं, पानी का घुमड़ कर बढ़ना, करारों का नदी में टूट कर छप-छड़ाप गिरना, आंधियों की रोषभरी हुंकार, वृक्षों की डालों का टूट कर अलग हो जाना, ओले की तीखीमार, पाले से आहत घास का टूटना, शीत जमी मिट्टी का धूप की स्निग्धता में क्रमशः कोमल होना हिमवर्षा से चोटिल धरती पर हिम के फाहे जैसे, घाटियों में गिरती चट्टानों का शोर क्रमशः धीमा और शांत होता हुआ, पहाड़ों के बीच के समतल की हरी घासों के निकट मध्यम कद के वृक्षों और तालाबों पर सुबह-शाम वन पशुओं का जुटना और शब्द करना, वे विविध स्वर भिन्न-भिन्न पुकारों से, कहीं गर्जना, कहीं घुर घुराना, चीखना, भूकना या चिचियाना, नाना पशुओं के अपने-अपने स्वर का विलक्षण मेल-जोल, तालों में छाये कुमुदिनी और कमल के पत्तों पर तेजी से जलजन्तुओं का सरक जाना, मेढक की तेज छलांगों से उत्पन्न ध्वनि, वन प्रांतर के निकट से गुजरते रास्तों पर पथिक के घोड़ों की टापें अथवा मंद स्थिर गति से चलते भैंसों के भारी खुरों की आवाजें, स्वरों का यह बहुरंगी स्वरूप सबका सब महावृक्ष की स्मृति में घुलकर घुलता गया है। अति प्रातः का वह दृश्य भी जब क्षितिज से भोर की पहली किरण झांकती है और ओस की बूंदों में उसकी सिहरन और दीप्ति उतर आती है, मधुमक्खियों के गुंजार में अलसाई सी वे दुपहरियायें जब घास-फूस की असंख्य प्रजातियों के नाना पुष्प खिल उठते हैं, शांत सी संध्याएं जब तारों से अनछुई सी सिहरने लगती हैं कुछ ऐसे जैसे आकाश में अश्रुभरी आँखों वाली असंख्य बछड़ों वाली युवा धेनुओं के आशीष उस गोधूलि बेला को पुलकन में रच रहे हों। कीरीटीतरू का अनुराग भरा स्वीकार यह है कि उस महावृक्ष ये स्वर और दृश्य अपने वैभव में अचंचल कर देते हैं, प्रत्येक स्वर वृक्ष के अस्तित्व को अपनी लय में लीन कर लेता है, यह जीवन की विराट बहुरंगी छवियाँ हैं जो वृक्ष की अस्मिता को अपनी स्फूर्ति तरलता संगीत और तरंग में डुबा देती है। यह व्यापक व्याप्त जीवन के प्रतीक किरीटीतरू की विस्मृति या कि समाधि अवस्था है जो अपने जीवन को उस व्याप्ति और वैविध्य में घुला कर अर्थ पाती है। इसीलिए उसका सच यह है कि- 'मुझे स्मरण है पर मुझको मैं भूल गया हूँ।' यह भी कि ''मैं नहीं, नहीं मैं कहीं नहीं'', वृक्ष की यह उदात्त समाधि अवस्था प्रियंवद की चेतना को अपनी व्याप्ति और ऊँचाई सौंपती है और वे कातर होकर अपने गूंगेपन में उस स्वर ज्वार का आह्वान करते हैं। पुनः पुनः वे किरीटीतरू का उसके समृद्ध जीवनानुभवों से अखण्ड तादात्मय के लिए आवाहन करते हैं और उस समस्त अर्जित संगीत के

लय में ढल कर मुखर हो उठने की मनुहार करते हैं। 'अंग' में व्यापते अंगी को प्रियंवद इस तरह पुकारते हैं।

सघन समाधि में घटित होते इस आह्वान को अज्ञेय ने उसके उदात्त के अनुरूप ही शब्द दिये हैं। एक प्रकार से यहाँ साधना से साधना तक की अंतरंग यात्रा है। प्रियंवद की साधना वज्रकीर्ति की साधना को पूरा करने के लिए उस समग्र जीवन संगीत को टोहती है जिसका वैभव अपने जीवंत वैविध्य में किरीटीतरू में बसता है। एक सम्मोहन सा यहाँ बनता दिखाई देता है। सृजन की प्रक्रिया में निहित वह रहस्यमयता जिसका आत्मिक सा संवाद ही संभव है, यहाँ जैसे उस पूरे जादू की सृष्टि करती है और वीणा बज उठती है। उस संगीत को अज्ञेय ने स्वयंभू कहा है। उसके भीतर सृष्टा का अखण्ड मौन सोता है। सबके मर्म को गहराई तक जाकर झंकृत कर देने वाले संगीत के प्रभाव को भी अज्ञेय ने कुछ ऐसे देखा है कि प्रियंवद ही नहीं, राजा रानी, प्रजा समेत सभी उसमें एक साथ डूबते हैं, बिहारी के 'तंत्रीनाद कवित्तरस' वाले दोहे में आये 'सब अंग' से डूबने के अर्थ में ही डूबते हैं। किंतु उनका तिरना और पार लगना अपनी विशिष्ट निजताओं के अर्थ में ही होता है अर्थात् सभी अपने चरम काम्य या अभीष्ट का अर्थ ग्रहण करते हैं। इस प्रकार अज्ञेय यहाँ 'आत्मविलयन' के अपने उन्हीं आदर्शों को पुष्ट करते हैं जिनके अनुसार व्यक्तित्व को निःशेष करके समर्पित होना अर्थवान नहीं है बल्कि 'अस्मिता' के सृजनात्मक विशिष्ट अर्थ को अर्जित करने के बाद किया गया समर्पण ही मूल्यवान होता है। इस कविता में भी आप देखिए कि राजा ने जहाँ जयदेवी का मंगलगान सुना और महत्वाकांक्षा द्वेष चाटुकारिता नये-पुराने बैर से मुक्त होकर व्यक्तित्व का वह विरेचन अनुभव किया कि जिसमें धर्म ही प्रधान हो उठा और राज्य का दायित्व फूल सा हलका हो आया। इसी तरह रानी ने वस्त्राभूषणों की निरर्थकता अनुभव की, जीवन का प्रकाश केवल वह समर्पित नेह है जिसमें विश्वास है आश्वस्ति है अनन्यता है रस है। रानी भी निर्भार होती हैं। देखा जाए तो श्रोताओं ने स्वर को अपने-अपने जीवनानुभवों के अनुरूप सुना। यहाँ अज्ञेय ने साधना और रचना की जीवन सापेक्षता को देखा है। जिसका जैसा जीवन था, जिसे जो काम्य था प्रेय था, उसने उसका वैसा साक्षात्कार किया। अज्ञेय ने यहाँ काव्यात्मक ब्यौरे दिए हैं जिनका अर्थ ओझल या अमूर्त नहीं है। इस प्रक्रिया से गुजर कर 'इयत्ता सबकी अलग-अलग जागी/संघीत हुई/पा गई विलय/'

अतः विलय पाना ही ध्येय है किंतु संघीत होकर विलय पाना ही श्रेयस्कर है। सभी श्रोता उस समाधिभाव से संयुक्त होकर ही संघीत हुए। प्रियंवद के साथ उन्होंने भी किरीटीतरू को उसकी समग्रता के साथ आत्मसात किया, इस तरह एक सेतु बना। अज्ञेय का बल 'महाशून्य' पर है। इस 'महाशून्य' में महामौन अवस्थित है। राजा और प्रजा की अत्यधिक प्रशंसा में भी अविचलित रहते हुए प्रियंवद ने पुनः वीणा को बजा देने का श्रेय स्वीकार नहीं किया बल्कि राजकुमार पीवों की तरह ही अपने एकांत आत्म विस्मरण, समर्पण और महाशून्य के अनिर्वचनीय अनुभव के विषय में बताया। यह भी कहा कि वही सबके भीतर है जब सब अपने भीतर उससे एकात्म होने की लय

में स्थित हो जाते हैं तब वह गा उठता है। प्रियंवद ने उस 'महामौन' को अनाप्त अद्रवित और अप्रमेय जैसे विशेषण दिये हैं। इस प्रकार वह संगीत प्रियवंद सहित पूरे उपस्थित समाज को चेतना की उस उच्चतम भूमि पर ले गया जिसके कारण युग पलट गया।

इस प्रकार हम देखते है कि इस कविता में आया आख्यान पूरी तरह से रूपकात्मक है। किरीटीतरू, वज्रकीर्ति वीणा, प्रियंवद आदि सभी जीवनानुभवों की व्याप्ति तक मनुष्य की गति और उसके आत्मिक विरेचन की आवश्यकता की ओर संकेत करते हैं। एक प्रकार से यह उत्कृष्ट रचना के लिए जरूरी जीवन सम्बद्धता की भी बात है। अज्ञेय ने रचना में सत्यान्वेषी दृष्टि के साथ धंसना स्वीकार किया है। इस सत्य को जानने और व्यक्त करने के लिए उच्चकोटि की रचनात्मक निस्पृहता को भी जरूरी माना है। इस प्रकार अज्ञेय एक आवेगमय वस्तुनिष्ठता पर भी ध्यान देते हैं।

अज्ञेय की काव्यभाषा का रूझान शब्दान्वेषण की और प्रायः देखा गया है। इस दृष्टि से वे तत्सम के अतिरिक्त तद्भव देशज यहाँ तक कि ग्रामज शब्दों का भी प्रयोग करते हैं। कई बार वे शब्दों की नई अर्थछवियों को भी खोजते हैं। भाषा को अज्ञेय काव्यात्मक लचीलेपन में ढालते दिखाई देते हैं। इस प्रकार अज्ञेय की काव्यभाषा उनके भाव वैविध्य को व्यक्त करने में पूरी तरह से सक्षम है। रुपकों, प्रतीकों के साथ-साथ नये उपमानों के प्रयोग की दृष्टि से भी अज्ञेय की काव्यभाषा समर्थ है। प्रकृति के अछूते बिंबों ने 'असाध्यवीणा' की भाषा को खास तौर पर सजाया है। 'कविता' में काव्योचित तरलता और आवेग को प्रतिफलित करने के लिए अज्ञेय ने 'गद्य' को अर्थ की लय से संवारा है। इस लय की खासियत यह है कि यह शब्दों के निकटवर्ती अंतरालों में अर्थ की व्यापक संभावनाएं भर देती है।

अभ्यास प्रश्न: 2

- अपने उत्तर नीचे दिये गए स्थानों में दीजिए।
- इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) दो या तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए

क) अज्ञेय के लिए 'संवेदना' का क्या अर्थ है?

ख) असाध्यवीणा का केन्द्रीय भाव क्या है?

----

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

क) असाध्यवीणा में वर्णित आख्यान का आधार एक .... है।

ख) असाध्यवीणा का निर्माण .... ने किया था।

ग) 'आँगन के पार द्वार' शीर्षक काव्य संग्रह के तीन खण्ड हैं

(1)............................(2) ....(3) ....

घ) 'असाध्यवीणा' की साधना में .... पद्धति का अनुकरण है।

3) पाँच या छः पंक्तियों में उत्तर दीजिए-

क) 'चक्रमितशिला' से क्या तात्पर्य है?

ख) चीनी लोककथा के विषय में बताएं

ग) किरीटीतरू के विषय में बताएं

घ) वीणा से जुड़ने के लिए प्रियंवद ने क्या किया?

----

4) बहुविकल्पीय प्रश्न :-

क) राजा ने वीणा बजाने के लिए किसे आमंत्रित किया।

i) 'पीवो' नामक राजकुमार को ii) वज्रकीर्ति को iii) प्रियंवद को

ख) सातोरी ध्यान पद्धति में ध्यान की कितनी अवस्थाएं हैं

i) दो ii)चार iii) पाँच

ग) वीणा में सोये संगीत को किस तरह जगाया गया?

i) अहं के सम्पूर्ण विलयन द्वारा ii) याचना करके iii) आह्वान करके

9.6 सारांश

अज्ञेय के सामने सबसे बड़ी चुनौती उनके समय का वह यथार्थ है जिसने मनुष्य की रागात्मक संवेदना को सबसे ज्यादा निर्मूल किया है। मानवीय निकटताओं और हृदय की सहज स्वाभाविकताओं से कटने के लिए अभिशप्त होना उसका सबसे बड़ा संकट है। मनुष्य की चेतना और व्यवहार को खंडित करने वाले इस यथार्थ की विसंगति और प्रहार के जवाब में अज्ञेय ने उसकी रागात्मकता और सामाजिक जवाबदेही से सुसंस्कृत मानवीय रूपों के लिए संघर्ष की नई जमीन को अपने साहित्य में लगातार खोजा है। 'असाध्यवीणा' शीर्षक कविता की अन्तर्वस्तु संवेदना और भाषा के स्तर पर संघटित व्यक्तित्व के लिए जरूरी प्रक्रियाओं की अभिव्यक्ति करती है।

9.7 शब्दावली

4. निर्भार - भार रहित

4. अभीष्ट - चाहा हुआ

4. स्फुरण - अंग का फड़कना, उमगना, उमंग पूरित होना

4. आत्म विस्मरण - स्वयं को भूल जाना

8. विरेचन - शुद्धि

9. अप्रमेय	-	जो नापा न जा सके
7. खगकुल	-	पक्षियों के समूह
8. दीर्घकाय	-	विशाल शरीर वाला
9. अभिमंत्रित	-	मंत्र द्वारा संस्कारित किया गया
10. अनिमेष	-	निरन्तर, पलक झपकाये बिना

9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न- 1

1) दो-तीन पंक्तियों के उत्तर

क) 'असाध्यवीणा शीर्षक कविता का मूल मंतव्य: 'असाध्यवीणा' सृजन प्रक्रिया का रूपक है। सृजन के लिए रचनाकार का सम्पूर्ण समर्पण जरूरी है। इसके द्वारा ही वस्तु का समग्र रचनात्मक साक्षात्कार संभव है।

ख) अन्वेषण को अज्ञेय ने रचनाकार के लिए जरूरी रचनात्मक युक्ति माना है। इसके द्वारा नये भावबोध का अनुभव और उसके अनुरूप संवेदना और भाषा का नयापन संभव है।

ग) अज्ञेय ने सृजन के लिए रचनाकार में उच्चतम भावभूमि हेतु साधना को अनिवार्य माना है। इसके द्वारा वह संघटित होता है और रचनात्मक अस्मिता को भी अर्जित करता है।

घ) अज्ञेय का जन्म 07 मार्च 191को कुशीनगर के पुरातात्विक खनन शिविर में हुआ, इनके पिता पं. हीरानन्द शास्त्री पुरातत्त्व विभाग के उच्चाधिकारी थे।

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति:

क) 'असाध्यवीणा' आँगन के पार द्वार' शीर्षक काव्यसंग्रह में संकलित कविता है।

ख) अज्ञेय के नाटक का शीर्षक है 'उत्तर प्रियदर्शी'

ग) अज्ञेय को 'आँगन के पार' शीर्षक कृति पर साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला।

घ) अज्ञेय, चंद्रशेखर आजाद, बोहरा और सुखदेव के साथ क्रान्तिकारी गतिविधियों में सक्रिय थे।

3) पाँच या छः पंक्तियों में उत्तर:

क) 'आँगन के पार द्वार' संग्रह की कविताओं का झुकाव उस विशिष्ट आध्यात्मिकता की ओर है जिसके केन्द्र में मनुष्य है। इसे ही अज्ञेय का नवरहस्यवाद भी कहा गया है यहाँ कवि 'आत्म' को असीम को धारण कर सकने की क्षमता में परिष्कृत करना चाहता है, यह 'मम' की ममेतर से जुड़ने की वह प्रक्रिया है जो आत्म को 'विराटता' और 'विराटता' को आत्म का वैशिष्ट्य सौंपती है।

ख) अज्ञेय के लिए अस्मिताविलय का अर्थ 'मम' 'ममेतर' अर्थात 'आत्म' और 'व्यापक' का ऐसा सम्बन्ध है जिसके द्वारा 'अस्मिता' व्यापक में निःशेष न होकर व्यापक के प्रकाश से आलोकित सृजनात्मक और सार्थक होती है। समुद्र की सतह से हवा का बुलबुला पीने के लिए उछली मछली में केवल जिजीविषा नहीं बल्कि सागर और आकाश के विराट से जुड़ कर मिला स्पंदन भी है, इसी तरह सूर्य की किरणें एक बूंद को अपने आलोक में भर देती हैं।

4) बहुविकल्पीय प्रश्न:-

क) iii) तारसप्तक ख) iii) अरे यायावर रहेगा याद!

अभ्यास प्रश्न 2 :-

1) दो या तीन पंक्तियों में उत्तर-

क) अज्ञेय के लिए संवेदना वह यंत्र है जिसके द्वारा मनुष्य शेष संसार के अर्थ और यथार्थ से अपना सम्बन्ध जोड़ता है।

ख) 'असाध्यवीणा' के केन्द्र में सृजन प्रक्रिया है जो आत्म और वस्तु के बीच सम्पूर्ण समर्पण से सम्पन्न होती है।

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति

क) 'असाध्यवीणा में वर्णित आख्यान का आधार एक चीनी लोककथा है।

ख) 'असाध्यवीणा' का निर्माण वज्रकीर्ति ने किया था।

ग) 'आँगन के पार द्वार' काव्य संग्रह के तीन खण्ड हैं-

(1) 'अन्तः सलिला, (2) 'चक्रान्तशिला', और (3) 'असाध्यवीणा'

घ) 'असाध्यवीणा' की साधना में सातोरी ध्यान पद्धति का अनुकरण है।

3) पाँच या छः पंक्तियों में उत्तर-

क) 'चक्रमित शिला' एक घूमती हुई शिला है जिसे अज्ञेय ने काल की गति के रूपक के रूप में ग्रहण किया है। फ्रांस के ईसाई बेनेडिक्टी संप्रदाय के मठ पियेरे-क्वि-वीर, के प्रभाव में अज्ञेय ने इसके अर्थ से संगति अनुभव की। यह चक्रमितशिला ही चक्रांतशिला है।

4) बहुविकल्पीय प्रश्न :-

क) iii) प्रियंवद को   ख) ii)चार   ग) i) अहं के सम्पूर्ण विलयन द्वारा

9.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

4. वात्स्यायन, सच्चिदानंद हीरानंद 'अज्ञेय, आँगन के पार द्वार।

4. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या।

4. बाजपेई, नन्द दुलारे, आधुनिक साहित्य: नया साहित्य नये प्रश्न।

4. बांदिवडेकर, चंद्रकांत, अज्ञेय की कविता: एक मूल्यांकन।

8. माथुर, गिरिजा कुमार, नई कविता: सीमाए और संभावनाएं।

9. शाह, रमेशचन्द्र (सम्पादक), असाध्य वीणा और अज्ञेय।

9.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4. असाध्य वीणा की रचनात्मक उपलब्धि की विस्तार से व्याख्या कीजिए।

इकाई 10 मुक्तिबोध- पाठ एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 कवि परिचय
    10.4.1 रचनाकार – व्यक्तित्व
    10.4.2 रचनाएँ
        10.4.4.1 पद्य रचनाएँ
        10.4.4.2 गद्य रचनाएँ
10.4 काव्य संवेदना
    10.4.1 काव्य यात्रा का विकास
    10.4.2 मार्क्सवादी जीवन दृष्टि एवम् आस्था
    10.4.3 मानवीय संवेदना
    10.4.4 जीवन संघर्ष एवं संत्रास का चित्रण तथा यथार्थ बोध
    10.4.5 जिजीविषा एवं आस्था
    10.4.6 आत्मचेतन एवं आत्मविश्लेषण
    10.4.7 मानव मूल्य
    10.4.8 युग बोध
    10.4.9 जीवन दर्शन - काव्य दृष्टि
10.5 शिल्प विधान
    10.8.1 भाषा की सर्जनात्मकता
    10.8.2 बिम्ब विधान
    10.8.3 प्रतीक
    10.8.4 फैंटेसी शिल्प
    10.8.5 छंद एवं लय
10.6 काव्य वाचन तथा संदर्भ सहित व्याख्या
10.7 सारांश
10.8 शब्दावली
10.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.11 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.12 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

मुक्तिबोध नयी कविता के प्रतिनिधि कवि हैं उनका सम्पूर्ण रचना संसार समाज व्यवस्था, समकालीन सच्चाइयों, व्यवस्थागत विसंगतियों, अन्तर्विरोधों के बीच जन-जन की पीड़ा एवम् विक्षोभ का आलेख है। जिए एवं भोगे जाने वाले जीवन की वास्तविकताओं एवं मानवीय सम्भावनाओं के यर्थाथ चित्रण के कारण उनका रचना संसार समसामयिक जीवन का प्रामाणिक दस्तावेज है, मुक्तिबोध ने अपनी कविताओं में व्यवस्था की दुरभिसंधियों में पिसते हुए आम आदमी की पीड़ा को अभिव्यक्ति दी है। उस युगीन परिवेश को कविता में उतारा है जिसमें मानवीय अन्तःकरण क्षत- विक्षत है। शोषण के भयानक दुष्चक्रों के बीच पिसते व्यक्ति की त्रासदी की गाथाएँ मुक्तिबोध की लम्बी कविताओं के कथ्य रहे हैं। उनकी रचनाएँ मानवीय अन्तःकरण की विविध दशाओं एवम मानवीय सम्भावनाओं का मार्मिक दस्तावेज हैं। वे मार्क्सवादी जीवन दृष्टि के प्रति अपनी वैचारिक आस्था, शोषित पीड़ित मानवों के प्रति गहन निष्ठा एवं भविष्य के प्रति आशान्वित रहने के कारण सच्चे मानवतावादी कवि हैं।

सपने से आते हैं

किसी दिन पुराने मुहल्ले सब साफ होंगे।

मानव घुकघुकी में

सुनहरे रक्त का दिवस खिल खिलाएगा।

(मुक्तिबोध स्वनावली भाग 2-232)

मुक्तिबोध ने संवेदना एवम् शिल्प दोनों ही धरातलों पर काव्य सर्जना की विशिष्टिताओं को मापदण्ड के रूप में साहित्य धरातल पर रखा, जिसके आधार पर समकालीन साहित्य का उचित मूल्याँकन सम्भव हो सका तथा उसे नयी पहचान प्राप्त हो सकी। आगे के बिन्दुओं में हम मुक्तिबोध काव्य की विशेषताओं का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- मुक्तिबोध के जीवन, व्यक्तित्व, उनकी सृजन यात्रा एवम् युगीन परिवेश से परिचित हो सकेंगे।
- मुक्तिबोध की रचनाओं के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- नयी कविता के प्रमुख कवि के रूप में मुक्तिबोध की रचनाधर्मिता एवं काव्य संवेदना का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- मुक्तिबोध की काव्य यात्रा के विभिन्न पड़ाव तथा मानवीय मूल्य एवं मानवीय सरोकारों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता से परिचित हो सकेंगे।
- कवि की मूल संवेदना, युग यथार्थ के प्रति आग्रह, तनाव, अन्तर्द्वन्द जीवन संघर्ष, जनवादी काव्य दृष्टि एवं मानवीय संकल्पनाओं के प्रति आस्था आदि प्रमुख काव्य प्रवृतियों से परिचित हो सकेंगे।
- मुक्तिबोध के काव्य का शिल्प विधान, काव्य भाषा, बिम्ब विधान प्रतीक, छंद, लय तथा मुक्तिबोध के काव्य शिल्प का सबसे महत्वपूर्ण रूप फेंटेसी का शिल्प जिसे अपनाकर मुक्तिबोध ने सम्पूर्ण विचारों की अभिव्यक्ति की है, आदि शिल्पगत प्रयोगों को गहराई से समझ सकेगें।
- मुक्तिबोध किन अर्थों में अपने समकालीन कवियों से भिन्न हैं? तथा नयी कविता के बीच उनका क्या महत्व है? समझ सकेंगे।
- मुक्तिबोध का नये साहित्य के प्रमुख रचनाकार के रूप में मूल्याँकन कर सकेगे।

10.3 कवि परिचय

मुक्तिबोध का पूरा नाम है गजानन माधव मुक्तिबोध, मुक्तिबोध का जन्म 13 नवम्बर 1917 की रात 2 बजे श्यौपुर जिला मुरैना में कुलकर्णी ब्राह्मण माधवराव जी के घर हुआ था। पूर्व में इनके पूर्वज महाराष्ट्र जलगाँव खान्देश में रहते थे, इनके किसी विद्वान पूर्वज ने खिलजीकाल में 'मुक्तिबोध' नाम का आध्यात्मिक ग्रन्थ लिखा था। कालान्तर में उसी आधार पर इनके वंशज मुक्तिबोध संज्ञा से अभिहित किए जाने लगे।

पिता श्री माधवराव मुक्तिबोध तत्कालीन ग्वालियर राज्य के पुलिस विभाग में पुलिस सब इन्सपेक्टर के पद पर कार्यरत थे। पिता के बार-बार स्थानान्तरण के कारण मुक्तिबोध की प्रारम्भिक शिक्षा अस्त व्यस्त ढंग से हुई। उन्हें उज्जैन से 1930 में दी गयी ग्वालियर बोर्ड की मिडिल परीक्षा में असफलता का मुँह देखना पड़ा। 1935 में माधव कालेज उज्जैन से इण्टरमीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण की। 1938 में इन्दौर के होल्कर कालेज से बी0ए0 उत्तीर्ण करने के साथ कविता के प्रति रुचि बढ़ी। सन् 1939 में उन्होंने पारिवारिक असहमति एवं सामाजिक अवरोधों का तिरस्कार कर प्रेम विवाह किया। 1940 में मुक्तिबोध शुजालपुर मण्डी में 'शारदा शिक्षा सदन' में अध्यापक हो गये। किन्तु यहीं से उनके जीवन में दुःख, अभाव एवम् संघर्ष की कहानी की शुरूआत भी हो गयी।

1943 में हिन्दी साहित्य के महत्वपूर्ण काव्य संकलन 'तार सप्तक' का प्रकाशन हुआ जिसमें मुक्तिबोध की कविताएं छपी। मुक्तिबोध इसी बीच इन्दौर से उज्जैन चले गए। बेहतर जीवन जीने की लालसा ने अध्यापकी से पत्रकारिता की ओर आकर्षित किया। पर पत्रकारिता के क्षेत्र ने उनके जीवन में अधिक भटकाव दिया। जीवन में स्थिरता की चाह में एम0ए0 की परीक्षा दी। 1959 में एम0ए0 करने के चार साल उपरान्त उनकी नियुक्ति राजनाँदगाव में प्राध्यापक के रूप में हो गयी। वहाँ का वातावरण सुखद था, अतः मुक्तिबोध ने सफलतम कविताओं की रचना यहाँ की। इन्हीं दिनों मुक्तिबोध ने 'ब्रह्मराक्षस', 'औराग उटांग', 'अंधेरे में' की रचना की तथा लिखा ''जिन्दगी बहुत तल्ख़ है लेकिन मानव की मिठास का क्या कहना। जी होता है सारी जिन्दगी एक घूँट में पी ली जाए।'' 1962 में जीवन की एक विद्रूप घटना ने मुक्तिबोध की जीवन शक्ति को तोड़ दिया। उनकी पुस्तक 'भारत इतिहास और संस्कृति' पर मध्यप्रदेश सरकार ने प्रतिबन्ध लगा दिया। इसी के पश्चात 17 फरवरी 1964 को मुक्तिबोध मैनिनजाइटिस नामक घातक बीमारी से पीड़ित हो गए। उन्हें पक्षाघात का सामना करना पड़ा। अपनी अदम्य जीवन शक्ति के आधार पर वह कुछ दिनों मौत से लड़ते रहे अंततः 1सितम्बर 1964 में मौत जीत गयी उनकी जिजीविषा मृत्यु के सम्मुख हार गयी।

10.4.1 रचनाकार का व्यक्तित्व

मुक्तिबोध के कवि तथा मुक्तिबोध एक मनुष्य के बीच किसी प्रकार की दूरी नहीं है। उन्होंने स्पष्ट लिखा था -

''गलत के खिलाफ नित

सही की तलाशमें

इतना उलझ जाता हूँ कि

जिन्दगी का जहर नहीं

लिखने की स्याही मैं

पीता हूँ।''

उनके बाह्य व्यक्तित्व के विषय में गौरीशंकर लहरी ने लिखा है ''लम्बा डील, दुबला पतला शरीर, हड्डी की प्रधानता से मांस का भाग दबा, हाथ का ऊँगलियाँ और हथेली बिल्कुल लुचई सी लचीली और मुलायम। छाती में इतने बाल कि जंगल। चेहरे में सूची भेद्य आँखें, बड़ी-बड़ी जिनमें भावुकता तथा भावावेश का टूर्नामेंट। माथा खूब फैला हुआ कि भाग्यवान के साइनबोर्ड जैसा। साँवली छब में त्वचा का स्वभावतः रंग व्यक्त होने के साथ मानव की छाती पर पड़ने वाली चोटों का व्यापक रंग चढ़ा था। समुंदर का गर्जन साथ में सिमटा- सिमटा था जो तब मालूम होता जब अनाचार, अशोभन और असंस्कृत के प्रति उनके नथुने फड़क उठते थे।''

चाय और काफी के प्यालों में डूबकर मुक्तिबोध खुद को बौद्धिक परिश्रम के लिए तैयार करते। मुक्तिबोध अत्यन्त भावुक एवं सरल प्रकृति के इंसान थे। अपने मित्रों को लिखे पत्र उनके व्यक्तित्व की भावुकता को प्रदर्शित करते हैं। मुक्तिबोध के व्यक्तित्व में विद्रोह की भावना समग्रता में विद्यमान थी। अपनी प्रवृति से वह घुमक्कड़ प्रकृति के इंसान थे। जिस प्राकृतिक वातावरण को उन्होंने घूम कर, भटक कर देखा था उसका उपयोग उन्होंने कविताओं में किया। उन्हें जो जीवन जीने हेतु प्राप्त हुआ उसमें तनाव, संघर्ष, अन्तर्द्वन्द, विक्षोभ, आवेग घुलते रहे तथा कविता के कैनवास पर यह सब एक विशाल फैंटेसी के रूप में उभरते गए। अपने रास्ते की प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष बाधाओं को चुनौती देते हुए, जीवन के कटु आघातों को हृदय पर झेलते हुए वे हमेशा सृजनरत रहे। श्री के पार्थ सारथी के शब्दों में ''वह मात्र एक मनुष्य ही नहीं थे वरन मनुष्य की एक संस्था थे। वह दार्शनिक शिक्षक, एक कवि एवं इतिहासकार थे। वह विद्वानों के बीच विद्वान राजनीतिज्ञों में राजनीतिज्ञ, शिक्षकों में शिक्षक और अपने एकान्त में और कार्य करते हुए पीड़ित मानवता की समग्रता के रूप थे। वह विरोधी प्रवृतियों के संकलन थे, वह एक रोमानी रहस्यवादी थे जो धरती के पुत्र की तरह रहते थे। वह प्रतिभाशाली, नैतिक मूल्यों के प्रति आस्थावान धार्मिक विद्रोही थे जो जीवित परम्पराओं में आस्था रखते थे लेकिन जिन्हें रहस्यवादी मूर्च्छाओं से दूर रखना कठिन लगता था। उनके पास जीवन का गहन दर्शन था। वह निरन्तर सोचते रहे कि दुःख दैन्य जैसी जीवन

की विषम परिस्थितियों में व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास कैसे हो और फिर भी समाज में रहना उन्हें प्रीतिकर लगता था। वह इतने अधिक व्यक्तिवादी कि किसी भी पार्टी अथवा दल में सम्मिलित नहीं हुए दूसरी ओर उनमें ऐसा व्यक्तिवाद था जो स्वयं में सारे विश्व को समाए रखता है।

किसी भी साहित्यकार के रचनाशील व्यक्तित्व के अन्तर्गत उसकी विचारधारा, जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण, उसका ज्ञान कोश, उसकी अनुभूतियाँ, उसका चरित्र, उसकी वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक स्थिति, उसकी अभिरूचियाँ, उसके जीवन संघर्ष एवम् उसके व्यवहार आदि के समन्वित रूप को लिया जाता है। इस दृष्टि से मुक्तिबोध की कविताओं की बनावट में उनका समग्र व्यक्तित्व अनुस्यूत है। मुक्तिबोध के शब्दों में ''जो परिवार के मूल्य होंगे वे जीवन में होंगे ही और वे साहित्य में भी उतरेंगे। यह सही है कि साहित्य में आकर उनकी रूपरेखा बदल जाएगी किन्तु उनके तत्व कैसे बदलेंगे। जिन्दगी के जो रूख हैं, जो रवैये हैं, जो एटीट्यूट हैं वे साहित्य में अवश्य प्रकट होंगे।'' मुक्तिबोध से स्पष्ट कहा था कि नयी कविता वैविध्यमय जीवन के प्रति आत्म चेतस व्यक्ति की प्रतिक्रिया है। मुक्तिबोध का सृजनधर्मी व्यक्तित्व नयी प्रगति, नवीनमूल्य, जन-जन के प्रति अत्यन्त सजग एवं सतर्क है। मानवीय जीवन की विविध संकल्पनाओं से पूर्ण है। मानवीय संवेदना उनकी काव्यचेतना का मूलाधार है।

10.4.2 रचनाएँ

10.4.4.4. काव्य

- चाँद का मुँह टेड़ा है
- भूरी भूरी खाक धूल

10.4.4.2 आलोचनात्मक

- कामायनी: एक पुनर्विचार
- भारत: इतिहास और संस्कृति
- नयी कविता का आत्म संघर्ष तथा अन्य निबन्ध
- नये साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र
- एक साहित्यिक की डायरी

कथा साहित्य

- काठ का सपना

- विपात्र
- सतह से ऊपर उठता आदमी

1980 में नेमिचन्द्र जैने के सम्पादकत्व में छः खण्डों में प्रकाशित 'मुक्तिबोध रचनावली' में मुक्तिबोध की समस्त रचनाएँ संग्रहित कर प्रकाशित की गयी हैं -

मुक्तिबोध रचनावली - प्रथम खण्ड - 1935 से 1956 तक की कविताएँ

मुक्तिबोध रचनावली - द्वितीय खण्ड - 1957 से 1964 तक की कविताएँ

मुक्तिबोध रचनावली - तृतीय खण्ड- 1936 से 1963 तक रचित कथात्मक लेख

मुक्तिबोध रचनावली - पंचम खण्ड -नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध, नए साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र

मुक्तिबोध रचनावली - षष्टम खण्ड - पत्र पत्रिकाओं में लिखे आलेख एवं मित्रो को लिखे पत्र

अभ्यास प्रश्न 1

1. मुक्तिबोध का पूरा नाम लिखिए।

....
....
....
....

2. मुक्तिबोध के दो काव्य सग्रहों के नाम लिखिए।

....
....
....
....

3. मुक्तिबोध की कविताएँ सर्वप्रथम हिन्दी साहित्य के किस महत्वपूर्ण संकलन में प्रकाशित हुई?

....
....
....
....

4. तत्कालीन मध्य प्रदेश सरकार ने मुक्तिबोध की किस पुस्तक को प्रतिबन्धित किया।

....
....
....
....

5. मुक्तिबोध के व्यक्तित्व की तीन विशेषताएँ बताइए।

....
....
....
....

10.4. काव्य संवेदना

10.4.1 काव्य यात्रा का विकास

प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन काल में विभिन्न चिन्तकों, विचारकों, महापुरुषों, जीवन दर्शनों से प्रभावित होकर अपनी जीवन दृष्टि का निर्माण करता है। कवि तथा रचनाकार के संदर्भ में यह प्रभाव उसकी कृतियों में पूर्णतः परिलक्षित होता है। जीवन के विविध पड़ावों में विभिन्न विचारधाराओं से प्रभावित कवि व्यक्तित्व का निर्माण होता चला जाता है। उसकी रचनाओं का स्पष्ट विकास क्रम सामने आता है। मुक्तिबोध की सम्पूर्ण रचनाओं में उनकी उत्तरोत्तर विकासमान जीवन दृष्टि का स्पष्ट परिचय मिलता है। समय तथा जीवन दृष्टि के आधार पर मुक्तिबोध की रचनाओं को निम्न क्रम दिया जा सकता है।

4. प्रारम्भिक रचनाएँ - 1935 से 1939 तक की छायावादी जीवन दृष्टि तथा एक तरूणकवि का स्वप्निल लेखन।

4. तार सप्तक एवम् समकालीन रचनाएँ- 1940 से 1948 तक वर्गसॉ के चिन्तन से प्रभावित किन्तु एक निजी मुहावरे की खोज।

4. मुक्तिबोध की मध्यकालीन रचनाएँ- 1948से 1956 मार्क्सवादी जीवन दृष्टि एवम् कविता की प्रखर सर्जनात्मकता।

4. मुक्तिबोध की उत्तरकालीन रचनाएँ- 1956 से 1964 तक मानवतावादी जीवन दृष्टि एवम् लम्बी कविताओं की सर्जना।

मुक्तिबोध की काव्य संवेदपना, भावबोध एवं वैचारिकता को आधार बनाकर उनकी रचनाओं का मूल्यांकन इस प्रकार भी किया जा सकता है।

4. वैयक्तिक सुख-दुख से अनुप्रेरित भावप्रवण रचनाएँ।

4. वर्गसाँ के चिन्तन से प्रभावित रचनाएँ

4. मार्क्सवादी चेतना से प्रभावित रचनाएँ

4. आत्मान्वेषण तथा आत्मविश्लेषण परक रचनाएँ

8. विशुद्ध मानवतावादी रचनाएँ।

मुक्तिबोध की प्रारम्भिक रचनाएँ प्रेम, सौन्दर्य, श्रृंगार की भावनाओं से अभिप्रेरित हैं। मुक्तिबोध ने तार सप्तक की भूमिका में मालवे की प्राकृतिक सौन्दर्य को सृजन की आद्यप्रेरणा स्वीकार किया। जीवन में क्रियाशील तथा रचना शील होने हेतु उन्हें जिस आस्था विश्वास तथा सृजनात्मक प्रेरणा की आवश्यकता थी वह वर्गसों के जीवन दर्शन से मिला।

जाने कौन, कैसे किन स्तरों से, फूट पड़ती यह अजस्रा अश्रुधारा

जो कि उद्गम स्रोत का आदिम सम्भाले बल, कदाचित

विविध प्रान्तों, विविध देशों में बनाए कूल बहती चली जाए।

तिमिर आप्लावित जगत यह दीर्घ है सुविशाल है आगे धरा है।

अन्तःकरण का आयतन, चकमक की चिन्गारियाँ, जब प्रश्न चिन्ह बौखला उठे की रचना इसी प्रभाव में की गयी।

मुझे कदम कदम पर चौराहे मिलते हैं

बाहें फैलाए

एक पैर रखता हूँ कि

सौ राहें फूटती

व उन पर से गुजरना चाहता हूँ।

मुक्तिबोध ने स्वीकार किया है कि आन्तरिक शांति के विनष्ट होने तथा शारीरिक ध्वंस के क्षणों में वर्गसाँ के व्यक्तिवादी दर्शन ने उन्हें सुरक्षा कवच प्रदान किया, पर 1942 के आस पास क्रमशः झुकाव मार्क्सवाद की ओर हुआ, अधिक वैज्ञानिक, अधिक मूर्त, अधिक तेजस्वी दृष्टिकोण प्राप्त हुआ।

10.4.2 मार्क्सवादीजीवन दृष्टि एवम् आस्था

मुक्तिबोध कविता को वैविध्यमय जीवन के प्रति आत्मचेतस व्यक्ति की संवेदनात्मक प्रतिक्रिया मानते हैं। मार्क्सवादी जीवन दृष्टि से प्रभावित उनकी काव्य सर्जना में वर्ग चेतना मुखर हो उठी है। वे उच्चवर्ग की साधन सम्पन्नता, भौतिक लिप्सा, मध्यवर्ग की अवसवादिता तथा खोखली जिन्दगी, निम्न मध्य वर्ग की टूटती-घुटती जिन्दगी के आलोचक थे। मार्क्सवाद के प्रति गहन रचनात्मक आस्था होते हुए भी उनकी कविता मार्क्सवादी सिद्धान्तों का प्रचारवादी भाष्य नहीं बनी क्योंकि उन्होंने काव्य सर्जना के लिए मार्क्सवाद का उपयोग नहीं किया अपितु अपनी रचना प्रक्रिया में उसे सत्य संवृत, सांसारिक अनुभवों की कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए एक वस्तुपरक वैज्ञानिक संगति की खोज का आधार माना। वे मानते थे -

चाहे जिस देश प्रान्त पुर का हो

जन-जन का चेहरा एक,

एशिया की यूरोप की

कष्ट, दुख, संताप की

चेहरों पर पड़ी हुई, झुर्रियों का रूप एक।

× × × × ×

वह गरीब धुकुधुकी

कि बेनसीब धुकधुकी

अथक चलती रहती है कोरे करुण स्वरों में।

× × × × ×

मुक्तिबोध के समक्ष वास्तविकता के तिक्त, कटु संवेदन को सम्पूर्ण सच्चाई तथा भयानकता के साथ ग्रहण कर उसे अभिव्यक्ति देना एक मात्र जीवन का सत्य था। उनकी कविताएँ व्यवस्था के बीच पिसते व्यक्ति का दस्तावेज हैं। उनकी कविताएँ अनुभवों के विस्तृत फलक पर मेहनतकश, बेसहारा, शोषित, पीड़ित मानव का जीवंत यथार्थ हैं। 'जिन्दगी की रास्ता', 'भविष्य धारा', 'जमाने का चेहरा', 'सूखे कठोर नंगे पहाड़', 'सूरज के वंशधर', 'बारह बजे रात के', 'एक प्रदीर्घ कविता' आदि अनेक कविताएँ समाज विकृतियों का दर्पण हैं। इनमें नवीन समाज की स्थापना के स्वप्न भी समाए हैं।

10.4.3 मानवीय संवेदना

मुक्तिबोध का कविता संसार मानवीय स्थितियों के चित्रण का संसार है। वे मानवीय संभावनाआंे के कवि भी हैं। उनकी कविता समाज की वास्तविकता, अन्तर्विरोध, तनावों का ही चित्रण नहीं करती अपितु समाज सापेक्ष व्यक्ति की मुक्ति की प्रामाणिक खोज भी है। उन्होंने अपनी कविता को युग जीवन के मटमैले क्षितिज पर धुंधले छितरे काले मेघ बताया है। एक गहरी मानवीय संवेदना की अजस्र धारा मुक्तिबोध की कवितओं में आद्यत्त बहती रहती है। मानवीय जीवन के प्रति गहन सम्पृक्ति मुक्तिबोध की कविता की पहचान है। उनकी सम्पूर्ण आस्था, सम्पूर्ण विश्वास की धूरी मानव है जो दुख दैन्य की तपन से तप रहा है।

आह! त्याग की उत्कट प्रतिमा होरी, महतो, भोली धनिया

जाग रहे हैं

काम कर रहे हैं अब भी अपने खेतों में

× × × × ×

आँखों में तैरता है चित्र एक

उर में सँभाले दर्द

गर्भवती नारी का

जो पानी भरती है वजनदार घड़ों से

कपड़ों को धोती है भाड़-भाड़।

10.4.4 जीवन संघर्ष एवम् संत्रास का चित्रण तथा यथार्थबोध

मुक्तिबोध अपनी काव्य यात्रा के विकास क्रम में ज्यों ज्यों मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित हुए, उनकी कविता यथार्थोन्मुख होती चली गयी है। उनका सम्पूर्ण काव्य वर्तमान समाज व्यवस्था के वास्तविक एवम् सम्भावित रूपों का चित्रण है, जिसमें यथार्थ के ऐतिहासिक स्वरूप का ज्ञानात्मक बोध है, इतिहास की जटिल प्रक्रिया की वैज्ञानिक समझ है। अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत मानव की पीड़ा का दंश है। समाज तथा ऐतिहासिक अन्तर्विरोधों की स्पष्ट अनुगूँज है। कविता यथार्थ की स्थिर दशाओं का चित्रण न होकर सामाजिक यथार्थ के विकास और परिवर्तन की प्रक्रियाओं का चित्रण है। सामाजिक यथार्थ अपनी गत्यात्मकता में मूर्तिमान हो उठा है। मुक्तिबोध की कविताएँ मात्र वैचारिक संलाप न रहकर सत्य के अनवरत क्रम से सामने आने वाले विविध दृश्य चित्र सी प्रतीत होती हैं। बीसवीं शताब्दी के पचासवें दशक का सत्य उनकी कविता का कथ्य बना है उसमें गाँव तथा बस्तियों का उजड़कर शहर बनना, मेहनतकश बन्धुआ मजदूर की वेबसी, भूख, प्यास, पीड़ा से सन्त्रासित मानवीय स्थितियाँ हैं। अनाचार, अतिचार, व्यभिचार से स्याह जीवन के विविध रंग हैं। भ्रष्टाचार, संकीर्ण हित साधन, विलासिता, अवसर वादिता आदि वर्तमान समाज के किसी भी परिदृश्य को मुक्तिबोध ने अनदेखा नहीं किया है, वह युगधर्मी रचनाकार हैं, युग यथार्थ के प्रति उनकी पक्षधरता उन्हें विशिष्ट बना देती है ‘चुप रहो मुझे सब कहने दो’, ‘अंधेरे में, हे प्रखर सत्य दो’, ‘सूखे कठोर नंगे पहाड़’ इसी सत्य को उद्घाटित करने वाली रचनाएँ हैं। युग सत्य जटिल है अतः उसे उद्घाटित करना सरल नहीं। कवि लम्बी कविताओं के माध्यम से ही इसे

उद्घाटित करने में सफल हो सका है। मुक्तिबोध ने सिद्ध कर दिया कि समकालीन सच्चाई का साक्षात्कार सबसे बड़ा रचनाधर्म है।

मुक्तिबोध को संत्रास का कवि माना गया है क्योंकि उन्होंने जीवन के संत्रास को वाणी दी है। मुक्तिबोध ने जो अन्तर्बाहय वेदना भोगी है वही काव्य में मुखरित हो उठी। अतः काव्य में संत्रास के वीभत्स एवं भयानक चित्र भी उभरे हैं।

वे जहाँ आन्तरिक संत्रास को व्यक्त करते हैं

पिस गया वह भीतरी

औ बाहरी दो कठिन पाटों बीच

ऐसी ट्रेजडी है नीच।

10.4.5 जिजीविषा एवम् आस्था

मुक्तिबोध की कविताएँ संक्रान्ति युग की स्थितियों का अंकन करती हैं। वह समकालीन परिवेश का दस्तावेज हैं। समाज का वास्तविक दर्पण हैं उनमें तीक्ष्ण युग बोध हैं यंत्रणा, भूख, प्यास, दैन्य, हताशा, पीड़ा, संत्रास के भयावह चित्र हैं। किन्तु इन सबके बावजूद एक आशा है। परिवर्तन की आकांक्षा है। समाज की स्थितियों के बदलने का विश्वास है जो उन्हें चीख चिल्लाहट का नहीं अपितु आस्था का कवि बनाती है। उन्हें सच्चा जन-जन का कवि बना देती हैं -

दीखते हैं सभी ओर

बस्ती में झिलमिलाते दीये लग गये हैं

कि जिनके प्रकाश में

शायद कुछ विद्यार्थी कहीं पढ़ रहे हैं

कि कहीं कोई बहन अपनी भाभी के लिए

नीली साड़ी में रूपहली गोट किनार लगा रही है

कि कहीं कोई पित श्री

नाती को क-ख-ग परॉच पढ़ा रहे हैं

कि कहीं कोई बालक अपनी छोटी सी गोदी में

शिशु छोटा भाई लिए तुलसी बोली में

कविताएँ गाते हुए उसे सुला रहा है

10.4.6 आत्मान्वेषण एवम् आत्मविश्लेषण

मुक्तिबोध की कविताएँ आन्तरिक संघर्ष एवम् अन्तर्द्वन्द को व्यापक सामाजिक परिप्रेक्ष्य में उभारती हैं। कवि व्यष्टि चेतना तथा सामाजिक जीवन के द्वन्द टकराहट तथा उससे उत्पन्न तनाव एवम् मानवीय पीड़ा को आत्म विश्लेषण आत्मशोधन के माध्यम से काव्य में प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। मुक्तिबोध काव्य का लक्ष्य आत्मपरिशोधन द्वारा वर्गीय चेतना पैदा करना मानते हैं। 'चकमक की चिन्गारियाँ', 'जब प्रश्नचिन्ह बौखला उठे', 'मेरे सहचर मित्र', 'ब्रह्मराक्षस औरागं उटांग-, 'अंधेरे में' इत्यादि कविताएँ आत्मान्वेषी कविताएँ हैं।

आत्म प्रताड़ना और आत्म ग्लानि की पंक्तियों से मुक्तिबोध का काव्य भरा पड़ा है -

ओ मेरे आदर्शवादी मन,

ओ मेरे सिद्धान्तवादी मन

अब तक क्या किया

जीवन क्या जिया

उदरम्भि हो अनात्म बन गए

भूतों की शादी में कनात सा तन गए।

मुक्तिबोध में आत्मशोध और आत्मालोचन की प्रवृति अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक दिखाई देती है।

मैं अपनी अधूरी दीर्घ कविता में

उमग कर जन्म लेना चाहता फिर से

कि व्यक्तित्वान्तरित होकर

नये सिरे से समझना और जीना

चाहता हूँ सच।

10.4.7 मानव मूल्य

मुक्तिबोध ने वृहद मानवीय परिप्रेक्ष्य को अपनी कविताओं में अभिव्यक्त किया। मुक्तिबोध जिस समय/काल में रचना कर रहे थे उस काल का सम्पूर्ण यथार्थ अपनी पूरी ईमानदारी के साथ उनके काव्य का विषय बना। बर्गसों, मार्क्स, यथार्थबोध मानवता की विभिन्न सरणियों से गुजरती उनकी कविता मानवीय अन्तःकरण एवम् मानवीय संकल्पनाओं का काव्य बन जाती है। यद्यपि उनका काव्य संघर्ष यातना और पीड़ा का काव्य है पर उन्हें इसके भीतर जिस सौन्दर्य, समता और माधुर्य की तलाश है वह उन्हें सच्चा मानवतावादी कवि प्रमाणित कर देती है।

सपने से आते हैं कि किसी दिन

पुराने मोहल्ले सब साफ होंगे

मानव धुकधुकी में

सुनहरे रक्त का दिवस खिलखिलाएगा।

× × × × ×

कोशिश करो

कोशिश करो

जीने की

जमीन में गड़कर भी।

मुक्तिबोध मानते हैं कि कवि रचना धर्मिता को सीधे मानवतावाद से जोड़े, वह विश्व जनता के अभ्युत्थान को देखे। आज उत्पीड़न करने वाली शक्तियों से सचेत हो और उसके प्रति विद्रोह करने वाली ताकतों से सहानुभूति रखे। (नए साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र पृष्ठ 37) ''साधारण जन सल्तनत

नहीं चाहता, मनुष्य की स्वाभाविक गरिमा के अनुरोधों के अनुसार वह जीवन चाहता है'' (एक साहित्यिक की डायरी पृ0 132) रचनाकार का नैतिक दायित्व बनजाता है कि वह शोषित उत्पीड़ित बहुसंख्यक जनता की आशा, आकांक्षा, उसकी भूख प्यास को संवेदनात्मक रूप से अपनी आशा आकांक्षा का अभिन्न अंग बनाए। यही मुक्तिबोध की मानवीय पक्षधरता का स्वरूप है।

10.4.8 युग बोध

मुक्तिबोध युगधर्मी रचनाकार हैं। उनकी कविताओं में अपने समय का तीक्ष्ण युग बोध अभिव्यक्त हुआ है, उन्होंने अपनी रचनाओं में ह्रासोन्मुखी पूँजीवादी व्यवस्था का विशद चित्रण कर मानवीय अवमूल्यन की वीभत्सता तथा इस व्यवस्था के ध्वंस की आकांक्षा को अभिव्यक्त किया है।

शोषण की अति मात्रा

स्वार्थों की सुख यात्रा

जब-जब सम्पन्न हुई

आत्मा से अर्थ गया

मर गयी सभ्यता।

मुक्तिबोध का काव्य स्वतंत्रता के अगले दो दशकों का जीवंत इतिहास है। जिसमें गहन मानवीय स्पन्दन है, कडुवे सत्य हैं गहरी संवेदनात्मकता है।

पूँजीवादी ह्रास के इस भैरव काल में

बादामी कागज सा प्राणहीन

दिन फीका रहता है

पुते नीले रंग से सूने आसमान में

सूरज एलुमैन का

करता है चमकने का असफल स्वांग नित।

मुक्तिबोध हिन्दी के कवियों की समकालीन पीढ़ी में सर्वाधिक युग धर्मी रचनाकार हैं। यद्यपि जब वे रचना कर रहे थे उनके काव्य को जटिल काव्य ठहरा कर लोगों ने उन्हें अन्तविरोधों का कवि सिद्ध किया। किन्तु बाद में यह निर्विवाद रूप से साबित हो गया कि मुक्तिबोध एक प्रतिबद्ध और अपने समय से जूझते जागरूक कवि हैं।

मुक्तिबोध ने व्यवस्था पर तीक्ष्ण व्यंग्य किए हैं। भ्रष्टाचार, संकीर्ण हित साधन, गुटपरस्ती, विलासिता, अवसरवादिता, दम्भ, आडम्बर, बनावटीपन इत्यादि जैसे-जैसे व्यवस्था के भीतरी तहों में पैठती जाती है वैसे-वैसे व्यक्ति मानव से पशु बनते जाते हैं।

इस नगरी में अच्छे-अच्छे

लोग हुए जाते हैं देखो

शैतानों के झबरे बच्चे

एक जमाने में जनता के आंगन में नंगे खेले थे,

जन-जन की पगडण्डी पर वे जन मन के थे,

किन्तु आज उनके चेहरे पर

विद्युत वज्र गिराने वाले

बादल की कठोर छाया है।

संवेदना तथा मूल्यों की खरीद फरोख्त में हिस्सा लेने वाले जन-जन के उत्पीड़न में व्यवस्था के सक्रिय हिस्सेदार स्वनामधन्य लोग किस प्रकार प्रभुत्वकामी तथा अवसरवादी हो उठते हैं। मुक्तिबोध ने इसका चित्रण किया है। इस प्रकार का तीक्ष्ण युगबोध ही मुक्तिबोध को समकालीन पीढ़ी से किंचित भिन्न भूमि पर स्थापित कर नयी कविता का प्रतिनिधि कवि बना देता है।

10.4.9 जीवन दर्शन तथा काव्य दृष्टि

जीवन जगत के बारे में, समाज के बारे में साहित्य और कला के विषय में एक कवि की जो दृष्टि और विचार होते हैं मोटे तौर पर उन्हें ही हम कवि की जीवन दृष्टि और काव्य दृष्टि कहते हैं और यह दृष्टि जीवनानुभवों, जीवनानुभूतियों के घात प्रतिघात से विकसित होती रूपाकार धारण करती

है, मुक्तिबोध ने अत्यन्त विस्तार से साहित्य, कला और जीवन के उन प्रश्नों पर विचार किया है जिनसे जूझते हुए, जिनसे साक्षात्कार करते हुए उनकी जीवन दृष्टि का विकास हुआ। 'एक साहित्यिक की डायरी', 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष' तथा अन्य निबन्ध 'नए साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' आदि आलोचनात्मक लेखन में मुक्तिबोध ने कला का क्षण, कला की स्वायत्तता, कलात्मक अनुभूति, जीवनानुभूति, आभ्यान्तरीकरण, बाह्यीकरण, काव्य की रचना प्रक्रिया पर इतने विस्तार से विचार किया है कि मुक्तिबोध की जीवन दृष्टि एवम् काव्य दृष्टि को लेकर किसी प्रकार का संदेह नही रह जाता है।

मुक्तिबोध कविता को वैविध्यमय जीवन के प्रति आत्मचेतस व्यक्ति की प्रतिक्रिया मानते हैं। कविता जीवन की पुनर्रचना है। वे कला के तीन क्षण मानते हैं। कला का पहला क्षण है जीवन का उत्कट तीव्र अनुभव क्षण। दूसरा क्षण है इस अनुभव का अपने कसकते दुखते हुए मूल्यों से पृथक हो जाना और ऐसी फैंण्टेसी का रूप धारण कर लेना मानो वह आँखों के सामने खड़ी हो। तीसरा और अंतिम क्षण है इस फैण्टसी के शब्द बद्ध होने की प्रक्रिया का आरम्भ और उस प्रक्रिया की परिपूर्णावस्था तक की गतिमानता। मुक्तिबोध कला को पूर्णतः जीवन सापेक्ष मानते हैं, कला जीवन की समस्याओं से अलग-थलग रहकर न अस्तित्व में आ सकती है और न ही जीवंत हो सकती है। अपनी वास्तविक प्राण शक्ति के लिए उसे समाज पर ही निर्भर रहना पड़ेगा। कलाकार का रचनात्मक व्यक्तित्व कितना ही अद्भुत क्यों न हो उसे सामाजिक जीवन पर अवलम्बित होना ही पड़ेगा। अतः रचना की स्वायत्तता निरपेक्ष नहीं रह सकती। कला व्यक्ति सापेक्ष है तो व्यक्ति समाज सापेक्ष। अतः कला स्वतः समाज सापेक्ष हो जाती है। इस तथ्य को मुक्तिबोध उदाहरण के द्वारा स्पष्ट करते हैं। प्रकृति में भी हमें यही दृश्य दिखाई देता है। फूल के विकास और हास के अपने नियम और कार्य होते हैं किन्तु वह फूल अपने अस्तित्व के लिए सारे वृक्ष पर निर्भर है। मूल पर, स्कन्ध पर, शाखा पर, यहाँ तक कि पत्तियों पर भी रश्मि रासायनिक समन्वय कार्य के लिए। पुष्प की अपनी 'सापेक्ष' स्वतन्त्रता है किन्तु उसका वह पृथक अस्तित्व अन्य निर्भर, अन्य सम्बद्ध है। इस प्रकार पुष्प एवं कला की स्थिति समान है। फूल वृक्ष की मूलधारा से विलग निष्प्राण हो जाता है उसी प्रकार कला, कलाकार के व्यक्तित्व जोकि अपनी स्थिति में पूर्णतः सामाजिक है उससे विच्छित्र होकर निष्प्राण हो जाती है। (नयी कविता का आत्म संघर्ष तथा अन्य निबन्ध)

कवि मात्र दुखी के प्रति सहानुभूति कर नहीं रह जाता। वह प्रश्न करता है

जब इस गली के नुक्कड़ पर

मैंन देखी

वह फक्कड़ भूख, उदार प्यास

निःस्वार्थ तृष्णा

जीने मरने की तैयारी

वशर्ते तय करो, किस ओर हो तुम, अब

सुनहरे उर्ध्व आसन के

दबाते पक्ष में अथवा

कहीं उससे लुटी टूटी

अंधेरी निम्न कक्षा में तुम्हारा मन,

कहाँ हो तुम? (चकमक की चिंगारिया)

मुक्तिबोध साधारण जन के प्रति अपार सहानुभूति के कवि हैं। उन्होंने आत्ममुक्ति के लिए जनमुक्ति की आवश्यक मानने के साथ ही आत्मविकास के लिए जनजीवन के विकास को महती शर्त माना है।

अभ्यास प्रश्न

(क) मुक्तिबोध की काव्य यात्रा के विकास की विभिन्न स्थितियों का निरूपण दस पंक्तियों में कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....
....
....
....
....

(ख) मुक्तिबोध के काव्य की वैचारिकता एवं भाव संवेदना पर संक्षिप्त में प्रकाश डालिए।

....
....
....
....
....

(ग) मुक्तिबोध की काव्य की वैचारिकता का आधार मार्क्सवाद रहा। इस कथन पर चार पंक्तियों में अपने विचार लिखिए।

....
....
....
....
....

(घ) मुक्तिबोध जीवन संघर्ष, संत्रास एवं तनाव के कवि हैं। सात आठ पंक्तियों में विचार कीजिए

....
....
....
....
....
....
....

....

....

....

(ङ) मुक्तिबोध युगधर्मी रचनाकार हैं उदाहरण सहित स्पष्ट करें।

....

....

....

....

....

(च) मुक्तिबोध मानवीय संवेदना के कवि हैं। उनकी मानवतावादी दृष्टि पर प्रकाश डालिए।

....

....

....

....

....

(छ) मुक्तिबोध के जीवन दर्शन एवं काव्य दृष्टि की मीमांसा कीजिए।

....

....

....

....

....

10.5 शिल्प विधान

काव्य का सौन्दर्य उसके शिल्प पर भी निर्भर करता है, भावों के साथ अभिव्यक्ति भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। कविता में भाव के अनुरूप शैल्पिक विन्यास की आवश्यकता पड़ती है। शिल्प वह माध्यम है जिसके द्वारा कोई संवेदना, अनुभूति, विचार अथवा भाव एक ही बार अपनी समग्रता

में सम्प्रेषित हो जाता है इसके लिए कवि को कुछ जोखिम उठाने ही पड़ते हैं। मुक्तिबोध ने इन्हीं को अभिव्यक्ति के खतरे कहा है -

अभिव्यक्ति के सारे खतरे

उठाने ही होंगे

तोड़ने होंगे ही मठ ओर गढ़ सब

पहुँचना होगा दुर्गम पहाड़ों के उस पार

तब कहीं देखने को मिलेंगी बाहें

जिनमें कि प्रतिपल काँपता रहता

अरुण कमल एक।

शिल्प सिफ 'फार्म' नहीं है। वह कथ्य को सम्प्रेषित करने का महत्वपूर्ण माध्यम है। काव्य में शब्द के माध्यम से अर्थ का प्रकाश होता है। शिल्प विधान के अन्तर्गत भाषा की सृजनात्मकता, प्रतीक विधान, बिम्बधर्मिता, मुक्तिबाध के संदर्भ में फैन्टेशी महत्वपूर्ण है। अतः इन प्रभावशाली उपकरणों पर क्रमशः विचार करना अपेक्षित है।

10.8.1 भाषा की सृजनात्मकता:

नयी कविता जहाँ भावों की नवीन भंगिमा का आन्दोलन है वहीं भाषा के सर्जनात्मक प्रयोग का भी आन्दोलन है। पुराने संदर्भ वाले शब्दों में नया अर्थ भरना, अर्थ के आधार पर शब्द गढ़ना, कवि कर्म को शब्द की तलाश मानना नए कवियों का प्रयास रहा।

मुक्तिबोध ने अपने काव्य चेतना के अनुरूप नवीन भाषा का निर्माण किया। भाषा की परम्परा को तोड़ा। उनकी भाषा के विषय में डा0 राज नारायण मौर्य का कथन महत्वपूर्ण लगता है। ''उनकी भाषा नयी चेतना नयी धारा की तरह अपने आप मार्ग बना लेती है, वह कभी पाषाणों के नीचे दबकर, कभी पाषाणों की छाती पर चोट करती हुई, कभी ऊँचे, कभी नीचे, कभी झाड़ झंखाड़ों, खंडहरों से कमी शस्य श्यामला पुष्पित समतल भूमि से बहती हुई चलती है। वह कभी संस्कृत निष्ठ सामासिक पदावली की अलंकृत वीथिका से गुजरती है, कभी अरबी फारसी तथा उर्दू के नाजुक लचीले हाथों को थामकर चलती है। कभी अंग्रेजी की इलेक्ट्रिक ट्रेन पर बैठ कर जल्दी से

खटाक खटाक निकल जाती है और कभी विशाल जनसमूह के शोर गुल और धक्के मुक्के के बीच एक-एक पर दृष्टि डालती हुई रूक-रूक कर चलती है मुक्तिबोध ने अपनी इस नयी चेतना की अभिव्यक्ति के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया उसमें स्पष्ट रूप से मुक्तिबोधपन है। (राष्ट्रवाणी जनवरी, फरवरी 1965)

मुक्तिबोध की कविताओं में मुफलिस, रफ्तार, फजूल, रौनक, ख्याव मेहराब, नामंजूर खुदगर्ज जैसे असंख्य शब्द उर्दू फारसी से लिए गए हैं। ''भूल गलती'' जैसी कविता तो जैसे उर्दू में लिखी प्रतीत होती हो पर वह अपनी प्रभावान्विति में अप्रतिम है।

मुक्तिबोध ने अंग्रेजी, मराठी भाषा के शब्दों का भी खूब प्रयोग किया। इसी प्रकार संस्कृत शब्दावली का भी प्रयोग किया।

मुक्तिबोध ने नक्षे, नक्षीदार, कन्दील, पूर, हकाल दिया, मन्ध, तिपहर, भोंगली का सहज प्रयोग कर वातावरण तैयारकिया है।

मुक्तिबोध आवश्यकतानुसार विशेषणों का निर्माण कर प्रभाव पैदा करते हैं। भुसभुसा उजाला, ऐय्यारी रोशनी, सॅवलाई किरन, सर्द अंधेरा, अजगरी मेहराव, संवलाई चाँदनी आदि के प्रयोग कविता में सहज रूप से किए गए हैं।

सामने है अंधियाला ताल और

स्याह उसी ताल पर

सँवलाई चाँदनी।

इसी प्रकार मुक्तिबोध द्वारा गणितीय शब्दावली, वैज्ञानिक शब्दावली का भी प्रयोग किया है। उन्होंने शब्द की परम्परा को तोड़ा। कुशल शिल्पी की तरह शब्दों को तराशा है। मुहावरों का सहज प्रयोग भी उनकी भाषा को समृद्ध बनाता है। खेत रहे, सातवाँ आसमान, साँप काट जाना, साँप सूँघ जाना आदि का प्रयोग प्रभावान्विति के लिए किया गया है।

मुक्तिबोध की भाषा में सजीवता है, और चित्रोपमता भी है। साथ ही भाषा पर उनका असाधारण अधिकार भी है। एक कुशल शिल्पी की तरह से उन्होंने शब्दों को तराश कर नयी चमक भरकर

असाधारण प्रयोग किया है उनकी भाषा में आधुनिक युग की नयी चेतना की सर्वांग अभिव्यक्ति है।

मुक्तिबोध के लिए भाषा एक औजार है उन्होंने अपनी लम्बी कविताओं के लिए भाषा का नाटकीय उपयोग किया है। सघन बिम्बों की माला के बाद सपाटबयानी द्वारा जीवन के यथार्थ पर, जीवन की विसंगतियों पर तीक्ष्ण आघात करते उनके शब्द चित हिन्दी साहित्य की समृद्ध धरोहर हैं। वहाँ जीवन सत्यों को उबड़ खाबड़ भाषा से भी निचोड़ा गया है एवम् माधुर्य मधुर स्पन्दनों की असंख्य करूण छवियों को भी उभारा गया है। इतना सत्य है कि मुक्तिबोध ने छायावादी काव्य भाश के आभिजात्य को तोड़कर लोक जीवन की भाषा को विचार कविता के अनुकूल बनाया। शब्दों में नवीन संस्कार भर नयी अर्थ दीप्ति का मार्ग खोल दिया।

10.8.2 बिम्ब विधान

मुक्तिबोध की कविता बिम्ब धर्मी कविता है। बिम्ब अर्थात शब्द चित्र जिसमें दृश्य, ध्वनि, रंग आदि के द्वारा चित्रात्मकता खड़ी की गयी हो। बिम्ब का प्रयोग कथ्य को प्रभावशाली, सघन और आकर्षक बना देता है अमूर्त को मूर्त करने की सहज शक्ति प्रदान करता है। शमशेर सिंह की मान्यता है ''मुक्तिबोध की हर इमेज के पीछे शक्ति होती है वे हर वर्णन को दमदार अर्थपूर्ण और चित्रमय बनाते हैं।'' एक दृश्य के उपरान्त दूसरा दृश्य, दृश्यों में विविध रंग, ध्वनियाँ वातावरण का निर्माण करती जाती है जब एक सम्पूर्ण कैनवास सा तैयार हो जाता है तब मुक्तिबोध के काव्य लक्ष्य को पूर्ण करती जाती हैं। अतः वे असंख्य शब्दचित्र जो मुक्तिबोध ने युग यथार्थ को अभिव्यक्त करने हेतु खड़े किए हैं वह उनकी कविता का सबसे प्रबल हथियार हैं। 'ब्रह्मराक्षस', 'अंधेरे में चकमक की चिन्गारियाँ, जीवनधारा, भूल गलती जैसी कविताएँ बिम्बधर्मिता के कारण ही इतनी प्रसिद्ध हुई हैं।

10.8.3 प्रतीक

मुक्तिबोध यथार्थवादी कवि हैं। समकालीन जीवन की सच्चाईयों को सामने लाने हेतु उन्होंने प्रतीकों का भरपूर उपयोग किया। सांस्कृतिक, ऐतिहासिक पौराणिक प्रतीकों के अतिरिक्त वैज्ञानिक, प्राकृतिक एवं मिथक से भी प्रतीक लेकर सफलता पूर्वक प्रयोग किया है। यथा चाँद (पूँजीवादी शक्ति), भैरव (शौषक वर्ग की मानसिकता), कंस (शोषक एवम् क्रूर सत्ता), डूबता चाँद (मृतप्राय पूँजीवादी व्यवस्था), अंधेरा (मध्यमवर्गीय संस्कारों की विवशता), स्याह पहाड़ (संघर्ष),

बबूल (निम्न मध्यवर्ग), कमल (लक्ष्य), टीला (आत्म विवेक) के प्रतीक बन प्रयोग हुए हैं। प्रायः मुक्तिबोध की सभी कविताएँ प्रतीकात्मकता को लेकर चलती हैं।

10.8.4 फैन्टेसी शिल्प

मुक्तिबोध की कवितााओं का आधार फैन्टेसी का रचना शिलप है। फैन्टेसी का शाब्दिक अर्थ है ऐन्द्रजालिक संसार। अर्थात शब्द चित्रों के माध्यम से एक जादुई संसार खड़ा करना तत्पश्चात जीवन सत्यों का उद्घाटन करना। मुक्तिबोध के लिए फैन्टेसी एक कलात्मक सार्थकता है। कविता में यथार्थ की संश्लिष्टता, विसंगति, जटिलता सबको समेटने के लिए आवश्यक है कि कवि फैन्टेसी का आसरा ले, मुक्तिबोध के समक्षतो कठिनाई ही यह है कि उन्हें स्वप्न के भीतर एक स्वप्न, विचारधारा के भीतर एक अन्य सघन विचारधारा प्रछन्न दिखायी देती है। उन्हें पग-पग पर चौराहे, सौ सौ राहें और नव नवीन दृश्य वाले सौ-सौ विषय रोज मिलते हैं। वे एक पैर रखते हैं कि सौ राहें फूट पड़ती हैं और उन सब पर से गुजर जाना चाहते हैं। फैन्टेसी एक झीना परदा है जिसमें से जीवन तथ्य झाँक-झाँक उठते हैं। फैन्टेसी का ताना बाना कल्पना बिम्बों में प्रकट होने वाली विविध क्रिया प्रक्रियाओं से ही बना हुआ होता है।

शैल्पिक दृष्टि से फैन्टेसी में कवि एक विस्तृत कैनवास पर कथ्य को विविध आकारों तथा रंगों से परिवृत करता है। फैन्टेसी के शिल् के भीतर परस्पर विरोधी बातों के समाहार की सुविधा के कारण मुक्तिबोध की फैन्टीसी नुमा कविताआं में एक ओर आदिम अभिव्यंजना का खुरदुरापन है तो दूसरी ओर जीवन के विभिन्न क्षेत्रों की बिम्ब मालाएँ यथार्थ को तीक्ष्ण आवेग के साथ स्पष्ट करती जाती हैं

जिन्दगी के ....

कमरों में अंधेरे

लगाता है चक्कर

कोई एक लगातार

आवाज पैरों की देती है सुनायी

बार-बार .... बार-बार

पर नहीं दीखता..................... नहीं ही दीखता

किनतु वह रहा घूम

तिलस्मी खोह में गिरफ्तार कोई एक

भति पार आती हुई पास से

गहन रहस्यमय अंधकार ध्वनिता

अस्तित्व जनाता

10.8.5 छंद और लय

नयी कविता छंद के प्रति किसी प्रकार का आग्रह लेकर नहीं चली। मुक्त छंद ही उसका प्रिय छंद रहा। नवीन गति, नवीन लय को नवीन ताल पर बाँध कर की गयी विचार वान अभिव्यक्ति ही नयी कविता है। मुक्तिबोध मस्तिष्क में बुनते जाते अंसख्य विचारों को फैन्टेसी के कैनवास पर रंग भरते अभिव्यक्ति देते जाते हैं और एक प्रवाहपूर्ण काव्य बनता चला जाता है। उसमें छायावाद की सी गीतात्मकता नहीं होती पर प्रश्नों की बौखलाहट होती है।

बावड़ी में वह स्वयं

पागल प्रतीकों में निरन्तर कह रहा

वह कोठरी में किस तरह

अपना गणित करता रहा

और मर गया

वह सघन झाड़ी के कंटीले

तम विवर में

मरे पक्षी सा विदा ही हो गया।

अभ्यास प्रश्न

(क) मुक्तिबोध के शिल्प विधान की विशेषताएँ चार पाँच पक्तियों में निरुपित कीजिए।

....

....

....

....

....

(ख)मुक्तिबोध की काव्य भाषा की विशेषताएँ बताइए।

....

....

....

....

....

(ग) मुक्तिबोध के बिम्व विधान की चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

....

(घ) मुक्तिबोध के काव्य की प्रतीक व्यवस्था पर प्रकाश डालिए।

....

....

....

....

....

(ङ) फैन्टेसी से आप क्या समझते हैं? मुक्तिबोध ने काव्य के लिए फैंटेसी के शिल्प को क्यों चुना।

....
....
....
....
....

(च) मुक्तिबोध का काव्य क्या छंद बद्ध है? यदि नहीं तो वह कैसा है?

....
....
....
....

10.6 काव्य वाचन और सन्दर्भ सहित व्याख्या

काव्यवाचन –

कविता परिचय

नयी कविता के प्रतिनिधि कवि गजानन माधव मुक्तिबोध की 'ब्रह्मराक्षस' नामक कविता उनकी भाव संवेदना तथा शिल्प विधान को समझने हेतु एक महत्वपूर्ण कविता है। इस कविता का सम्पूर्ण रचना विधान मुक्तिबोध के काव्य धर्म को सामने लाता है।

'ब्रह्मराक्षस' एक बिम्ब धर्मी, फैन्टसी के शिल्प में रचित प्रतीकात्मक कविता है। मनुष्य की महत्वाकांक्षाएं जीवन में पूरी नहीं हो पाती। उसे समाज तथा व्यवस्था द्वारा ठीक प्रकार से समझा नहीं जाता तो वह एक अभिशप्त, अतृप्त आत्मा बन जाती है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार मृत्यु के पश्चात अतृप्त आत्माएँ असंतुष्ट 'प्रेत' बन जाती है।

इस प्रकार की आत्मा अहंकेन्द्रित भी है। स्वयं के प्रति उसके कुछ भ्रम हैं जिन्हें मुक्तिबोध ने विशिष्ट वातावरण में प्रस्तुत किया है।

ब्रह्मराक्षस आज के असंतुष्ट बुद्धिजीवी का प्रतीक है।

संदर्भ सहित व्याख्या: यहाँ ‘ब्रह्मराक्षस’ नामक कविता के महत्वपूर्ण काव्यांशों की संदर्भ प्रसंग सहित व्याख्या की जा रही है।

उद्धरण 1

शहर के उस ओर खंडहर की तरफ

परित्यक्त सूनी बावड़ी

के भीतरी

ठंडे अंधेरे में

बसी गहराइयाँ जल की

सीढ़ियाँ डूबी अनेकों

उस पुराने घिरे पानी में

समझ में आ न सकता हो

जैसे बात का आधार

लेकिन बात गहरी हो।

बावड़ी को घेर

डालें खूब उलझी हैं

खडे हैं मौन औंदुबर

व शाखों पर

लटकते घुग्घुओं के घोंसले

परित्यक्त भूरे गोल।

संदर्भ: यह काव्य पंक्तियाँ 'ब्रह्मराक्षस' शीर्षक कविता में से ली गयी हैं। इसके रचनाकार नयी कविता के सशक्त हस्ताक्षर शलाका पुरुष गजानन माधव मुक्तिबोध हैं।

प्रसंग: मुक्तिबोध जी की 'ब्रह्मराक्षस' एक प्रतिनिधि कविता है जो उनके काव्य संग्रह 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में संकलित है। कवि ने अतृप्त असंतुष्ट आत्मा को 'ब्रह्मराक्षस' के रूप में वर्णित किया है। यह कविता की प्रारम्भिक काव्य पंक्तियाँ हैं जिनमें कवि 'ब्रह्मराक्षस' के निवास स्थल का वर्णन करता है। कवि प्रभावशाली फैन्टेसी का निर्माण करते हुए कहते हैं।

व्याख्या: शहर के एक छोर पर आबादी से कुछ दूरी पर एक खंडहर है। उसी खंडहर के पास निर्जन और सुनसान स्थान में पूरी तरह से त्यागी गयी अर्थात उपयोग में नहीं लायी जा रही एक बावड़ी (पानी का पोखर) है। उसमें अथाह जल है बावड़ी का भीतरी भाग घने अंधकार से पूर्ण है। उसका पानी गहरा, पुराना चारों ओर से ठंडे अंधेरे से घिरा है। बावड़ी की कई सीढ़ियाँ पानी में डूबी हैं जिस प्रकार कुछ रहस्यमय बातें आसानी से खुल नहीं पाती हैं पर स्पष्ट हो जाता है कि कुछ न कुछ बात अवश्य है उसी प्रकार इस बावड़ी का वातावरण इस प्रकार की प्राकृतिक परिवेश, बावड़ी का परितक्त होना रहस्य की ओर संकेत करता है उस बावड़ी को घेर कर मौन औदुम्बर अर्थात गूलर के वृक्ष खड़े हैं, जिनकी डालें एक दूसरे से उलझी हैं। वहाँ चारों ओर निस्तब्धता का साम्राज्य है। गहन सन्नाटा है। गूलर वृक्षों की डालों पर घुग्घुओं के घोंसले लटक रहे हैं जो वातावरण को और भी गम्भीर बना रहे हैं ये घोंसले उल्लुओं ने त्याग दिए हैं ये भूरे रंग के हैं तथा गोल-गोल हैं।

विशेष:

4. कवि ने वर्णनात्मक शैली में शहर के छोर पर स्थित बावड़ी का प्रभावशाली चित्रण किया है।

4. चित्रात्मक शैली का प्रयोग किया है।

4. दृश्य बिम्ब है, जो अत्यन्त सघन है।

4. फैन्टेसी द्वारा एक ऐन्द्रजालिक संसार खड़ करने का प्रयास किया गया है।

8. बावड़ी का जा काल्पनिक चित्र खड़ा किया है वह अत्यन्त सजीव है।

9. भयानक रस की सृष्टि की गयी है।

10. कविता में प्रवाह बना रहता है तथा जिज्ञासा पैदा की गयी है।

8. भाव सादृश्य के दृष्टिकोण से भवानी प्रसाद मिश्र की ‘सन्नाटा’ कविता का स्मरण हो आता है।

उद्धरण 2

पिस गया वह भीतरी
औ बाहरी दो कठिन पाटों बीच,
ऐसी ट्रैजडी है नीच!!
बावड़ी में वह स्वयं
पागल प्रतीकों में निरन्तर कह रहा
वह कोठरी में किस तरह
अपना गणित करता रहा
औ मर गया ....
वह सघन झाड़ी के कंटीले
तम विवर में
मरे पसी सा
विदा ही हो गया
वह जयोति अनजानी सदा को सो गयी
यह क्यों हुआ!
क्यों यह हुआ!!
मैं ब्रह्मराक्षस का सजल-उर शिष्य

होना चाहता

जिससे कि उसका वह अधूरा कार्य

उसकी वेदना का स्रोत

संगत पूर्ण निष्कर्षों तलक

पहुँच सकूँ।

संदर्भ: प्रस्तुत काव्य पंक्तियाँ गजानन माधव मुक्तिबोध की प्रसिद्ध काव्य रचना 'ब्रह्मराक्षस' से उद्धृत हैं।

प्रसंग: 'ब्रह्मराक्षस' कविता में तीव्र आत्मविश्लेषण, आत्मपरिशोधन चलता रहता है। मानव अपने तुच्छ स्व से ऊपर उठने को सदैव संघर्षरत रहता है। नैतिक मानों की प्राप्ति के लिए बावड़ी में प्रेत आत्मा बना ब्रह्मराक्षस भी प्रयत्नशील रहता है। पर वह सफल नहीं हो पाता अन्त में वह इस संसार से चला जाता है। मुक्तिबोध ब्रह्मराक्षस के दुखपूर्ण अन्त पर गहरी करूणा और शोक व्यक्त करते हैं। भाव, तर्क और कार्य के सामंजस्य की स्थापना का कार्य जो ब्रह्मराक्षस अधूरा छोड़ गया है, कवि उसे पूरा करने की अभिलाषा प्रकट करता है -

व्याख्या: बेचारा ब्रह्मराक्षस जीवन भर बाह्य जगत और आन्तरिक जगत के दो पाटों के बीच पिसता हुआ अपनी जीवन लीला समाप्त कर गया। कितना नृशंस और निष्ठुर है दैव विधान? जन्म भर अंधकारपूर्ण बावड़ी रूपी कोठरी में वह चिंतन के स्तर पर अपनी समस्या सुलझाने में लगा रहा। अपना गणित बैठाता रहा पर समस्या सुलझी नहीं। वह प्राक्तन बावड़ी की गहराइयों में हमेंशा के लिए मर गया। बावड़ी के चारों ओर फैली झाड़ियों के सघन अंधकार में, अंधेरी खोह में मरे हुए पक्षी सा सदा के लिए विदा हो गया। वह अपार सम्भावनाओं भरा व्यक्तित्व था। पर उसके साथ यह दुःखान्त हुआ कि वह अनजाने सदा के लिए विलीन हो गया। कवि प्राश्निक हो उठता है कि यह क्यों हुआ? पुनः समाधान के रूप में कहता है कि इसके अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है। कवि ब्रह्मराक्षस के अपूर्ण कार्य को पूर्ण करने की अभिलाषा प्रगट करता है। वह ब्रह्मराक्षस के चलाए हुए सामंजस्य के समीकरण को, नैतिक मानों को, अन्वेषण को, और पूर्णता की खोज को आगे बढ़ाना चाहता है। इस प्रकार कवि उसके अधूरे कार्य को, जो उसकी वेदना का एक मात्र कारण था, पूर्ण करे उसकी आत्मा को संतुष्टि प्रदान करना चाहता है। उसकी वेदना का कारण

जीवित रहते हुए उसके विचारों, सिद्धान्तों को सहमति प्राप्त न होना है। अतः कवि उसका शिष्य बनकर उसकी अधूरी आकांक्षाओं को पूर्ण कर उसकी आत्मा को तृप्त करना चाहता है।

विशेष:

कविता का चरम बिन्दु 'ब्रह्मराक्षस' की मृत्यु के रूप सामने आता है

मुक्तिबोध की 'ब्रह्मराक्षस' कविता फैन्टेसी शिल्प का सुन्दर उदाहरण है

कविता की इन पंक्तियों में एक सन्देश दिया है। स्वस्थ, सुन्दर परम्पराएं यदि अपूर्ण रह जाती हैं तो आने वाली पीढ़ियों ने उन्हें पूर्ण कर अतृप्त आत्माओं को सन्तुष्टि प्रदान करनी चाहिए। यह उनके लिए चरम मुक्ति होगी।

10.7 सारांश

श्री गजानन माधव मुक्तिबोध 'नयी कविता' के सशक्त हस्ताक्षर हैं। जिए एवम् भोगे जाने वाले जीवन की वास्तविकताओं एवं तद् सदृश सम्भावनाओं के निरपेक्ष चित्रण द्वारा कविता में पुनर्जीवित उनका रचना संसार काव्य के महत मूल्यों का निर्माण करता है, उनकी रचनाएँ नयी कविता के प्रस्तावित वस्तुगत, शिल्पगत सन्दर्भों में अधिक प्रभावशाली तथा मौलिक प्रतीत होती हैं। उन्होंने कथ्य और शिल्प के युगीन प्रतिमानों को स्वीकार करते हुए उनकी परिधि को चुनौती दी तथा काव्य सर्जना की उन विशिष्टताओं को भी मानदण्डों के रूप में स्वीकारा जिसके आधार पर साहित्य का उचित मूल्याँकन सम्भव हो सका। नयी कविता में आधुनिक भावबोध के नाम पर जिस लघुमानवतावाद, क्षणवाद, कुंठावाद, दुःखवाद, व्यक्ति स्वातन्त्रय की प्रवृतियाँ प्रचलित की गयी, उनका भी मुक्तिबोध ने विरोध किया।

मुक्तिबोध साहित्य के सामाजिक उद्देश्य एवं समकालीन यथार्थ से जुड़ाव पर विश्वास रखते थे, उनके अनुसार आधुनिक भावबोध के अन्तर्गत मानवता के भविष्य निर्माण के प्रश्न, अन्याय के खिलाफ प्रतिकार के स्वर नैतिक उत्थान के प्रयास, मुक्ति के उपाय की तलाश आदि को समाहित होना चाहिए। व्यक्ति की पीड़ा, युग की संत्रस्त एवं उत्पीड़ित मनुष्यता को नवीन दिशाएँ प्रदान करना ही वास्तविक आधुनिक बोध है।

मुक्तिबोध ने अपनी कविताओं में व्यवस्था की दुरभिसंधियों में पिसते आम आदमी की पीड़ा को अभिव्यक्ति दी है, उस युग को कविता में उभारा जिसमें मानवीय अन्तःकरण क्षत विक्षत

है। शोषण के भयानक कुचक्रों के बीच व्यक्ति जीवन का प्रलाप है तथा तीक्ष्ण सामाजिक अनुभवों का अंकन है किन्तु समकालीन यथार्थ का यह साक्षात्कार मानवीय भविष्य की अनंत सम्भावनाओं को लिए है।

मुक्तिबोध ने क्षणवादी जीवन दृष्टि का भी विरोध किया, वह मानते हैं कि जीवन समग्र है। वह भविष्य के प्रति आशान्वित हैं। मानव मुक्ति के प्रयत्नों को शाश्वत मानते हैं अतः उनकी जीवन दृष्टि भी शाश्वत के प्रति आस्थालु है। इसी प्रकार समकालीन रचनाकारों की कुंठा, यौन कुंठा जैसे आग्रहों से मुक्तिबोध का कोई सरोकार नहीं। वे तो जनमुक्ति के गायक हैं। मुक्तिबोध असंग दुख की बात भी नहीं करते। वे वास्तविक दुख के भोक्ता हैं अतः उनकी वेदना में सर्वजन की पीड़ा समायी है। मुक्तिबोध के काव्य में यथार्थ की तीखा बोध है चीख चिल्लाहट भी है पर वह कुंठित नहीं हैं उनका समूचा काव्य मानवीयता की गहन अनुभूतियों से परिव्याप्त है। उनकी रचनाएँ मानवीय अन्तःकरण की विविध दशाओं एवम् मानवीय सम्भावनाओं का प्रामाणिक दस्तावेज है। मुक्तिबोध का काव्य प्रथम दृटया थोड़ा जटिल प्रतीत होता है गूढ़ फैन्टेसी के शिल्प में कविता एक जटिल तिलस्मी वातावरण खड़ा करती है किन्तु शिल्प का विन्यास जब समझ में आ जाता है तो मुक्तिबोध समकालीन कवियों विशिष्ठ हो जाते है। वे मानवीय धारा के कवि हैं। मार्क्सवाद में उन्हें गहन आस्था थी पर वैचारिक स्तर पर वे हमेशा स्वयं को परिमार्जित, विकसित करते रहे। आत्मान्वेषण एवं आत्म परिशोधन उनके काव्य की प्रमुख भाव दशाएँ हैं वैचारिक आस्था, सामाजिक प्रतिबद्धता, पीड़ित मानवता के प्रति गहन निष्ठा, मनुष्यता के उज्जवल भविष्य के प्रति उनका आशान्वित दृष्टिकोण उन्हें नयी कविता के बीच केन्द्रीय कवि के रूप स्थापित करता है। नयी पीढ़ी के लिए मुक्तिबोध एक प्रकाश स्तम्भ की भाँति हैं।

10.8 शब्दावली

मार्क्सवाद - विचारक मार्क्स के जीवन दर्शन पर आधारित विचारधारा। शोषित समाज के प्रति सहानुभूति, शोषक समाज के प्रति आक्रोश। समानमूल्यों वाले समाज की संकल्पना।

फैन्टेसी - मुक्तिबोध की कविताओं के संदर्भ में फैन्टेसी एक प्रकार का शैल्पिक विधान है। शाब्दिक रूप में एन्द्रेजालिक संसार है। पर काव्य में विशेष तरह का ‘फार्म’ है।

10.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

अशोक बाजपेयी -फिलहाल - राजकमल प्रकाशन

कविता के नए प्रतिमान - नामवर सिंह - राजकमल प्रकाशन

गजानन माधव मुक्तिबोध - सम्पादक लक्ष्मण दत्त गौतम -विद्यार्थी प्रकाशन

मुक्तिबोध व्यक्तित्व एवं कृतित्व - डॉ9 जनक शर्मा - पंचशील प्रकाशन जयपुर

मुक्तिबोध का रचना संसार - पं0 गंगाप्रसाद विमल - सुषमा प्रकाशन

10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अभ्यास प्रश्न

   (क)गजानन माधव मुक्तिबोध

   (ख)तारसप्तक

   (ग) चाँद का मुँह टेड़ा है, भूरी-भूरी खाक धूल

   (घ) भारत इतिहास और संस्कृति

   (ङ) देंखे – 10.4.1

10.1 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. मुक्ति बोध रचनावली- जैन, नेमीचन्द्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

10.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. मुक्ति बोध की कविता अपने युग समाज को बदलने की छटपटाहट से पैदा हुई है। इस कथन की समीक्षा कीजिए।

इकाई 11 - शमशेर बहादुर सिंह: पाठ एवं आलोचना

इकाई की रुपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 प्रगतिशील काव्यान्दोलन और शमशेर बहादुर सिंह
11.4.1 शमशेर: विचारधारा और प्रतिबद्धता
11.4.2 शमशेर की काव्य-भाषा और बिम्ब
11.4.3 शमशेर बहादुर सिंह: संक्षिप्त परिचय और रचनाएँ
11.4 शमशेर: पाठ और आलोचना
11.4.1 शमशेर की कविताएँ: पाठ
11.4.2 शमशेर की कविताएँ: आलोचना
11.5 सारांश
11.6 शब्दावली
11.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
11.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
11.10 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

आप एम.ए. हिन्दी पाठ्यक्रम के तृतीय प्रश्न पत्र के चतुर्थ खण्ड का अध्ययन कर रहे हैं। यह इकाई प्रगतिशील कविता के महत्त्वपूर्ण कवि शमशेर बहादुर सिंह से सम्बन्धित है। आपने आधुनिक हिन्दी कविता के ऐतिहासिक विकास क्रम में भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद तथा प्रगतिशील साहित्य आन्दोलन का परिचय प्राप्त किया होगा। प्रगतिशील साहित्य का संबंध हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन से बहुत गहरा है। आजादी का आन्दोलन आधुनिक साहित्य की अब तक की सभी प्रमुख प्रवृत्तियों को प्रेरित और प्रभावित करता रहा है लेकिन प्रगतिशील आन्दोलन ऐसा आंदोलन भी है जिसे हम विश्वव्यापी कह सकते हैं। यूरोप में फासीवाद के उभार के विरूद्ध संघर्ष के दौरान इस आन्दोलन का जन्म हुआ था और भारत जैसे औपनिवेशिक देशों के लेखकों और कलाकारों ने इसे राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन से जोड़ दिया। इस आन्दोलन के पीछे मार्क्सवादी विचारधारा की शक्ति और सोवियत संघ के निर्माण की ताकत भी लगी हुई थी। इसने साहित्य के उद्देश्य से लेकर वस्तु और रूप तक के सवालों पर नये तरह की सोच को सामने रखा, जो उस

समय लेखकों और कलाकारों के बीच जीवंत बहस के मुद्दे बने। इस आन्दोलन को जनता के बीच ले जाने का श्रेय नागार्जुन, त्रिलोचन, शमशेर तथा केदारनाथ अग्रवाल को है।

शमशेर को 'नयी कविता का प्रथम नागरिक' कहा जाता है। शमशेर की कविताएँ एक तरफ मजदूर किसानों के संघर्ष में सहभागी बनती हैं तो दूसरी तरफ नाविक विद्रोह जैसी कविताएँ भौगोलिक सीमाओं को भी तोड़ती हैं। शमशेर मार्क्सवादी विचारधारा से प्रतिबद्ध और एक समय में कम्युनिस्ट पार्टी के सक्रिय सदस्य रहे। शमशेर की कोशिश रही है कि वे हर चीज या भावना की अपनी भाषा को, अनुभूतियों की अभिव्यक्ति को सामाजिक संघर्ष से जोड़ सकें। विजयदेव नारायण साही के शब्दों में ''तात्विक दृष्टि से शमशेर की काव्यानुभूति सौन्दर्य की ही अनुभूति है। शमशेर की प्रवृत्ति सदा ही 'वस्तुपरकता' को उसके शुद्ध या मार्मिक रूप में ग्रहण करने की रही है। वे 'वस्तुपरकता' का 'आत्मपरकता' में और 'आत्मपरकता' का 'वस्तुपरकता' में आविष्कार करने वाले कवि हैं जिनकी काव्यानुभूति बिम्ब की नहीं, बिम्बलोक की है।'' 'कवियों का कवि' कहे जाने वाले शमशेर ने 1934 से काव्य रचना आरंभ की। 1945 में 'नया साहित्य' के संपादन के सिलसिले में बम्बई गये। वहाँ कम्युनिस्ट पार्टी के संगठित जीवन में सामाजिक अन्तर्विरोधों को नजदीक से देखा। उनकी दृष्टि में कला का संघर्ष सामाजिक संघर्ष और जनान्दोलनों से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई में आप आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रगतिशील कविता के महत्त्वपूर्ण कवि शमशेर बहादुर सिंह के काव्यात्मक महत्त्व का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप प्रगतिशील साहित्य के सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य के साथ शमशेर के वैशिष्ट्य को भी समझ सकेंगे। हिन्दी साहित्य के संदर्भ में आप प्रगतिशील साहित्य के उदय की जानकारी प्राप्त करेंगे। वैसे तो प्रगतिशील आन्दोलन में अनेक कवि सक्रिय थे लेकिन इस इकाई में हम मुख्यतः प्रगतिशील कविता और शमशेर के महत्त्व का अध्ययन करेंगे। इस तरह यह इकाई प्रगतिशील साहित्य के विभिन्न पहलुओं की जानकारी देगी और शमशेर को समझने और जाँचने की दृष्टि से भी परिचित कराएगी।

11.3 प्रगतिशील काव्य और शमशेर बहादुर सिंह:

प्रगतिशील कविता का सम्बन्ध समाज के अन्तर्विरोध से है। यही कारण है कि प्रगतिशील कविता हमेशा एक-सी नहीं रहती। वह समय के अनुसार बदलती रहती है। प्रगतिशील कवियों ने कविता में विषयवस्तु के महत्त्व को समझते हुए यह जान लिया था कि कविता सिर्फ जनता के प्रति गहरी प्रतिबद्धता और प्रगतिशील विषयों पर लिखी जाकर ही महान नहीं बनती, यदि कवि की प्रतिबद्धता सच्ची और गहरी है तो वह अपनी बात को साहित्य के माध्यम से कहने के लिए अब तक आजमाए गये उपकरणों का अनुकरण नहीं करेगा बल्कि नए उपकरणों की तलाश भी

करेगा। यही कारण है कि प्रगतिशील कविता के प्रमुख स्तंभ नागार्जुन, गजानन माधव मुक्तिबोध, शमशेर, केदारनाथ अग्रवाल तथा त्रिलोचन इत्यादि में से किसी की भी कविता दूसरे की कविता का अनुकरण नहीं है। प्रगतिशील कविता की परम्परा का अध्ययन करते हुए आप पायेंगे कि विषयवस्तु और शिल्प की दृष्टि से यहाँ विविधता भी है और बहुस्तरीयता भी। लेकिन प्रगतिशील कविता के सामने हमेशा एक केन्द्रीय मुद्दा रहा है, वह है देश की बहुसंख्यक शोषित-उत्पीड़ित जनता की वास्तविक मुक्ति। प्रगतिशील कविता में व्यक्त राष्ट्रीय भावना छायावादी राष्ट्रीय भावना, से कई मायनों में अलग थी। इन कवियों ने जहाँ एक ओर देशभक्ति की भावना को क्रांतिकारी धार दी तो दूसरी ओर सामाजिक मुक्ति के सवाल को भी जोड़ दिया। प्रगतिशील कवियों ने साहित्य और कला को राजनीति से निरपेक्ष रखने की धारणा को भी अस्वीकार कर दिया।

प्रगतिशील कविता पर मार्क्सवाद के प्रभाव का कारण सन् 1930 के बाद की परिस्थितियाँ हैं। 1917 की सोवियत क्रांति जहाँ दुनिया भर के कलाकारों व बुद्धिजीवियों को प्रभावित किया वहीं आजादी के साथ भारत विभाजन और बाद की निराशाजनक तस्वीर ने प्रगतिशील रचनाकारों को राष्ट्रीय सरकार की आलोचना करने को भी प्रेरित किया। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सोवियत संघ ने उपनिवेशवाद के खिलाफ संघर्ष को अपना समर्थन दिया और दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान फासीवादी ताकतों के खिलाफ सोवियत संघ की निर्णायक जीत से प्रगतिशील ताकतों के हौसले बुलन्द हुए। प्रगतिशील लेखक संघ के गठन से पहले 1935 में 'वर्ल्ड कांग्रेस ऑफ राइटर्स फार दि डिफेंस ऑफ कल्चर' के रूप में एक अंतर्राष्ट्रीय संस्था की नींव पड़ चुकी थी जिसके कर्त्ता-धर्त्ता गोर्की, रोमाँ रोला, आन्द्रे जींद, टॉमस मान जैसे विश्वविख्यात लेखक थे। इस संस्था का निर्माण फासिज्म और साम्राज्यवाद के खिलाफ प्रतिरोध के लिए किया गया था। फासीवाद का उदय विश्व मानवता के लिए खतरा था। हिटलर द्वारा सत्ता पर कब्जा करने के कारण दुनिया में युद्ध का भंयकर खतरा मंडराने लगा था। हिटलर ने अपने ही देश के अल्पसंख्यक यहूदियों पर बेतहाशा जुल्म ढाये और उनके सारे मानवाधिकार छिन लिये। यूरोप में फासीवाद के बढ़ते खतरे के कारण फासीवाद विरोधी जन आन्दोलनों में बढ़ोतरी हुई। दुनिया भर के लेखकों ने फासीवाद के खिलाफ संगठित होने और उसका विरोध करने का आह्वान किया। भारत में प्रगतिशील लेखक संघ (1936) के गठन को इसी परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए। इसका प्रभाव अखिल भारतीय स्तर पर बुद्धिजीवियों पर देखा जा सकता है। मैथिलीशरण गुप्त से सुमित्रानन्दन पंत तक के यहाँ मार्क्स का उल्लेख श्रद्धा के साथ है। जब हिटलर की सेना सोवियत संघ में मास्को तक पहुँच गई और बाद में उसे बर्लिन तक खदेड़ दिया गया, उस ऐतिहासिक क्रांतिकारी संघर्ष को लेकर मुक्तिबोध ने 'लाल सलाम' कविता लिखी, शमशेर ने 'वाम वाम वाम दिशा' कविता द्वारा वामपंथ के महत्त्व को स्थापित करने का प्रयास किया-

'भारत का

भूत-वर्तमान औ' भविष्य का वितान लिये

काल-मान-विज्ञ मार्क्स-मान में तुला हुआ

वाम वाम वाम दिशा,

समय साम्यवादी।'

आज का समय साम्यवादी है- यह विश्वास सोवियत संघ ने दिया था तथा इसकी पहचान प्रगतिशील आन्दोलन में हुई। यदि एक ओर इसमें किसान और मजदूर सहित मेहनतकश जनता के यथार्थ का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण था, तो दूसरी ओर इसमें उच्च और मध्यवर्ग के प्रति आलोचनात्मक रूख अपनाया गया था। यहाँ छायावाद के रोमानीपन से मुक्ति और यथार्थवाद के उत्तरोत्तर विकास को सहज ही देखा जा सकता है।

आधुनिक हिन्दी कविता के विभिन्न आन्दोलनों के शोर-शराबे से दूर शमशेर निरंतर एकांत भाव से अपनी काव्य साधना में लीन रहे। काव्य भाषा, कथ्य तथा शिल्प के स्तर पर उन्होंने हमेशा प्रयोग किये। हिन्दी कविता में जिस प्रयोगशीलता का दावा, 'तारसप्तक' के प्रकाशन से किया गया, उसके प्रकाशन के पूर्व ही शमशेर की कविता में इतने प्रयोग मिलते हैं, जितना पूरे 'तारसप्तक' में दिखाई नहीं पड़ता। शमशेर की कविताओं में रोमानीपन और एकाकीपन का भाव है। इससे वे निरंतर संघर्ष करते हैं। वर्तमान अलगाव और आत्मनिर्वासन के युग में उनकी कविताएँ आत्म विस्तार में सहायक बनती हैं। यह आत्मविस्तार स्वयं कवि के यहाँ भी है, जिसकी मूल प्रेरक शक्ति मार्क्सवाद में उनकी आस्था है। उन्होंने स्वीकार किया है- ''मार्क्सवाद मेरी जरूरत थी, सच्ची जरूरत, उसने मुझे मार्मिक और रूग्ण मनः स्थिति से उबारा।'' शमशेर ने कुछ सपाट राजनीतिक कविताएँ भी लिखी हैं लेकिन वे मूलतः सौन्दर्य के कवि हैं। उनका यह सौन्दर्य आध्यात्मिक न होकर शुद्ध ऐन्द्रिय है, जिसे उन्होंने विशिष्ट कलात्मक शैली में उपस्थित किया है। महत्त्वपूर्ण यह है कि उनका सौन्दर्य जितना मानवीय है, उनका दृष्टिकोण उतना ही वस्तुवादी। शमशेर की कविताएँ मानव और प्रकृति के विराट सौन्दर्य तथा आदमी होने की मूल शर्त से प्रतिबद्ध है। दुःख के ताप, पीड़ा और कष्टों से घिरी जिन्दगी में कवि सौन्दर्य को ही अपने सबसे निकट पाता है। जीवन, समाज और संसार की सारी कुरूपताओं के विरूद्ध वह एक सौन्दर्यमयी सृष्टि रचता है। सौन्दर्य की चेतना से उसे जीने लायक बनाता है। कवि का सौन्दर्यबोध बहुत व्यापक है। वह मात्र स्त्री-सौन्दर्य तक सीमित न होकर संपूर्ण मानवीय भावों और प्राकृतिक वस्तुओं को अपने भीतर समेटे हुए हैं। शमशेर के यहाँ स्त्री-सौन्दर्य का बड़ा ही ऐंद्रिय और मांसल वर्णन हुआ है। यहाँ स्त्री-पुरूष की चिर संगिनी है, उसका ही प्रतिरूप जो नाना भाव से उसे आकर्षित करती और लुभाती है। यहाँ स्त्री-सौन्दर्य का अत्यन्त ही अकुंठ चित्रण हुआ है। यह सौन्दर्य न तो रीतिकालीन कवियों की तरह सिर्फ शारीरिक है, न ही छायावादी कवियों की तरह वायवीय। वह

तो अपनी सम्पूर्ण गरिमा से आकर्षित करने वाला ठोस, गतिशील और पूर्ण-सौन्दर्य है। शमशेर स्त्री-सौन्दर्य के साथ प्राकृतिक सौन्दर्य के भी अप्रतिम चित्रकार हैं। उनकी कविताओं का वातावरण वाकई बहुत मोहक है। शमशेर की एक मुद्रा है: ''सुन्दर!/उठाओ/निज वक्ष/-और-कस-उभर!/क्यारी/भरी गेंदा की/स्वर्णारक्त/क्यारी भरी गेंदा की।/तन पर/खिली सारी/अति सुन्दर! उठाओ।'' उनकी अधिकांश कविताएँ प्रकृति और प्रवृति में भी खासकर संध्या और उषा रूप से सम्बन्धित हैं। उनकी भावनाएँ प्राकृतिक बिम्बों के सहारे अभिव्यक्ति पाती हैं। मुक्तिबोध के शब्दों में ''शमशेर की मूल मनोवृति एक इंप्रेशनिस्टिक चित्रकार की है। इंप्रेशनिस्टिक चित्रकार अपने चित्र में केवल उन अंशों को स्थान देगा जो उसके संवेदना ज्ञान की दृष्टि से, प्रभावपूर्ण संकेत शक्ति रखते हैं।'' इस प्रकार शमशेर अपनी मनोवृति को जीवन का अथाह समुंदर मापने के लिए छोड़ देते हैं। कवि की स्मृतियाँ संध्या के साथ उभरती हैं। इन्द्रिय-बोध के धरातल पर शाम कभी-कभी इतना मूर्त्त हो उठती है कि उसे छूकर देखा जा सकता है। उनकी 'उषा' शीर्षक कविता प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण के साथ-साथ शब्दों से रंगों का काम लेने की उनकी क्षमता को उजागर करती है। इस कविता में शब्द और चित्र दोनों एक दूसरे से अतिक्रमित होते हैं:

''प्रात नभ- भा बहुत नीला शंख जैसे

भोर का नभ

राख से लीपा हुआ चौका

(अभी गीला पड़ा है)

बहुत काली सिल ज़रा-से लाल केसर से

कि जैसे धुल गयी हो।'' शमशेर एक खास सोच और तेवर वाले कवि हैं। उनकी कविता शब्दों तक सीमित नहीं होती, बल्कि ऐसे तमाम शब्द जिन्हें वे बहुत ही चुनकर, सोच-समझकर अपनी बात के लिए इस्तेमाल करते हैं- काव्यानुभावों की एक व्यापक और जटिल दुनिया भी रचते हैं। शमशेर की प्रायः सभी कविताएँ एकालाप हैं- आन्तरिक एकलाप। शमशेर के लिए मृत्यु स्वयं काल है जिससे कतराकर निकल जाना गवारा नहीं है। इसलिये 'काल, तुझसे होड़ है मेरी: अपराजित तू-तुझमें अपराजित मैं वास करूँ।' यह होड़ है कला की काल से। नामवर सिंह ने लिखा है कि- ''अपनी कार्यशाला में शमशेर अकेले चाहे जितने हों, लोग-बाग से वह काफी भरी पूरी है। कितनी कविताएँ सिर्फ व्यक्तियों पर हैं। इतने व्यक्तियों पर शायद ही किसी कवि ने कविताएँ लिखीं हों.......शमशेर के लिए तो जैसे हाड़-मांस के जीते-जागते इंसान ही समाज है जिनका अपना चेहरा है, अपनी पहचान है, अपना सुख-दुःख है, छोटा ही सही पर सच्चा। शमशेर ऐसे ही व्यक्तियों को 'अपने पास' 'इतने पास अपने' खींच लाते हैं।''

11.4.1 शमशेर: विचारधारा और प्रतिबद्धता: सामन्तवाद-साम्राज्यवाद-

पूँजीवाद के विरोध ने प्रगतिशील कविता को विश्वमानवता से प्रतिबद्ध किया। प्रगतिशील कविता में अगर त्रिलोचन और नागार्जुन में देशज, स्थानीय, ग्रामीण संदर्भ अधिक मुखर हैं, तो शमशेर में वैश्विक और अन्तर्राष्ट्रीय। शमशेर की कविता जिस सार्वभौम मनुष्यता को बिंबवत् धारण करती हैं, उसमें अमूर्तन उनकी मदद करता है। शमशेर चाहते हैं नागार्जुन की तरह सामाजिक और राजनीतिक कविताएँ लिखना; वे चाहते हैं त्रिलोचन की तरह किसान मन को अपनी कविताओं में टटोलना लेकिन उनका काव्य व्यक्तित्व विश्वमानवतावाद की सुदीर्घ परम्परा से जिन तत्वों को ग्रहण करता है, वे मिट्टी की देशजता से अधिक सागर और आसमान की विराट सार्वभौमता से संघटित होते हैं। शमशेर के बगैर प्रगतिशील कविता का आकाश नहीं बनता। उनकी कविता एक तरफ जन संघर्षों को आकाश से जोड़ती है तो दूसरी तरफ मुक्ति की चेतना को विराटता प्रदान करती है। उनके हृदय में जीवन संघर्ष से जूझ रहे व्यक्ति के प्रति गहरी संवेदना है। वे जन-जन को मुक्ति और एकता में विश्वास व्यक्त करते हैं- एक जनता का अमर कर/एकता का स्वर/अन्यथा स्वातंत्रय इति। शमशेर अपने व्यक्तित्व में जितने सहज और सरल रहे, अपनी कविताओं में उतने ही जटिल। वे प्रगतिवादियों के बीच लोकप्रिय रहे तो दूसरी तरफ प्रगतिवाद विरोधियों के बीच भी उतने ही लोकप्रिय रहे। शमशेर के साथ मुश्किल यह है कि वे पिछली पीढ़ी के कवि हैं, लेकिन संकलित किये गये हैं दूसरे सप्तक में। मुक्तिबोध ने इस संदर्भ में लिखा है कि पहले सप्तक से जिस यथार्थवादी कविता की शुरूआत हुई थी उसे दूसरे सप्तक में रूमानी प्रगीतात्मकता की तरफ मोड़ दिया गया। पहले सप्तक की कविता में जहाँ वस्तुपरकता थी वहीं दूसरे सप्तक की कविता में आत्मपरकता। शमशेर के बारे में यह निर्णय भी दिया गया कि- 'वक्तव्य उन्होंने सारे प्रगतिवाद के पक्ष में दिये, कविताएँ उन्होंने बराबर वे लिखीं जो प्रगतिवाद को कसौटी पर खरी नहीं उतरतीं।' अज्ञेय ने शमशेर के बारे में लिखा है- ''वह प्रगतिवादी आन्दोलन के साथ रहे लेकिन उसके सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाले कभी नहीं रहे। उन्होंने मान लिया कि हम इस आन्दोलन के साथ हैं और स्वयं उनकी कविता है, वह लगातार उसके बाहर और उसके विरूद्ध भी जाता रहा......हम चाहें तो उन्हें बिम्बवादी और रूमानी कवि भी कह सकते हैं।'' शमशेर के बारे में एक रूढ़ि है कि वे बड़े मुश्किल कवि हैं या वे रूपवादी हैं या वे मार्क्सवादी हैं या वे प्रयोगवादी और सुर्रियलिस्ट हैं या मुख्यतः प्रणयजीवन के प्रसंगबद्ध रसवादी कवि हैं। शायद इसीलिए वे आधुनिक दृष्टिकोण के फलस्वरूप बेपर्दगी नहीं कर सकते। शमशेर किसी वाद की सैद्धांतिक विचारधारा की बनी-बनाई लीक पर नहीं चलते। उन्होंने स्पष्ट कहा कि- ''मेरे कवि को किसी फार्म या शैली का सीमाबंधन स्वीकार नहीं। कौन-सी शैली चल रही है, किस वाद का युग आ गया है या चला गया है- मैंने कभी इसकी परवाह नहीं की। जिस विषय पर जिस ढंग से लिखना मुझे जचा, मन जिस रूप में भी रमा, भावनाओं ने उसे अपनाया। अभिव्यक्ति अपनी ओर से सच्ची हो, यही मात्र मेरी कोशिश रही। उसके रास्ते में किसी बाहरी आग्रह का आरोप या अवरोध मैंने सहन नहीं किया।''

शमशेर की प्रगतिवादी कविताएँ सामाजिक, आर्थिक विषमता और साम्प्रदायिकता के विरूद्ध हैं। उनकी प्रगतिवादी चेतना, उत्तेजना, विद्रोह या संघर्ष की न होकर एक गहरी पिपासा लिए मानवीय प्रेम की चेतना है। इसलिये संघर्ष उनकी भाषा में नहीं बल्कि भावना में मूर्त्त हुआ है। प्रगतिवादी चेतना के कवि होते हुए भी शमशेर की पहचान मूलतः प्रेम और सौन्दर्य के कवि के रूप में होती है। उनकी सौन्दर्य चेतना कहीं-कहीं तो छायावादी सौन्दर्य चेतना का भी अतिक्रमण करती दिखाई देती है- ''सुन्दर!/उठाओ/निज वक्ष/-और-कस-उभर!/स्वप्न-जड़ित-मुद्रामयि। शिथिल करूणा।'' शमशेर मूलतः रोमान के कवि हैं। छिप और बचकर कविताएँ लिखने वाले। शमशेर की आत्मा एक रोमांटिक, क्लासिकल प्रकार की है। उनका जोर संवेदनविशिष्टता और संवेदनाघात पर होता है। प्रणयजीवन के भावप्रसंगों या सूक्ष्म संवेदनाओं के बारे में जो बातें वे नहीं कहते, वे संदर्भ की दृष्टि से बहुत प्रधान हैं।

वह जब किसी दूसरे कवि की कविताओं को राजदाँ की तरह पढ़ने की सलाह देते हैं तो दरअसल अपनी कविताओं को पढ़ने का गुर सिखा रहे होते हैं:

यह कविता नहीं मात्र

मेरी डायरी है

(अपनी मौलिक स्थित में

छपाने की चीज नहीं)।

उनकी असल ताकत उन सरल उक्तियों में देखने में आती है जिनमें किसी उपमा तक का सहारा नहीं लिया जाता और जो अपनी सादगी के कारण ही मन में गहरे उतरती चली जाती है: यही अपना मकान है, जो कि था!/हाँ, यही सायबान है, जो कि था! उनकी अधिकांश कविताएँ सचमुच उनकी डायरी का ही हिस्सा हैं। उतनी ही निजी और गोपनीय या आत्मीयों के लिये पठनीय। इसी आधार पर उन्हें रूमानी और रूपवादी कवि भी कहा जाता है। मुक्तिबोध ने उन्हें 'मुख्यतः प्रणय जीवन के प्रसंगबद्ध रसवादी कवि' कहा है। 'कविता को समाज की नब्ज टटोलने का माध्यम'- मानने वाले शमशेर कविता को आत्मा की अभिव्यक्ति भी मानते हैं और आत्मा की दृष्टि प्रेम और सौन्दर्य से भला कैसे विमुख रह सकती है। प्रेम शमशेर की कविताओं में सदैव- 'अंतिम विस्मय' रहा है। उनकी कविताओं में एक अद्भुत किस्म की पाकीज़गी है। यह पाकीज़गी किसी सती-सावित्री किस्म की पाकीज़गी नहीं है बल्कि एक आशिक़ की पाकीज़गी है। वे हमारे समय के सरमद हैं। उन्होंने प्रेम की पाकीज़गी को मध्ययुगीन आध्यात्मिकता के झुरमुट से निकालकर यथार्थवाद की रोशनी में ला खड़ा किया है। प्रेम का अंकुर भाव ही उनकी कविताओं में व्यक्त हुआ है-

तुमको पाना है अविराम

सब मिथ्याओं में

ओ मेरी सुख

मेरी समस्त कल्पना के पीछे एक सत्य मुझ उपेक्षित को स्नेह स्वीकृत करो। शमशेर की कविताओं में व्यक्त प्रेम की निजी अनुभूतियाँ सामाजिक सम्बन्धों के गहरे लगाव को भी नये सिरे से जानने का साधन बनती हैं। उनकी कविताओं में व्यक्त रूमानियत भी पाठक को करूण वेदना से सिक्त कर देती हैं। इस संदर्भ में 'एक पीली शाम' कविता महत्त्वपूर्ण है। उनका काव्यात्मक आवेग उनकी अपनी पहल या शारीरिक लगाव से इतना आगे चला जाता है, इतना गहरा हो जाता है कि व्यक्ति सम्मुख होते हुए भी स्वयं का समूचा संदर्भ कल्पनाओं की ओट में, ओझल हो जाता है।

11.4.2 शमशेर की काव्य भाषा और बिम्ब-विधान:

शमशेर हिन्दी के उन बिरले रचनाकारों में हैं जो हिन्दी के सही मिज़ाज को पहचानते हैं। शमशेर बोलियों की शक्ति को भी पहचानते हैं। उनकी कविता में इनका असर किन्हीं आंचलिक शब्दों के प्रति मोह के रूप में नहीं आता जैसा कि त्रिलोचन में आता है। समकालीन हिन्दी उर्दू कवियों पर लिखी उनकी समीक्षाएँ उनके गहरे काव्य चिंतन और सुसंगत भाषा चिंतन का प्रमाण हैं। उन्होंने हिन्दी-उर्दू की गंगा-जमुनी दोआबी संस्कृति को विरासत में हासिल किया और उसका विकास किया। आज जब हिन्दी और उर्दू के बीच लगातार दूरी बढ़ रही है तब शमशेर ही हैं जो अधिकारपूर्वक 'हमारी ही हिन्दी हमारी ही उर्दू' की आवाज बुलन्द कर सकते हैं-

''वो अपनों की बातें वो अपनों की खू-बू

हमारी ही हिन्दी हमारी ही उर्दू

वो कोयल वो बुलबुल के मीठे तराने

हमारे सिवा इसका रस कौन जाने।"

शमशेर की काव्य भाषा अपनी प्रयोगधर्मिता में अद्वतीय है। रूप, रस, गंध और स्पर्श की एन्द्रिक अनुभूतियों को शब्द चित्रों में लाने में उनकी काव्यभाषा को अद्भुत कौशल प्राप्त है। वे शब्दों के माध्यम से बहुरंगी चित्रों को साकार कर देते हैं- 'अक्टूबर के बादल, हल्के रंगीन अटे हैं/पत्ते संध्याओं में ठहरे हैं।' शमशेर के यहाँ कविता का नूर ही उसका पर्दा बन जाता है। शब्द संकेत और रंग संकेत का उनके यहाँ ऐसा घोलमेल है कि उनकी रचनात्मक प्रतिभा के सम्मुख कवि कर्म क्षेत्र अधिक विस्तृत हो जाता है। सरलता ही गूढ़ता का रूप ले लेती है। अपने आशय को पारदर्शी

बनाने की चिंता ही उन्हें उन अथाह गहराइयों में पहुँचा देती है जहाँ तक उतरने का अक्सर लोग साहस नहीं जुटा पाते और इसलिये सरल भी गूढ़ बन जाता हैः

सरल से भी गूढ़, गूढ़तर

तत्व निकलेंगे

अमित विषमय

जब मथेगा प्रेम सागर हृदय।

शमशेर, त्रिलोचन की तरह सब कुछ कह देने और पूरा वाक्य लिखने के पक्ष में नहीं हैं। वे बिम्बों को, शब्दों को अनायास बिखेर देते हैं। इस बिखराव को वे विराम, अर्द्धविराम, डैश, डाट से नियंत्रित करने की चेष्टा करते हैं। शमशेर की कविताओं में गाढ़े, चटख और कई बार मद्धिम और उदास रंग वाले बिम्बों की अधिकता है। बिम्ब निर्माण में वे अनेक रंगों का प्रयोग करते हैं- पर एक भी चटकीला नहीं है- सब किंचित, मटमैले, धुँधले, साँवले, उदास। कहीं गुलाबी हैं तो उसका रंग कत्थई है। कहीं केसरिया है तो साँवलेपन की छाया लिये हुए; बिजली है तो कुहटिल, बादलों के पंख गेरूआ रंगें हैं। शमशेर संवेदन चित्रण मुख्यतः दो प्रकार से करते हैं। संवेदन की तीव्रता बताने के लिए वे बहुत बार नाटकीय विधान प्रस्तुत करते हैं। संवेदन के विभिन्न गुणचित्र प्रस्तुत करने के लिए वे मनः प्रतिमाओं का, इमेजेज़ का सहारा लेते हैं। ये इमेजेज़ उनके अवचेतन-अर्धचेतन से उत्पन्न होती हैं। उन इमेजेज़ में उनके अवचेतन का गहरा रंग होता है। इसके अलावा शमशेर का शब्द-संकलन अत्यंत सचेत और संवेदनानुगमी होता है। पर अक्सर बिम्ब खंडित और कभी-कभी अबूझ हो जाते हैं। उनकी कविताओं में ऐसी अमूर्त्तता है कि वह आसानी से पकड़ में नहीं आ पाती, फिर भी लोक भाषा की मिठास अद्भुत है: गाय-सानी। सन्ध्या। मुन्नी-मासी। दूध! दूध! चूल्हा आग भूख

माँ।

प्रेम।

रोटी।

मृत्यु।

केदारनाथ सिंह के शब्दों में ‘‘जो बात सबसे अधिक प्रभावित करने वाली है, वह यह है कि उनकी ध्वनि संवेदना या लयबोध।’’ शमशेर सूर्योदय को ‘रंगीन बिम्बो से बुना हुआ जागरण का पर्व के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उन्हें बारीक़ से बारीक़ संवेदनाओं के सूक्ष्म प्रभावां की पहचान है। शमशेर संवेदनाओं के प्रसंग विशिष्ट गुणों का बहुत सफलतापूर्वक चित्रण करते हैं। वे एक ही भावप्रसंग

के विभिन्न संवेदनाओं को प्रभावकारी गुणों के चित्र या चित्रों का कोलाज प्रस्तुत करते हैं। प्रातःकाल के बिम्ब की तरह शाम का भी निजी बिम्ब है:-

नीबू का नमकीन-सा शरबत

शाम (गहरा नमकीन)

प्राचीन ईसाई चीजों-सी कुछ

राजपूताने की-सी बहुत कुछ

गहरी सोन चम्पई

सोन गोटिया शाम

शान्त

तुम्हारी साड़ी की सी शाम

बहुत परिचित।

शमशेर से अधिक मांसल बिम्ब कम कवियों ने दिये होंगे पर अभिव्यक्ति पर उनका असाधारण अधिकार, मासंलता को भी उदात्र बना देता है- वह मुझ पर हँस रही है, जो मेरे होठों पर एक तलुए के बल खड़ी है, उसका सीना मुझको पीसकर बराबर कर देता है, यह सब शमशेर के अपने मन की बनावट की उपज है। विशेषत: निराला से शमशेर सूक्ष्म रूप से प्रभावित हुए हैं- सीढ़ियों की बादलों की झूलती। टहनियों-सी। शमशेर ध्यान देने वाली बात यह है कि टी.एस. इलियट की तरह शमशेर भी धार्मिक और यौन बिम्बों को एक साथ रखकर नया प्रभाव पैदा करते हैं। उनकी प्रेम कविताओं पर हल्का गौरिक रंग है। शमशेर का सरल वक्तव्य भी वक्रोक्तिपूर्ण या जटिल हो जाता है। 'एक पीली शाम' में पीलापन शाम का ही नहीं है, वह प्रेम पर भी छाया हुआ है। इस संदर्भ में प्रिय का मुख-कमल म्लान होना कविता की संरचना के भी अनुरूप है और कवि की भावना के भी। शमशेर की भाषा जहाँ-जहाँ अधिक अपारदर्शी होती है, वहाँ-वहाँ अन्यों की तुलना में सम्प्रेषण की समस्याएँ अधिक खड़ी होती है, लेकिन अपनी रचना प्रक्रिया पर बात करते हुए उन्होंने कहा है कि- ''बच्चे अपनी सब बातें समझा लेते हैं- बावजूद इसके कि वो शब्द बहुत से नहीं इस्तेमाल करते.........इसी तरह मेरी भी बहुत सी कविताएँ बच्चों जैसी अटपटी है, बहुत अटपटी है, लेकिन उसमें वो फोर्स बच्चों जैसा है।'' शमशेर के बिम्ब विधान की मौलिकता को देखना हो तो 'चाँद से थोड़ी सी गप्पे, कविता को देखना चाहिये, जिसमें चाँद के घटने बढ़ने का वस्तु बिम्ब अत्यंत प्रभावशाली है: आप घटते हैं तो घटते ही चले जाते हैं/और बढ़ते हैं तो बस यानी कि/बढ़ते ही चले जाते हैं/दम नहीं लेते हैं, जब तक बिल्कुल ही/गोल न हो जायें/बिल्कुल

गोल। उनके बिम्ब विधान विलक्षण चित्रों की योजना से हैं। बिम्ब उन्हें इतने प्रिय हैं कि उनकी कविताओं के शीर्षक ही बिम्बधर्मी हो जाते हैं- 'एक पीली शाम', 'एक नीला दरिया बरस रहा', 'एक नीला आइना बेठोस', पथरीली घास भरी इस पहाड़ी के ढाल पर'। उनकी कविताओं में 'नीला शंख', 'काली सिल', 'लाल केसर', 'पीली शाम', 'पीले गुलाब', 'नीला जल' जैसे विशेषणयुक्त वर्ण बिम्ब हैं। शमशेर शब्दों की आवृत्ति का जिस कुशलता से और जितने अचूक ढंगसे करते हैं, उसका तुलसीदास को छोड़कर दूसरा उदाहरण मिलना मुश्किल है- तू किस/गहरे सागर के नीचे/के गहरे सागर/के नीचे का/गहरा सागर होकर/मिंच गया है। अथाह शिला से। शमशेर अपने अभीष्ट की अभिव्यक्ति की तलाश में उस चरम तक पहुँच जाते हैं जहाँ शब्द अभिप्रेत भाव का प्रतिरूप बनकर स्वयं तिरोहित हो जाते हैं। यहाँ शब्दों के सिरे से कविता को पकड़ना भी मुश्किल है और समझना भी। शमशेर की कविताओं में शब्द नहीं है, शमशेर स्वयं हैं। उनकी कविताओं को समझना शमशेर को पाना है।

11.4.3 शमशेर बहादुर सिंहः संक्षिप्त परिचयः

जन्म: 13 जनवरी, 191देहरादून में। प्रारंभिक शिक्षा देहरादून, गोण्डा व इलाहाबाद। 1935-36 में उकील बन्धुओं से कला महाविद्यालय में चित्रकला सीखी। 1938 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम.ए. प्रीवियस, फाइनल नहीं किया। सन् 1938 में रूपाभ पत्रिका से सम्बद्ध। 1939-1954 तक 'कहानी', 'नया साहित्य', 'माया', 'नया पथ' और 'मनोहर कहानियाँ'- कई पत्रिकाओं में सम्पादकीय कार्य से सम्बद्ध। 1965-77 तक दिल्ली विश्वविद्यालय के उर्दू विभाग में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की परियोजना के अन्तर्गत 'उर्दू-हिन्दी कोश' का सम्पादन। 1981-85 तक विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन में प्रेमचंद सृजन पीठ के अध्यक्ष रहे। 1978 में सोवियत संघ की यात्रा। रचनाएँ: 'कुछ कविताएँ'-कमच्छा-वाराणसी 1959, 'कुछ और कविताएँ', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1961, 'चुका भी हूँ नहीं मैं', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 1975 (1977 का साहित्य अकादमी पुरस्कार), 'इतने पास अपने', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1980, 'उदिता', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 1980, 'बात बोलेगी', संभावना प्रकाशन, हापुड़ 1981, 'काल तुझसे होड़ है मेरी', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1990, 'कहीं बहुत दूर से सुन रहा हूँ', राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 1995, 'सुकून की तलाश', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 1998।

निधन: 12 मई, 1993 ।

11.4 शमशेर: पाठ और आलोचना

11.4.1 शमशेर की कविताएँ: पाठ

4. लौट आ, ओ धार

लौट आ, ओ धार

टूट मत ओ सांझ के पत्थर

हृदय पर

(मैं समय की एक लम्बी आह

मौन लम्बी आह)

लौट आ, ओ फूल की पंखड़ी

फिर

फूल में लग जा

चूमता है धूल का फूल

कोई, हाय

4. बात बोलेगी:

बात बोलेगी,

हम नहीं।

भेद खोलेगी

बात ही।

सत्य का मुख

झूठ की आँखें

क्या- देखें !

सत्य का रूख

समय का रूख है:

अभय जनता को

सत्य की सुख है

सत्य ही सुख।

दैन्य दानव, काल

भीषण; क्रूर

स्थिति; कंगाल

बुद्धि; घर मजूर।

सत्य का

क्या रंग ?

पूछो

एक संग।

एक- जनता का

दुःख: एक।

हवा में उड़ती पताकाएँ

अनेक।

दैन्य दानव। क्रूर स्थिति।

कंगाल बुद्धि: मजूर घर भर।

एक जनता का- अमर वर:

एकता का स्वर

अन्यथा स्वातन्त्रय इति।

4. एक पीली शाम

एक पीली शाम

पत झर का जरा अटका हुआ पत्ता

शांत

मेरी भावनाओं में तुम्हारा मुखकमल
कृश म्लान हारा-सा
(कि मैं हूँ वह
मौन दर्पण में तुम्हारे कहीं ?)
वासना डूबी
शिथिल पल में
स्नेह काजल में
लिए अद्भुत रूप- कोमलता
अब गिरा अब गिरा वह अटका हुआ आँसू
सांध्य तारक-सा
अतल में।

4. उषा

प्रात नभ था बहुत नीला शंख जैसे
भोर का नभ
राख से लीपा हुआ चौका
(अभी गीला पड़ा है)
बहुत काली सिल जरा से लाल केसर से
कि जैसे धुल गयी हो
स्लेट पर या लाल खड़िया चाक
मल दी हो किसी ने
नील जल में या किसी की
गौर झिलमिल देह

जैसे हिल रही हो।

और ....

जादू टूटता है इस उषा का अब

सूर्योदय हो रहा है।

11. मुझको मिलते हैं अदीब और कलाकार बहुत

मुझको मिलते हैं अदीब और

कलाकार बहुत

लेकिन इंसान के दर्शन हैं मुहाल

दर्द की एक तड़प-

हल्के-से दर्द की एक तड़प,

सच्ची तड़प,

मैंने अगलों के यहाँ देखी है-

या तो वह आज है खामोश

तबस्सुम में जलील

या वो है क-आलूद

या तो दहशत का पता देती हैं,

या हिस्सा है,

या फिर इस दौर के खाको-खूं में

गुमगश्ता है।

9. बादलों के बीच

फ़र्श पर है सूर्य, जग है जल में

बदलों के बीच

मेरा मीत

आंखों में नहाता

और यह रूह भी गयी है बीत

यूं ही।

11.4.2 शमशेर की कविताएँ: आलोचना

शमशेर की कविताएँ आधुनिक काव्यबोध के अधिक निकट है, जहाँ पाठक तथा श्रोता के सहयोग की स्थिति को स्वीकार किया जाता है। शमशेर मूलतः प्रयोगवादी कवि हैं। इस दृष्टि से वे अज्ञेय की परम्परा में पड़ते हैं। आप जानते हैं कि अज्ञेय की कविता में वस्तु और रूपकार दोनों के बीच संतुलन स्थापित करने की प्रवृति दिखलाई पड़ती है लेकिन शमशेर और अज्ञेय में अन्तर यह है कि शमशेर के प्रयोगवाद का रथ संवेदना का धरातल नहीं छोड़ता है। बावजूद इसके शमशेर में शिल्प कौशल के प्रति अतिरिक्त जागरूकता है। लोगों को शमशेर का काव्य शिल्पग्रस्त प्रतीत होता है तो इसका कारण शमशेर के कथ्य की नवीनता है। वे वास्तविक और प्रसंगबद्ध संवेदनाओं को सफलतापूर्वक चित्रित करते हैं। इस दृष्टि से वे आधुनिक अंग्रेज कवि एजरा पाउण्ड के नजदीक बैठते हैं। हम जानते हैं कि- आधुनिक अंग्रेजी काव्य में काव्यशैली के नये प्रयोग एजरा पाउण्ड से प्रारंभ होते हैं। शमशेर बहादुर सिंह अपने वक्तव्य में एजरा पाउण्ड के प्रभाव को मुक्त भाव से स्वीकारते भी हैं- ‘‘टेक्नीक से एजरा पाउण्ड शायद मेरा सबसे बड़ा आदर्श बन गया।’’

शमशेर आधुनिक हिन्दी कविता के अप्रतिम संभावनाशील कवि हैं। वे मार्क्सवाद के प्रति आकृष्ट हैं, प्रगतिवादी कविताएँ भी लिखते हैं लेकिन रचनाप्रवृति में प्रगतिवादी नहीं हैं। वे प्रयोगवादी हैं, पर मानवीय सरोकारों से विरहित प्रयोगवादी नहीं हैं। उनकी कविताओं में आत्मसंघर्ष है लेकिन उसकी अभिव्यक्ति का ढंग रेहटारिक किस्म का नहीं है, उनका आत्मसंघर्ष निजी है, प्राइवेट है इसलिये उसमें अद्भुत कशिश है। ‘मेरी कविताओं को/अगर वो उठा सके और एक घूंट/पी सकें/अगर।’ इस ‘अगर’ की विवेचना ही उनकी सम्पूर्ण आत्मसंघर्षी चेतना की विवेचना है। उनकी कविताएँ मानसिक जटिलता की कविताएँ हैं। वे भीतर, और भीतर घुसते जाते हैं, यहाँ तक की अचेतन मन की सीमाओं में भी प्रवेश कर जाते हैं। शमशेर ने समाज को निकट से देखा है, उसकी पीड़ा, उसकी पीड़ाएं देखी हैं, उनका यथार्थ चित्रण भी किया है लेकिन इस विश्वास के साथ कि मनुष्य एक न एक दिन नवयुग का निर्माण करने में समर्थ होगा- नया एक संघर्ष नई दुनिया का/नये मूल्यों का, नये मानव का/एशिया का नया मानव आ रहा है/ एक नया युग ला रहा है। शमशेर परिस्थितियों के भीतर प्रसंग उपस्थित करते हैं। परिस्थिति एक विशिष्ट चीज़ है, सामान्यीकृत नहीं। उनके यहाँ जीवन प्रसंग अनेक सूत्रों से, अनेक तत्वों से उलझे हुए होते हैं। यहाँ उलझे हुए सूत्र और परस्पर प्रतिक्रियाशील तत्व ज्वलन्त अग्निखण्ड से हैं। शमशेर सामान्यीकृत

भावनाओं और सामान्यीकृत रूखों के कवि नहीं हैं। विशिष्टता उनकी कविता के ताने बाने के भीतर से अकुलाती रहती है।

शमशेर के पूरे काव्य शिल्प को- जिसमें यथातथ्यता, सूक्ष्मता, मितव्ययिता आदि का आदर्श उपस्थित है- वह उनकी समग्र सौन्दर्य चेतना को प्रभावित करता है। शमशेर उन दुर्लभ कवियों में हैं जो केवल जीवन के सच को लिखते हैं; मगर उनके जीवन का सच, समय और समाज के सच से न केवल सहज रूप से जुड़ जाता है बल्कि उसी में अपना विस्तार भी पाता है। शमशेर की कविता का आदर्श 'बात बोलेगी' कविता की प्रारंभिक पंक्तियों में अभिव्यक्त हुआ है- 'बात बोलेगी/हम नहीं/भेद खोलेगी/बात ही।' 'दैन्य-दानव, काल-भीषण, क्रूर-स्थिति, कंगाल-बुद्ध, घर-मजूर' अकेले शब्दों से पूरे संदर्भ को ध्वनित करने की कोशिश में 'सख्त कविता' का आदर्श उपस्थित हो जाता है। यहाँ कविता की संरचना उस 'मानसिक अन्तर्ग्रथन' को सामने लाती है जिससे समूची कविता एक अविभाज्य ठोस बिम्ब के रूप में प्रकाशित हो उठती है। उनकी वेदना यह है कि उच्च वर्ग और ऊँचा उठता जा रहा है, उसके पास साधनों का अम्बार लगता जा रहा है लेकिन मध्यमवर्गीय समाज बेवसी, कुण्ठा, निराशा, वेदना को झेलने के लिए अभिशप्त है। आर्थिक विषमता ने उसे और भी तोड़ दिया है। उसकी आकांक्षाएँ चूर-चूर हो रही हैं। कवि को ऐसा लगने लगता है कि मानो सारे मार्ग अवरूद्ध हो गये हों, सारे रास्ते रूक से गये हैं- जर्द आहें हैं, जर्द है यह शाम, सभी राहें हैं नाकाम।

उनके यहाँ अभिव्यक्ति और संकोच का तनाव प्रत्यक्ष है। कवि एक संकेत के द्वारा, एक काव्य बिम्ब के द्वारा, दो स्थितियों या वस्तुओं के तनाव के द्वारा शाम का जो चित्र देना चाहता है- 'एक पीली शाम/पतझर का जरा अटका हुआ पत्ता'- वह चित्र पूरा होता है 'अब गिरा अब गिरा वह अटका हुआ आँसू/सान्ध्य तारक-सा/अतल में- लेकिन यहाँ अतल में गिरने के पहले संकोच का अटकाव का एक झिलमिलाता अन्तराल है जिसमें आँसू अपनी जीवितता ग्रहण करता है। यहाँ जन्म लेना, अलग होना है। अतल की ओर जाना, नितांत पराया हो जाना है। यह शमशेर की कविता की अन्यतम महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि वह बिल्कुल निजी और बिल्कुल पराये के बीच एक-एक क्षण को रचते हैं- जहाँ आँसू निजी भी हैं और नहीं भी हैं, पराया भी है और नहीं भी हैं। शमशेर एक ही साथ प्रवृति को भी प्रभावित करते हैं और भाव को भी। शमशेर की कविताएँ शाम और रात पर अधिक हैं। शाम उनकी मनःस्थिति को ज्यादा गहराई से व्यंजित करती है। उनके अकेलेपन व उदासी को शाम व रात पर लिखी कविताओं में देखा जा सकता है। 'आज मई की शाम अकेली', 'इन्दु विहान', 'शाम की मटमैली खपरैल', 'एक पीली शाम', 'शाम होने को हुई', तथा 'शाम-सुबह' जैसी कविताओं में उदासी का लगातार बना हुआ भाव ही व्यक्त हुआ है। 'एक पीली शाम' कविता में उदासी से परिपूर्ण उद्वेग की ही व्यंजना है। शाम का जो भाग गो-धूलि कहलाता है, वह मटमैला और पीला होता है। उसे पीली शाम कहना स्वाभाविक ही है। उसे मूर्त्त रूप देने के लिए पतझर के अटके हुए पीले पत्ते का समीकरण है। पीली शाम विस्तृत होती है। उसे

पतझर के पीले पत्ते में समेटना वैसा ही है जैसे छोटे दर्पण में किसी बहुत बड़ी चीज का प्रतिबिम्ब। फिर जब कवि यह कहता है कि तुम्हारे मौन दर्पण में कहीं वह स्वयं ही तो नहीं है, तो अभिप्राय यह होता है कि वह स्वयं कृश, म्लान, हारा-सा है। इस कविता में पीला अटका हुआ पत्ता और गिरने-गिरने को अटका हुआ आंसू- ये दोनों बिम्ब कवि की निजी पीड़ा का मर्मस्पर्शी सम्प्रेषण कराते हैं। इस कविता का गहरा सम्बन्ध उनकी निजी पीड़ा से भी है। आखिरी सांसें गिनती हुई मरणासन्न पत्नी को देखते हुए संवेदनशील हृदय में भावनाओं और विछोह की पीड़ा का ज्वर कैसे उमड़ता-घुमड़ता है- इसका प्रभावशाली दृश्यांकन यहाँ सहज उपस्थित है। 'पतझर का जरा अटका हुआ पत्ता'- शरीर में अटके हुए प्राण का प्रतीक है, लेकिन शाम का पीला होना कवि की घनीभूत वेदना का प्रतीक है। उनकी कविताओं की यह विशेषता है कि वे 'वस्तु' का सम्पूर्ण खाका या चित्र उपस्थित नहीं करते, बस उसके प्रमुख अंगों पर 'फोकस' डालकर संवेदनात्मक धरातल पर छोड़ देते हैं। उनकी कविताओं में ज्ञानेन्द्रिय विषयों- रूप, रस, शब्द, गन्ध, स्पर्श के शब्द चित्र बिखरे हुए हैं।

शमशेर की काव्यानुभूति वस्तुओं के मर्म में एक ही स्थिति को पकड़ती है, 'रह गया-सा'एक सीधा बिम्ब चल रहा है/जो शान्त इंगित-सा/न जाने किधर।' ये कविताएँ गहरी सामाजिक संभावना के परिवर्तनशील बोध को कलात्मक रूप में उजागर करती हैं। शमशेर एक खास सोच और तेवर वाले कवि हैं। अपनी काव्यवस्तु के चयन और उसके शिल्प संगठन में वे बेहद सजग हैं। वास्तव में उनकी कविता सीधे सरल तरीके से सामाजिक संघर्ष की कविता नहीं है, बल्कि उसे उनकी काव्य भाषा की बहुस्तरीयता को बेधकर ही समझा जा सकता है। बिम्ब व प्रतीक के मौलिक और कलात्मक प्रयोग से वे अपने अभिव्यक्ति कौशल को पैना बनाते हैं। उनकी कविताओं पर केदारनाथ सिंह ने लिखा है कि- ''जो बात सबसे अधिक प्रभावित करने वाली है, वह उनकी ध्वनि संवेदना या लयबोध है। इसलिए शमशेर के बिम्बों को उनके ध्वनिगत संदर्भ के स्तर पर देखने-परखने की आवशकता है।'' शमशेर की काव्यशैली पर उर्दू काव्यशैली का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। उर्दू ग़ज़ल के विविध शेड्स उनकी कविताओं में अनेक स्थलों पर देखे जा सकते हैं-

कितने बादल आये, बरसे और गये

जिसके नीचे मैं पड़ा, सुलगा किया।

उनकी ग़ज़लनुमा कविताएँ प्रेम और सैंदर्य के साथ ही राजनीतिक विदूरपताओं को भी प्रखर व्यंग्य के साथ व्यक्त करती हैं। वे न स्वयं के बारे में कुछ कहते हैं, न कविताओं के बारे में। कवि में भी वे कविता को ही बोलने देने वाले कवि हैं- बात बोलेगी, हम नहीं/भेद खोलेगी, बात ही।

अभ्यास प्रश्न

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :-

4. शमशेर का जन्म .... ई0 में हुआ था।

4. शमशेर को .... कहा गया है।

4. शमशेर बिम्ब ग्रहण में .... से प्रभावित है।

4. शमशेर .... सप्तक के कवि है।

11. दूसरा सप्तक का प्रकाशन वर्ष .... है ।

ख) संक्षेप में उत्तर दीजिए :-

4. शमशेर की दो रचनाओं के नाम बताइए।

4. शमशेर पर किस विचारधारा का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा।

ग) टिप्पणी कीजिए :-

4. शमशेर बहादुर सिंह की कविता की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

4. शमशेर की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

4. शमशेर को 'कवियों का कवि' क्यों कहा जाता है ?

4. शमशेर की कविताएँ प्रगतिवादी चेतना से भिन्न हैं- कैसे ?

11.5 सारांश

इस ईकाई में आपने प्रगतिशील काव्यान्दोलन के संदर्भ में शमशेर की कविताओं के महत्त्व का परिचय प्राप्त किया है। हमने प्रगतिशील आन्दोलन, प्रगतिवाद के सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य के साथ शमशेर बहादुर सिंह के महत्त्व को समझाने का प्रयास किया है। प्रगतिशील आन्दोलन और मार्क्सवाद से उनका क्या सम्बन्ध है तथा किस प्रकार वैचारिक प्रतिबद्धता के बाद भी शमशेर काव्यात्मक बिम्बों के कवि बनते हैं साथ ही प्रयोगवाद और नयी कविता के पुरस्कर्त्ताओं में अग्रणी स्थान बनाते हैं- यहाँ इसे विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। शमशेर आत्मगत बिम्ब और आत्मा का वस्तुगत बिम्ब दोनों को एक ही साथ रचते हैं- 'एक नीला आइना/बेठोस-सी यह चाँदनी/और अन्दर चल रहा मैं/उसी के महातल के मौन में।' इस काव्यात्मक बिम्ब के सृजन में

कवि का दृष्टिकोण नितांत भिन्न है। वह 'बेठोस नीले आइने' में अपने को वैसा नहीं पाता, जैसा वस्तुतः वह है। शमशेर न प्रतिछवि रचते हैं, न छायाभास ही, वे दोनों के बीच की स्थिति का बिम्ब रचते हैं। देखने की क्रिया ही बिम्ब है। शमशेर की काव्य संवेदना मूलतः रोमांटिक तथा काव्य संस्कार प्रधानता रूपवादी है। इस रोमांटिक तथा रूपवादी रूझानों के बावजूद विवेक के धरातल पर शमशेर प्रगतिशील सामाजिक चेतना के प्रति अपनी गहरी आस्था प्रकट करते हैं तथा धरती व मनुष्यता की मुक्ति के लिये संघर्ष करते हैं। शमशेर की कविताएँ प्रयोगवाद के काव्यशास्त्र को विस्तार देती हैं। वे विचारों में जितने स्पष्ट जान पड़ते हैं, काव्य प्रक्रिया में उतने ही उलझे व दुर्बोध प्रतीत होते हैं। वे अपनी कविताओं में जिस शिल्प का प्रयोग करते हैं, वह प्रायः साधारण पाठक को चिंतित करता है- शिक्षित संवेदना के अभ्यास से ही उनकी अर्थवत्ता ग्रहण की जा सकती है।

शमशेर की कविता पढ़ते हुए आप देखेंगे कि कवि प्रेम और सौन्दर्य चेतना के साथ-साथ बिम्बों, कल्पनाओं, प्रतीकों के माध्यम से विश्वदृष्टि और वर्गचेतना को बदलने का संघर्ष करता है। शमशेर के शब्दों में- 'कला का संघर्ष समाज के संघर्षों से एकदम कोई अलग चीज नहीं हो सकती।' विषमतापूर्ण वर्तमान जीवन, दुःख और दैन्य के चक्र में पिसता जन सामान्य, जीवन के प्रत्येक उतार-चढ़ाव में जन सामान्य की स्वतंत्रता ही शमशेर की कविताओं का लक्ष्य है।

11.6 शब्दावली

4. दूसरा सप्तक : प्रकाशन 1951 (सं. अज्ञेय), संकलित कवि-भवानी प्रसाद मिश्र, शकुन्त माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती।

4. प्रगतिशील काव्यान्दोलन : 1930 के बाद नवीन सामाजिक चेतना के कारण 1936 में प्रगतिशल लेखक संघ का गठन हुआ। प्रगतिशील काव्यान्दोलन ने अपनी विचारधारात्मक प्रेरणा मार्क्सवाद से ग्रहण की। प्रगतिशील काव्यान्दोलन किसान-मजदूरों के प्रति गहरी सहानुभूति के साथ शोषण उत्पीड़न से मुक्ति के सामूहिक प्रयास की जरूरत पर बल देता है। इस काव्यन्दोलन को नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल तथा त्रिलोचन व शमशेर बहादुर सिंह ने आगे बढ़ाया।

4. प्रयोगवाद: प्रयोगवाद का आरंभ अज्ञेय के सम्पादकत्व में निकलने वाले 'तार सप्तक' (1943) से माना जाता है। 'प्रयोगवाद' नाम प्रगतिशील विचारधारा के विरोध में दिया गया, क्योंकि जहाँ प्रगतिवाद में सामाजिक मुक्ति का सवाल महत्त्वपूर्ण था वहीं 'व्यक्ति स्वातंत्रय' की वकालत कर प्रयोगवाद के माध्यम से सामाजिक मुक्ति का विरोध हुआ। प्रयोगवाद ने हिन्दी कविता में रूपवाद (व्यक्तिवाद) को मजबूत आधार दे दिया। प्रयोगवाद मानव जीवन के आंतरिक यथार्थ पर बल देने के कारण अनास्था, संदेह, व्यक्तिवाद व बौद्धिकता का झूठा मुखौठा लगाकर प्रयोग का आग्रह सहित साहित्यिक मूल्यों तक सीमित रहा तथा मूलतः शिल्प की चमक-दमक का आन्दोलन बन गया।

4. बिम्बवाद : बिम्ब अंग्रेजी के इमेज शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है, जिसका अर्थ है चित्रण करना या मानसी प्रतिकृति उतारना। बिम्ब एक प्रकार का भावगर्भित शब्द-चित्र है। बिम्ब शब्दों में निर्मित आकृति है। केदारनाथ सिंह ने लिखा है कि- ''बिम्ब शब्द के अर्थ में क्रमशः विकास हुआ है। आधुनिक आलोचना के क्षेत्र में जो अर्थ उसे दिया गया है वह अपेक्षाकृत नया है। सामान्यतः उसका प्रयोग मूर्तिमता अथवा चित्रात्मकता के अर्थ में किया जाता है।'' काव्य बिम्ब का मुख्य कार्य सम्प्रेषणीयता है। वह विषय को स्पष्ट करता है, दृश्य, भाव या व्यापार को स्पष्ट करता है। बिम्बवादी विचारधारा का प्रवर्तक टी.ई. इल्मे हैं लेकिन बिम्बवाद का विकास एजरा पाउण्ड के माध्यम से हुआ। बिम्बवादियों का उद्देश्य कविता को एक नयी दिशा देना है।

11.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क) 4. 1911 4. कवियों का कवि 4. एजरा पाउंड

4. द्वितीय तारसप्तक 11. 1951

ख) 4. चूका भी नही हूँ मैं, इतने पास अपने 4. मार्क्सवाद

11.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

4. शमशेर: प्रतिनिधि कविताएँ 2008, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

4. श्रीवास्तव, सं0 परमानन्द, दिशान्तर (1999) , अनुराग प्रकाशन, काशी।

4. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास (1996), राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

4. नवल, डॉ. नन्दकिशोर, आधुनिक हिन्दी कविता (1993), अनुपम प्रकाशन, पटना।

11. सिंह, भगवान, इन्द्रधनुष के रंग, वाणी प्रकाशन (1996), नई दिल्ली।

11.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

4. सिंह, नामवर, कविता के नये प्रतिमान।

4. शर्मा, डॉ0 रामविलास, नई कविता और अस्तित्ववाद।

4. श्रीवास्तव, परमानन्द, समकालीन कविता का यथार्थ।

4. वाजपेयी, अशोक, फिलहाल।

11. राय, डॉ0 लल्लन, हिन्दी की प्रगतिशील कविता।

11.10 निबंधात्मक प्रश्न

4. शमशेर बहादुर सिंह की काव्य चेतना और शिल्प गठन पर प्रकाश डालिये।

4. प्रगतिशील काव्यान्दोलन और शमशेर का महत्त्व पर विचार प्रस्तुत कीजिये

4. शमशेर की काव्यभाषा और बिम्ब विधान का महत्व बताइये।

4. शमशेर प्रगतिवाद और प्रयोगवाद दोनों की चेतना से भिन्न किस्म के कवि हैं- कैसे?

11. शमशेर बहादुर सिंह की कविताओं की अन्तर्वस्तु का महत्व स्पष्ट कीजिए।

इकाई 12 श्रीकांत वर्मा : पाठ और आलोचना

इकाई की रुपरेखा

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 सातवें दशक की कविता और श्रीकांत वर्मा
12.4.1 श्रीकांत वर्मा: शब्द शिल्प की सार्थकता
12.4.2 श्रीकांत वर्मा: नई काव्य भाषा की तलाश
12.4.3 श्रीकांत वर्मा: संक्षिप्त परिचय और रचनाएँ
12.4 श्रीकांत वर्मा: पाठ और आलोचना
12.4.1 श्रीकांत वर्मा की कविताएँ: पाठ
12.4.2 श्रीकांत वर्मा की कविताएँ: आलोचना
12.5 सारांश
12.6 शब्दावली
12.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
12.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.10 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

पूर्व की इकाई में आपने समकालीन कविता और शमशेर बहादुर सिंह का अध्ययन किया समकालीन कविता गहरे अर्थ में राजनीतिक कविता है। उस पीढ़ी के अधिकांश कवियों ने समय-समाज-राजनीति की चिंताओं-तनावों का सृजनशीलता से सीधा रिश्ता कायम किया, इन कवियों ने अपने समय-समाज की स्थिति से क्षुब्ध होकर नितांत तात्कालिकता को रचना में उतारने का यत्न किया, परिणाम यह हुआ कि इनका ऐतिहासिक विवेक कुंद होता गया और भाषा जातीय स्मृति के गहरे बोध से कटती गई। वह दौर मोहभंग का भी है और स्मृतिभ्रंश का भी। धीरे-धीरे काव्यभाषा में सपाटता सतहीपन और मानवीय दरिद्रता आती गई। अकविता के चीखते काव्य मुहावरे यौन क्रांति की आवाज बनते गये, नवगीतकारों का दौर अबौद्धिक स्थितियों का शिकार होता गया, नववामपंथी-जनवादी कविताओं की नारेबाजी अकाव्यात्मक लगने लगी- जैसे कविता राजनीतिक दलदल में फँसकर गहरी सांस्कृतिक जड़ों और वैचारिक स्थितियों की धूरी से उतरने लगी। इस निराशा, घुटन, अराजकता और मूल्यहीनता के माहौल में अमरीकी कवि एलिन गिन्सबर्ग 1962-63 में भारत आया, उसका स्थायी निवास बनारस था लेकिन उसके यौनवाद का

प्रभाव युवा कवियों पर पड़ा। गिन्सबर्ग का 'हाउल' युवा कवियों का 'धर्मग्रंथ' बन गया ऊब, उपभोक्तावाद और यौन-विकृतियों की बजबजाहट के वीभत्स चित्र 'मुक्तिप्रसंग' और 'कांकावती' में देखे जा सकते हैं। डॉ0 नन्दकिशोर नवल ने इस दौर को 'नयी विद्रोही पीढ़ी की कविता' नाम दिया है- जिसके प्रसिद्ध कवि हैं श्रीकांत वर्मा (1931-1986) और धूमिल (1931-86)। सातवें दशक की हिन्दी कविता में सीमाओं का अतिक्रमण कर विद्रोह की एक नयी भूमि निर्मित करने वालों में श्रीकांत वर्मा महत्वपूर्ण कवि हैं।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई में आप सातवें दशक के महत्त्वपूर्ण कवि श्रीकांत वर्मा की कविता में अभिव्यक्त समकालीन वास्तविकता की तीखी चेतना का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप देखेंगे कि सन् 60 के बाद की हिन्दी कविता में श्रीकांत वर्मा किस प्रकार नयी चेतना का विकास करते हैं। यह इकाई सातवें दशक की कविता के विभिन्न पहलुओं के साथ-साथ श्रीकांत वर्मा और आधुनिकतावादी काव्य मुहावरों से भी परिचित करायेगी।

12.3 सातवें दशक की कविता और श्रीकांत वर्मा

सातवें दशक की कविता की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसने स्वातंत्र्योत्तर सामाजिक-राजनीतिक जीवन के पाखण्ड, स्वार्थपरता, अंतर्विरोध, हताशा और विद्रूपता को बहुत ही नंगी और बेलौस भाषा में उजागर किया; इस कविता को 'मोहभंग की कविता' मात्र कहना उचित नहीं है। भारतीय स्वतंत्रता-प्राप्ति से मोह तो नई कविता के कवियों को हुआ था इसलिए बदली हुई परिस्थितियों में यथार्थ के साक्षात्कार से मोहभंग उन्हीं का हुआ है। नये कवि न स्वाधीनता आन्दोलन में हिस्सा लिये थे, न उसके आदर्शों से प्रभावित थे और न उससे उम्मीद ही लगाए थे। उन्होंने तो स्वाधीन भारत के भ्रष्ट और हताशाग्रस्त वातावरण में ही आंखे खोली थीं, इसलिये वे केवल विद्रोही थे, अपने सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन के यथार्थ के प्रति आक्रोश और अस्वीकार का भाव रखने वाले थे । डॉ0 नामवर सिंह ने आलोचना के मार्च 1968 के अंक में युवालेखन पर बहस का प्रारूप प्रस्तुत करते हुए इसकी ताईद की और इस तरह मोहभंग की कविता की जगह 'युवा कविता' शब्द प्रचलन में आया। इन युवा कवियों ने राजनीति, राजनीतिक दल, विचार-भाव और जनता से नए ढंग का सम्बंध स्थापित किया और राजनीतिक कविता लिखते हुए भी अपनी सृजनात्मक स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने की कोशिश की, बल्कि उसी के बल पर उन्होंने प्रगतिशील राजनीतिक कवियों से अलग एक नई किस्म के राजनीतिक कवि के रूप में अपनी पहचान बनाई।

मोहभंग की प्रक्रिया सबसे अधिक तीखे रूप में सबसे पहले श्रीकांत वर्मा में दिखलाई पड़ी- 'मायादर्पण' संग्रह (1957) में। यह संग्रह उनके पहले काव्य संग्रह 'भटका मेघ' (1957' के ठीक दस साल बाद प्रकाशित हुआ, जिसमें वे बिल्कुल बदले हुए रूप में सामने आए।

'मायादर्पण' में श्रीकांत वर्मा ने घोषणा की कि.... ''सारे संसार में सभ्यताएँ दिन गिन रही हैं/क्या मैं भी दिन गिनूँ ?/अपने निरानन्द में/रेंक और भाग और लीद रहे गधे से/मैं पूछकर/आगे बढ़ जाता हूँ/मगर ख़बरदार! मुझे कवि मत कहो।/मैं बकता नही हूँ कविताएँ/इज़ाद करता हूँ /गाली/फिर उसे बुदबुदाता हूँ/ मैं कविताएँ बकता नहीं हूँ/मैं थकता नहीं हूँ /कोसते।'' श्रीकांत वर्मा ने कविता का विषय बनाया, चारों ओर से मूल्यहीन और क्रूरतापूर्ण संसार को, जिसमें जीने के लिए वे विवश थे। उन्होंने इस परिस्थिति को 'मृत्यु' नाम दिया और 'अवसाद' को अपनी कविता का स्थायी भाव बनाया। यही वह समय था, जबकि राजनीति में लोहिया की लोकप्रियता बढ़ी थी और वे अपने गैर-कांग्रेसवाद के नारे को युवा लेखकों में 'व्यवस्था का विरोध' के नारे में तब्दील कराने में सफल हुए थे। यह मोहभंग की प्रक्रिया को चरम तक पहुँचना ही था, जिसमें सारा जोर इस बात पर था कि यथास्थितिवाद टूटे और स्थिति बेहतर हो। मलयज ने लिखा है कि ''नेहरू युग का साहित्य इसी शानदार मोहभंग का साहित्य है। इसके विपरीत नेहरू युग के बाद की राजनीति आम आदमी की राजनीति है। छात्र-असंतोष, घेराव और दल-बदल में आम आदमी की ही नस बजती है। जिस राजनीति के अन्तर्गत न्यूनतम कार्यक्रम का झण्डा पार्टी-सिद्धांतों के चिथड़े को मिलाकर बनाया गया हो, वहाँ मोहभंग की गुंजाइश रह ही नहीं जाती। आम आदमी की राजनीति स्थिति के इस कटु स्वीकार से शुरू होती है।'' श्रीकांत वर्मा की कविताएँ बुनियादी तौर पर इसी कटुस्थितियों-परिस्थितियों की सच्चाई की साक्षात्कार की कविताएँ हैं। उनके प्रारंभिक काव्य संग्रहों-भटका मेघ, मायादर्पण, दिनारंभ, जलसाघर में आत्मरति और आत्मश्लाघा भाव की प्रधानता है, भीड़ से नफरत और घृणा का भाव है। इन संग्रहों में यौन विकृतियों की बजबजाहट भी कम नहीं- जैसे 'स्त्रियाँ जो प्रेमिका नहीं थीं न वेश्याएँ/बिस्तर पर/छाप की तरह/दूसरे सबेरे धूल जाती हैं।' या 'जैसे किसी वेश्या के कोठे से/अपने को बुझा कर'- यह सब इस बात का लक्षण है कि इन रचनाओं में ऊब, अनिर्णयात्मकता, आक्रामकता, विडम्बना, यौन-विकृति- यह सब आधुनिकतावाद का प्रतिफलन है, लेकिन 'मगध' संग्रह की कविताओं में शांति है, ठहराव है, सोच है, रास्ते की खोज है और ऐतिहासिक अतीत को वर्तमान की असंगति से जोड़ने का प्रयास भी है। यह प्रयास 'जलसाघर' कविता में भी है:

> ''बार-बार पैदा होती है आशंका, बार-बार मरता है
> वंश।
> क्या मैं इसी प्रकार, बिल्कुल बेलाग, यहाँ से
> गुज़र जाऊँ ?
> हे ईश्वर! मुझको क्षमा करना, निर्णय
> कल लूँगा, जब
> निर्णय हो चुका होगा''

श्रीकान्त वर्मा जिस भटकाव और अस्तित्ववादी अवसाद के दौर में कविता करते हैं, उसमें 'इसके बाद कुछ भी कहना बेकार है।' कोई भी जगह नहीं रही/रहने के लायक/न मैं आत्महत्या कर कर सकता हूँ/न औरों का/खून! न मैं तुमको जख्मी/कर सकता हूँ /न तुम मुझे/निरस्त्र।/तुम जाओ अपने बहिश्त में/मैं जाता हूँ/अपने जहन्नुम में। यहाँ समय-समाज की चुनौतियों से उपजी बौद्धिक चिन्ताओं का सृजनशीलता से सीधा रिश्ता कायम हुआ है। ये कविताएँ अपनी काव्य संवेदना में इतनी धारदार, निर्भय और व्यापक हैं कि उसमें न केवल राजनीतिक-आर्थिक क्षेत्रों के भ्रष्टाचार, चरित्रहीनता पर तेज टिप्पणियाँ, व्यंग्यवक्रोक्तियाँ, खीझ-आक्रोश-गुस्सा-विद्रोह की मुद्राएँ हैं- वरन् मानवीय सार्थकता के सारे सरोकार सक्रिय हो उठे हैं। ऐसे में लोकतंत्र में विश्वास कायम रखना मुश्किल है। श्रीकांत वर्मा ने इसे सहज ढग से अभिव्यक्त किया:-

''कुछ लोग मूर्तियाँ बनाकर

फिर बेचेंगे क्रांति की (अथवा षड्यंत्र की)

कुछ लोग सारा समय

कसमें खायेंगे लोकतंत्र की

मुझसे नहीं होगा

जो मुझसे नहीं हुआ

वह मेरा संसार नहीं है।''

12.4.1 श्रीकांत वर्मा: शब्द शिल्प की सार्थकता

श्रीकांत वर्मा स्वातंत्रयोत्तर भारत में व्याप्त भयावहता, आतंक, अन्याय, शोषण, अजनबियत, उदासी तथा राजनीतिक त्रासदी को उद्घाटित करने वाले अत्यंत सजग कवि हैं। वे मूल्य दृष्टि के विरोध से कविता शुरू करते हैं और विरोध में ही समाप्त भी। उनकी कविताओं पर युद्ध की खौफनाक छाया मँडराती हुई सी है और अमानवीय बर्बरता का तीव्र विरोध सहज देखा जा सकता है। यह अचानक नहीं है कि उनकी कविताओं में इतिहास के प्रसिद्ध युद्ध-नायक किसी न किसी रूप में आते हैं। युद्ध और शांति, अन्याय और न्याय, बर्बरता और जिजीविषा का द्वन्द्व उनकी पूरी कविताओं में व्याप्त है। अनास्था, घुटन, संत्रास, उदासी और टूटते हुए जीवन के बीच प्रतिरोधी शक्तियों से जूझने की, यथास्थिति को तोड़ने की शक्ति वाली कविताओं के लिए भाषा का सजग उपयोग जरूरी है। श्रीकांत वर्मा की कविताओं में बगल से गोली का दनाक से गुजरना, कहीं बेंत का पड़ना, घोड़ों का हिनहिनाना, हत्यारों का मूछों पर ताव देना, सहसा बम फटना- यह सब

अनायास नहीं है। यह सब उनके समय का सच है। कृत्रिमता और परम्परागत जड़ता का प्रतिरोध के लिए श्रीकांत वर्मा अपनी कविताओं में बेलौस वक्तव्य देते हैं:-

हे ईश्वर! सहा नहीं जाता मुझसे अब

औरों की सुविधा से

जीने का ढंग।

× × ×

हे ईश्वर! मुझसे बरदाश्त नहीं होगा

यह मनीप्लाण्ट।

सहन नहीं होगा

यह गमले का कैक्टस

पिकनिक के। चुटकुले

आफ़िस का ब्यौरा

और

देशभक्त कवियों की

कविताएँ।

(क्षमा करें महिलाएँ)

मैं अपने कमरे में खड़ा हूँ नग्न- 'जलसाघर' की कविताओं में क्रमशः गोली का दनाक से चलना और घोड़े का बार-बार आना और विजेता, चेकोस्लोवाकिया, ढाका बेतार केन्द्र, युद्ध नायक, बाबर और समरकंद- जैसी कविता में बर्बरता, छीना-झपटी, लूट-खसोट, अन्याय - अत्याचार, दमन-शोषण व हत्या-फरेब से भरी होना उनकी सजग राजनीतिक चेतना का परिणाम और प्रमाण है। यहाँ 'साध्वियाँ चली आ रही हैं, हया और बेशर्मी/फली और फूली/ किसको दूँ अपना बयान ? हलफ़नामा/उठाऊँ/किसके सामने ? कोई है ? या केवल/बियाबान है ? मेरे पास कहने के लिये/केवल दो शब्द हैं/'लौट जाओ।' यूरोप/बड़बड़ा रहा है बुखार में/अमेरिका/पूरी तरह भटक चुका है, अंधकार में/एशिया पर/बोझ है गोरे इन्सान का/संभव नहीं है/कविता में यह सब कर पाना'- ये ऐसी कविताएँ हैं जो इजलास के सामने हलफ़नामा उठाने को तैयार हैं, पर उनके

लिए न्यायालय बंद हो चुके हैं। उनकी कविताओं में 'विलाप', 'संताप', 'चीख' जैसे शब्दों का बार-बार प्रयोग करूणा सृजित करता है। गरज यह है कि श्रीकांत वर्मा की कविताओं में करूणा के चित्र भयानक और नाटकीय लगने वाले काव्य संसार को मानवीय संदर्भ देकर पाठक की संवेदना का विस्तार करते हैं। उनकी कविताएँ केवल भाषा की शक्ति को ही नहीं बढ़ाती बल्कि स्थिति का विश्लेषण भी करती हैं। उनके यहाँ शब्द बुलेट का काम करते हैं :-

''हमारा क्या दोष?

न हम सभा बुलाते हैं

न फैसला सुनाते हैं

वर्ष में एक बार

काशी आते हैं-

सिर्फ यह कहने के लिए

कि सभा बुलाने की भी आवश्यकता नहीं

हर व्यक्ति का फैसला

जन्म से पहले हो चुका है।''

भाषिक-प्रक्रिया और काव्य-प्रक्रिया दोनों की सृजनात्मकता स्वयं श्रीकांत वर्मा की कविताओं में एक खास काव्य-टोन पैदा करती है।

'मगध' में मगध, काशी, कोसांबी, हस्तिनापुर, मथुरा, नालन्दा, तक्षशिला, कोसल, अशोक, शकटार, अजातशत्रु, वसंतसेना, आम्रपाली इत्यादि का जादुई स्मरण है, साथ ही मायालोक भी है। यहाँ प्रधानता आत्ममंथन का है। व्यंग्य, वक्रोक्ति व विडम्बना को श्रीकांत वर्मा आक्रामकता प्रदान नहीं करते हैं। क्रांति का हुहुआता माहौल नहीं बनाते हैं। यहाँ अतीतकालीन इतिहास के बड़े-बड़े नाम हैं लेकिन वे केवल बहाना मात्र हैं। सच है केवल त्रासदियों और मनोवृत्तियों को समूचे संदर्भ के साथ खोल देने की रचनात्मक छटपटाहट-

''बन्धुओं

यह वह मगध नहीं

तुमने जिसे पढ़ा है

किताबों में

यह वह मगध है

जिसे तुम

मेरी तरह गवाँ

चुके हो।''

यहाँ महत्त्वपूर्ण है बातचीत और सम्बोधन का लहजा। ऐतिहासिक-पौराणिक मिथकों का श्रीकांत वर्मा ने सार्थक उपयोग किया है। यहाँ इतिहास के पात्र भी मिथक के रूप में आये हैं। इस रचनात्मक उपलब्धि को 'मगध' में इस प्रकार व्यक्त किया हैः-

'केवल अशोक लौट रहा है

और सब

कलिंग का पता पूछ रहे हैं

केवल अशोक सिर झुकाए है

और सब विजेता की तरह चल रहे हैं।'

12.4.2 श्रीकांत वर्मा: नयी काव्यभाषा की तलाश

श्रीकांत वर्मा की परवर्ती कविताओं में पश्चिमी आधुनिकतावादी चिंतन और संवेदना का प्रभाव अधिक है। वे 'सिनिसिज्म' के विचार को मुक्ति के तलाश के विचार में बदलने का प्रयास करते हैं तथा सामाजिक संगठन और कौशल से प्राप्त होने वाली स्वतंत्रता की भी तलाश करना चाहते हैं। इसलिये अपने दौर की भावधारा के अनुरूप ही श्रीकांत वर्मा नई कविता की भाषा को नष्ट कर अपने लिए एक 'निर्वसन' भाषा गढ़ते हैं और ऐसे शिल्प की खोज करते हैं, जिसमें कविता भीतर से जुड़ी होने पर भी ऊपर से खंडित दिखलाई पड़ती थी और जिसमें तुकों के साथ क्रीड़ा करने का भरपूर अवसर उपलब्ध होता है- ''कोई मेरे बिस्तरे पर/आकर/सो गया है/कोई मेरा बोझ/अपने/कन्धे पर/ढो रहा है/मैं जंगलों के साथ/सुगबुगाना चाहता हूँ /और/शहरों के साथ/चिलचिलाना/चाहता हूँ।'' श्रीकांत वर्मा ने अन्त्यानुप्रयास के खिलवाड़ के संयोजन से अर्थचमत्कार एवं कविता की संरचना में विशेष कसावट का निर्माण किया है। यह विशेषता यहाँ केवल शिल्प या संरचना का अंग नहीं है, वह उनके दृष्टिकोण को भी सूचित करती है। कथ्य की अर्थगंभीरता के अभाव में तुकों का खिलवाड़ निरा खिलवाड़ रह जाता जबकि यहाँ वह अर्थक्षमता में वृद्धि करता है-

मैं हरेक नदी के साथ

सो रहा हूँ

मैं हरेक पहाड़

ढो रहा हूँ

मैं सुखी

हो रहा हूँ

मैं दुःखी

हो रहा हूँ

मैं सुखी-दुःखी होकर

दुःखी-सुखी

हो रहा हूँ

मैं न जाने किस कन्दरा में

जाकर चिल्लाता हूँ: मैं

हो रहा हूँ: मैं

हो रहा हूँ-

आरंभ का शब्द-कौतुक यहाँ अन्त तक आते-आते सर्वथा गंभीर अर्थव्यंजना ग्रहण कर लेता है। यही श्रीकांत वर्मा की कविताओं का अर्थगौरव है। 'मगर खबरदार/मुझे कवि मत कहो। मैं बकता नहीं हूँ कविताएँ/ईजाद करता हूँ गाली/फिर उसे बुदबुदाता हूँ/मैं कविताएँ बकता नहीं हूँ'- ऐसी काव्य पंक्तियों की अतिनाटकीयता किसी अर्थ में उनकी कविता की सीमा भी कही जा सकती है।

श्रीकांत वर्मा शब्दों से कम संकेतों से अधिक कविता बनाते हैं। उनकी कविताओं में सहायक क्रियाओं का प्रयोग नहीं के बराबर है। उनकी काव्य पंक्तियाँ भागती हुई-सी लगती हैं- अ-प-ने/आप/से-मैंने/उसे/मा-रा/स-ड़-क/के/कि-ना-रे/बैठी/बूढ़ी/औ-र-त/क-ह-ती/है। 'हत्यारा' या 'विजेता' जैसी कविताओं में एक शब्द से दूसरा शब्द निकलता है, एक वाक्य से दूसरा वाक्य निकलता है, एक चित्र से दूसरा चित्र निकलता है। शब्द चित्रों की यह क्रमागतता ऐसी है मानो

कवि आज की वास्तविकता का जल्दी से जल्दी बयान कर डालना चाहता है क्योंकि दुनिया भर की वास्तविकताएँ एक दूसरे से गड्डमड्ड होने को हैं।

श्रीकांत वर्मा अपनी कविताओं में स्वप्न संसार जैसा रचते हैं खासकर ‘मायादर्पण‘ और ‘जलसाघर’ की कविताओं में, जहाँ बहुत सारे असम्बद्ध चित्र अचानक जुड़ने लगते हैं। शायद कवि अपने चारों ओर की अव्यवस्था को सम्पूर्णता में व्यक्त करना चाहता है-

‘‘मैं और तुम। अपनी दिनचर्या के

पृष्ठ पर

अंकित थे

एक संयुक्ताक्षर।’’

या ‘धो-धो जाता है/कौन/बार-बार आसूँ से कीचड़ में लथपथ/इस/पृथ्वी के पाँव ?/नदियों पर झुका हुआ काँपता है कौनः कवि अथवा सन्निपात ? ’- यह चित्रात्मकता ही श्रीकांत वर्मा की कविताओं की विशेषता है। वे देखे हुए चित्रों को कभी व्यंग्यपूर्ण, कभी विडम्बनापूर्ण और कभी नाटकीय बनाकर रखते चलते हैं। कहीं-कहीं तुकबाजी भी खूब करते हैं- सुन पड़ती है टाप/-झेल रहा हूँ थाप/कहुए पर बैठा है नीला आकाश-। इतने बड़े बोझ के नीचे भी/दबी नहीं, छोटी-सी घास। मैं एक भागता हुआ दिन हूँ और रूकती हुई रात-/मैं नहीं जानता हूँ /मैं ढूँढ़ रहा हूँ अपनी शाम या ढूँढ रहा हूँ अपना प्रात।- ऐसी कविताएँ ‘दिनारम्भ‘ संग्रह में खूब हैं। यहाँ प्रायः छोटी कविताएँ हैं। इनमें तीव्र वैचारिक सघनता है लेकिन इनके छोटे-छोटे बिम्ब एक व्यापक अनुभव जगत को समेटने और खोलने वाले हैं। श्रीकांत वर्मा की छोटी कविताओं में जो ऐन्द्रिकता और चित्रात्मकता मिलती है, वह उनके पाठकों को राहत देती है। ऐसे पाठकों को, जो उनकी लम्बी कविताओं के आतंक और नरक से गुज़र रहे होते हैं।

श्रीकांत वर्मा की कविताओं के क्रमिक विकासक्रम में यह देखना दिलचस्प है कि उनकी प्रारंभिक कविताओं में ग्राम्य परिवेश के प्रति गहरा लगाव है। नदी, घाट, टीला, खँडहर, चिड़िया, आकाश, बादल, खेत, गुलाब, टेसू, बट, पीपल, सावन, पुरवाई, आषाढ़ी सन्ध्या, फागुनी, हवा, उदास लहर, झाड़ी-झुरमुट, बेल-काँटा, उजली-गोरी-चाँदनी इत्यादि ग्राम्य प्रकृति के अनेक ताजा चित्र इन कविताओं में मौजूद हैं। बाँसों का झुरमुट, तुलसी का चौरा, सरसों का खेत, महुए के फूल, पोखर का जल, मेड़ों पर बैठे पंथी, गायों की खड़पड़, सूखी-दरकी धरती, उजड़ी खपरैलें जैसी ग्रामीण शब्दावली का भी प्रचुर प्रयोग हुआ है, लेकिन परवर्ती संग्रह की कविताओं में जो आत्मीयता, कोमलता, लोक-सम्पृक्ति और एक खास हद तक जो रोमानी अन्दाज दिखायी पड़ता है, वह एकदम नया है। पहले संग्रह में जो ग्राम्य और कस्बाई परिवेश था, वह बाद के संग्रहों में

महानगरीय हो गया है- अत्यंत जटिल, व्यापक, क्रूर और निर्मम। यहाँ वर्तमान अमानवीय भयावहता का पूरा ग्लोब घूमने लगता है- वियतनाम, चेकोस्लोबाकिया, क्रेमलिन, अमेरिका, हिरोशिमा, पेरिस, यूनान, ढाका तथा समरकंद के साथ-साथ लेनिन, स्टालिन, बेरिया, लिंकन, क्लाडइथरली, गोडसे, अशोक इत्यादि न जाने कितने नामी-बदनामी इतिहास पुरूष अभिनय करते से दिखते हैं। इन कविताओं का मुख्य स्वर गुस्सा, विद्रोह, घृणा, क्षोभ, छटपटाहट के साथ-साथ निर्मम प्रहार का है।

12.4.3 श्रीकांत वर्मा: जीवन परिचय और रचनाएँ

जन्म 18 सितम्बर 1931 विलासपुर (छत्तीसगढ़), प्रारंभिक शिक्षा विलासपुर से। 1956 में नागपुर विश्वविद्यालय से हिन्दी साहित्य में एम0ए0। शिक्षक और पत्रकार रूप में जीवन का प्रारंभ। भारतीय श्रमिक (1956-58), कृति (1958-61), दिनमान (1964-77) तथा वर्णिका (1985) जैसे पत्रों से सम्बद्ध। यूरोप के विश्वविद्यालयों की यात्रा। अयोबा विश्वविद्यालय के इन्टरनेशनल राइटिंग प्रोग्राम में 1970-71 तथा 78 में अतिथि कवि के रूप में सम्बद्ध। 1957 में भटका मेघ, 1967 में मायादर्पण, 1967 में दिनारंभ, 1973 में जलसाघर, 1964 में 'मगध' कविता संग्रहों का प्रकाशन। झाड़ी (1964) संवाद (1969) कहानी संग्रह का प्रकाशन। दूसरी बार (1968) उपन्यास का प्रकाशन। 'जिरह' नाम से 1973 में आलोचनाकृति। अपोलो का रथ (1975) यात्रावृतांत। आन्द्रेई वोज्नेसेंस्की की कविताओं का अनुवाद 'फैसले का दिन' (1970) नाम से तथा 'बीसवीं शताब्दी के अंधेरे में' (1982) में साक्षात्कार व वार्तालाप का प्रकाशन। 1973 में उन्हें मध्यप्रदेश सरकार ने 'उत्सव 73' के अन्तर्गत सम्मानित किया। 1977 में ही तुलसी पुरस्कार (मध्यप्रदेश)। 1987 में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी सम्मान। 1980 में मध्यप्रदेश सरकार का शिखर सम्मान। 1984 में कविता केरल का 'कुमारआशान' राष्ट्रीय पुरस्कार। इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्रसंघ युवा परिषद् का राष्ट्रीय पुरस्कार तथा दिल्ली सरकार का साहित्य-कला परिषद् पुरस्कार और इंदिरा-प्रियदर्शिनी पुरस्कार। 21 मई 1986 को गले के कैंसर से अमेरिका में मृत्यु।

12.4 श्रीकांत वर्मा: पाठ और आलोचना

12.4.1 श्रीकांत वर्मा की कविताएँ: पाठ

4. माया-दर्पण

देर से उठकर

छत पर सर धोती

खड़ी हुई है

देखते-ही-देखते
बड़ी हुई है
मेरी प्रतिभा
लड़ते-झगड़ते
मैं आ पहुँचा हूँ
उखड़ते-उखड़ते
भी
मैंने
रोप ही दिये पैर
बैर
मुझे लेना था
पता नहीं
कब क्या लिखा था
क्या देना था।
अपना एकमात्र इस्तेमाल यही किया था-
एक सुई की तरह
अपने को
अपने परिवार से निकालकर
तुम्हारे जीर्ण जीवन को सिया था।
(दोनों हाथों में सँभाल
अपने होठों से
छुलाकर)
बहते हुए पानी में झुलाकर
अपने पाँव
मैं अनुभव कर रहा हूँ सबकुछ
बस छूकर
चला जाता है
छला जाता है
आकाश भी
सूर्य से

जो दूसरे दिन

आता नहीं है

कोई और सूर्य भेज देता है।

विजेता है

कौन

और

किसकी पराजय है-

सारा संसार अपने कामों में

फँसाये अपनी उँगलियाँ

उधेड़बुन करता है।

डरता है

मुझसे

मेरा पड़ोस।

मैं अपनी करतूतों का दरोगा हूँ।

नहीं, एक रोज़नामचा हूँ

मुझमें मेरे अपराध

हू-ब-हू कविताओं-से

दर्ज हैं।

मर्ज़ हैं

जितने

उनसे ज्यादा इलाज हैं।

मेरे पास हैं कुछ कुत्ता-दिनों की

छायाएँ

और बिल्ली-रातों के

अन्दाज हैं।

मैं इन दिनों और रातों का

क्या करूँ ?

मैं अपने दिनों और रातों का

क्या करूँ ?

मेरे लिए तुमसे भी बड़ा

यह सवाल है।

यह एक चाल है,

मैं हरेक के साथ

शतरंज खेल रहा हूँ

मैं अपने ऊलजलूल

एकान्त में

सारी पृथ्वी को बेल रहा हूँ।

मैं हरेक नदी के साथ

सो रहा हूँ

मैं हरेक पहाड़

ढो रहा हूँ।

मैं सुखी

हो रहा हूँ

मैं दुखी

हो रहा हूँ

मैं सुखी-दुखी होकर

दुखी-सुखी

हो रहा हूँ

मैं न जाने किस कन्दरा में

जाकर चिल्लाता हूँ: मैं

हो रहा हूँ। मैं

हो रहा हूँ

अनुगूंज नहीं जाती!

लपलपाती

मेरे पीछे

चली आ रही है

चली आये।

मुझे अभी कई लड़कियों से

करना है प्रेम

मुझे अभी कई कुण्डों में

करना है स्नान

अभी कई तहख़ानों की

करनी है सैर

मेरा सारा शरीर सूख चुका

मगर साबित है

पैर!

मैं अपना अन्धकार, अपना सारा अन्धकार

गन्दे कपड़ों की

एक गठरी की तरह

फेंक सकता हूँ।

मैं अपनी मार खायी हुई

पीठ

सेंक सकता हूँ

धूप में

बेटियाँ और बहुएँ

सूप में

अपनी-अपनी

आयु के

दाने

बिन

रही

हैं।

सारे संसार की सभ्यताएँ दिन गिन रही हैं।

क्या मैं भी दिन गिनूँ ?

अपने निरानन्द में

रेंक और भाग और लीद रहे गधे से

मैं पूछकर

आगे बढ़ जाता हूँ

मगर ख़बरदार ! मुझे कवि मत कहो

मैं बकता नहीं हूँ कविताएँ

ईज़ाद करता हूँ

गाली

फिर उसे बुदबुदाता हूँ।

मैं कविताएँ बकता नहीं हूँ।

मैं थकता नहीं हूँ

कोसने।

सरदी में अपनी सन्तान को

केवल अपनी

हिम्मत की रजाई में लपेटकर

पोसते

ग़रीबों के मुहल्ले से निकलकर

मैं

एक बन्द नगर के दरबाजे पर

खड़ा हूँ।

मैं कई साल से

पता नहीं अपनी या किसकी

शर्म में

गड़ा हूँ !

तुमने मेरी शर्म नहीं देखी !

मैं मात कर

सकता हूँ

महिलाओं को।

मैं जानता हूँ

सारी दुनिया के

बनबिलावों को

हमेशा से जो बैठे हैं

ताक में

काफ़ी दिनों से मैं

अनुभव करता हूँ तकलीफ़

अपनी

नाक में।

मुझे पैदा होना था अमीर घराने में।

अमीर घराने में

पैदा होने की यह आकांक्षा

सास-साथ

बड़ी होती है।

हरेक मोड़ पर

प्रेमिका की तरह

मृत्यु

खड़ी होती है।

शरीरान्त के पहले मैं सबकुछ निचोड़कर उसको दे जाऊँगा जो भी मुझे मिलेगा। मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ किसी के न होने से कुछ भी नहीं होता; मेरे न होने से कुछ भी नहीं हिलेगा। मेरे पास कुरसी भी नहीं जो खाली हो। मनुष्य वकील हो, नेता हो, सन्त हो, मवाली हो-किसी के न होने से कुछ भी नहीं होता।

नाटक की समाप्ति पर

आँसू मत बहाओ।

रेल की खिड़की से

हाथ मत हिलाओ। ('माया दर्पण' संग्रह से)

4. हस्तिनापुर का रिवाज़

मैं फिर कहता हूँ

धर्म नहीं रहेगा, तो कुछ नहीं रहेगा--

मगर मेरी

कोई नहीं सुनता!

हस्तिनापुर में सुनने का रिवाज़ नहीं--

जो सुनते हैं

बहरे हैं या

अनसुनी करने के लिए

नियुक्त किये गये हैं

मैं फिर कहता हूँ

धर्म नहीं रहेगा, तो कुछ नहीं रहेगा--

मगर मेरी

कोई नहीं सुनता

तब सुनो या मत सुनो

हस्तिनापुर के निवासियों! होशियार !

हस्तिनापुर में

तुम्हारा एक शत्रु पल रहा है, विचार--

और याद रखो

आजकल महामारी की तरह फैल जाता है,

विचार। ('मगध' संग्रह से)

4. मणिकर्णिका का डोम

डोम मणिकर्णिका से अक्सर कहता है,

दुःखी मत होओ

मणिकर्णिका,

दुःख तुम्हें शोभा नहीं देता

ऐसे भी श्मशान हैं

जहाँ एक भी शव नहीं आता

आता भी है,

तो गंगा में

नहलाया नहीं जाता

डोम इसके सिवा कह भी

क्या सकता है,

एक अकेला

डोम ही तो है

मणिकर्णिका में अकेले

रह सकता है

दुःखी मत होओ, मणिकर्णिका,

दुःख मणिकर्णिका के

विधान में नही

दुःख उनके माथे है

जो पहुँचाने आते हैं,

दुःख उनके माथे था

जिसे वे छोड़ चले जाते हैं

भाग्यशाली हैं, वे

जो लदकर या लादकर

काशी आते हैं

दुःख

मणिकर्णिका को सौंप जाते हैं

दुःखी मत होओ

मणिकर्णिका,

दुःख हमें शोभा नहीं देता

ऐसे भी डोम हैं,

शव की बाट जोहते

पथरा जाती हैं जिनकी आँखें,

शव नहीं आता--

ठसके सिवा डोम कह भी क्या सकता है! ('मगध' संग्रह से)

4. हस्तक्षेप

कोई छींकता तक नहीं

इस डर से

कि मगध की शान्ति

भंग न हो जाय,

मगध को बनाये रखना है, तो,

मगध में शान्ति

रहनी ही चाहिए

मगध है, तो शान्ति है

कोई चीखता तक नहीं

इस डर से

कि मगध की व्यवस्था से

दखल न पड़ जाय

मगध से व्यवस्था रहनी ही चाहिए

मगध में न रही

तो कहाँ रहेगी ?

क्या कहेंगे लोग ?

लोगों का क्या ?

लोग तो यह भी कहते हैं,

मगध अब कहने को मगध है,

रहने को नहीं

कोई टोंकता तक नहीं

इस डर से

कि मगध में

टोकने का रिवाज़ न बन जाय

एक बार शुरू होने पर

कहीं नहीं रूकना हस्तक्षेप--

वैसे तो मगधनिवासियो

कितना भी कतराओ

तुम बच नहीं सकते हस्तक्षेप से--

जब कोई नहीं करता

तब नगर के बीच से गुज़रता हुआ

मुर्दा

यह प्रश्न कर हस्तक्षेप करता है--

मनुष्य क्यों मरता है ? ('मगध' संग्रह से)

11. तीसरा रास्ता

मगध में शोर है कि मगध में शासक नहीं रहे

जो थे

वे मदिरा, प्रमाद और आलस्य के कारण

इस लायक

नहीं रहे

कि उन्हें हम

मगध का शासक कह सकें

लगभग यही शोर है

अवन्ती में

यही कोसल में

यही

विदर्भ में

कि शासक नहीं

रहे

जो थे

उन्हें मदिरा, प्रमाद और आलस्य ने

इस

लायक नहीं

रखा

कि उन्हें हम अपना शासक कह सकें

तब हम क्या करें ?

शासक नहीं होंगे

तो कानून नहीं होगा

कानून नहीं होगा

तो व्यवस्था नहीं होगी

व्यवस्था नहीं होगी

तो धर्म नहीं होगा

धर्म नहीं होगा

तो समाज नहीं होगा

समाज नहीं होगा

तो व्यक्ति नहीं होगा

व्यक्ति नहीं होगा

तो हम नहीं होंगे

हम क्या करें ?

कानून को तोड़ दें ?

धर्म को छोड़ दें ?

व्यवस्था को भंग करें ?

मित्रो-

दो ही

रास्ते हैं:

दुर्नीति पर चलें

नीति पर बहस

बनाये रखें

दुराचरण करें

सदाचार की

चर्चा चलाये रखें

असत्य कहें,

असत्य करें

असत्य जिएं--

सत्य के लिए

मर-मिटने की आन नहीं छोड़ें

अन्त में,

प्राण तो

सभी छोड़ते हैं

व्यर्थ के लिए

हम

प्राण नहीं छोड़ें

मित्रों-

तीसरा रास्ता भी

है--

मगर वह

मगध

अवन्ती

कोसल

या

विदर्भ

होकर नहीं

जाता। (‘मगध’ संग्रह से)

12.4.2 श्रीकांत वर्मा की कविताएँ: आलोचना

श्रीकांत वर्मा की कविता में समकालीन भारतीय समाज की तीखी चेतना अभिव्यक्त हुई है। उनकी काव्यात्मक यात्रा के अवलोकन से यह सहज स्पष्ट हो जाता है कि कवि में आद्यन्त अपने परिवेश और उस परिवेश में फँसे अभिशप्त मनुष्य के प्रति गहरा लगाव है। उसके आत्मगौरव और सुरक्षित भविष्य के लिये कवि अपनी कविताओं में लगातार चिंतित है। ये कविताएँ सहज ग्राम्य परिवेश से शुरू होकर महानगरीय बोध का प्रक्षेपण करने लगती हैं या यह कहना अधिक सही है कि शहरीकृत अमानवीयता के खिलाफ एक संवेदनात्मक बयान में बदल जाती हैं। इस संवेदनात्मक बयान की परिधि इतनी विस्तृत है कि उसके दायरे में शोषित-उत्पीड़ित और बर्बरता के आतंक में जीती पूरी-की-पूरी दुनिया सिमट आती है। उनकी प्रारंभिक कविताओं में आत्मरति और आत्मश्लाघा भाव की प्रधानता है। अनिर्णयात्मकता है, व्यर्थताबोध है। यहाँ अनिर्दिष्ट भविष्य धुँधला-धुँधला सा है; खासकर ‘मायादर्पण’ और ‘जलसाघर’ में। इन प्रारंभिक कविताओं से अभिव्यक्त होता हुआ यथार्थ हमें अनेक स्तरों पर प्रभावित करता है लेकिन अंतिम संग्रह ‘मगध’ तक पहुँचकर वर्तमान शासकवर्ग के त्रास और उसके तमाच्छन्न भविष्य को भी रेखांकित कर जाता है।

उनकी कविताओं का मुख्य मुद्दा है- ‘सवाल यह है कि तुम कहाँ जा रहे हो ?’, ‘अश्वारोही, यह रास्ता किधर जाता है ?’ कपिलवस्तु और नालन्दा कोई नहीं जाता। यहाँ कपिलवस्तु और नालन्दा अहिंसा और लोकतंत्र का प्रतीक हैं। रास्ते के अभाव में लोग भटकते रहते हैं, इतना

अवश्य है कि उसे मालूम है- 'कोसल अधिक दिन नहीं टिक सकता/केसल में विचारों की कमी हैं।' वह यह भी कहता है कि हस्तिनापुर का एक ही शत्रु हैं- वह है विचार।

''हस्तिनापुर के निवासियों ! होशियार !

हस्तिनापुर में

तुम्हारा एक शत्रु पल रहा है, विचार-

और याद रखो

आजकल महामारी की तरह फैल जाता है,

विचार।''

यहाँ विचार की बात है किंतु विचार की काई रूपरेखा नहीं है। वह एक तीसरे रास्ते की ओर संकेत करता है कि वह यहाँ नहीं जाता, वहाँ नहीं जाता, फिर प्रश्न होता है कि वह कहाँ जाता है ? ये कविताएँ सावधान करती हैं कि-

''मित्रो

यह कहने का कोई मतलब नहीं

कि मैं समय के साथ चल रहा हूँ।

यहाँ असल सवाल यह है/इसके बाद कहाँ जाओगे ?''

यह प्रश्नवाचकता ही श्रीकांत वर्मा की कविताओं की विशेषता है। यह प्रश्नवाचकता विसंगत स्थितियों को, अतार्किक स्थितियों को सम्पूर्ण तनाव के साथ गंभीर परिणति तक लाता है। इन कविताओं में नकारात्मक संयोजन, विसंगतियों, अतीत और भविष्य का निषेध उस समय की राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक विडम्बनाओं की त्वरित प्रतिक्रियाएँ हैं :- मैं अपनी करतूतों का दरोगा हूँ/ नहीं एक रोजनामचा हूँ/मुझ में मेरे अपराध/हू-ब-हू कविताओं से/दर्ज हैं/मर्ज हैं/जितने/उनसे/ज्यादा इलाज हैं। इस अर्थगंभीरता के अभाव का कारण विसंगत यथार्थ और मूल्य विघटित समय है, लेकिन ऐसी कविताएँ निश्चय ही तत्कालीन युद्ध की चापलूसी भरी अतिरंजनाओं और खोखली चुनौतियों वाली कविताओं से ज्यादा समझदार और गहरी हैं। श्रीकांत वर्मा ने अपनी कविताओं के लिए तंत्र और सेक्स के बजाय राजनीति से भाषा और संवेदन-प्रमेय उठाने की कोशिश की।

न्यायालय बन्द हो चुके हैं, अर्जिया हवाँ में

उड़ रही हैं

कोई अपील नहीं

कोई कानून नहीं,

कुहरे में डूब गयी हैं प्रत्याशाएँ

धूल में पड़े हैं

कुछ शब्द।

जनता थककर सो गयी है।

ये कविताएँ न्याय-अन्याय तथा व्यवस्था-अव्यवस्था के द्वन्द्व में अपना स्वरूप ग्रहण करती है-

फैसला हमने नहीं लिया-

सिर हिलाने का मतलब फैसला लेना नहीं होता

हमने तो सोच विचार तक नहीं किया।

बहसियों ने बहस की

हमने क्या किया ? जिस समय-समाज में हम जी रहे हैं वह समय सुनने और न सुनने के साथ-साथ सुनकर भी अनसुना करने का समय है, व्यवस्था अनसुना करने और असल सवालों से हटाने के लिए सारे प्रयत्न करती है, तरह-तरह के हथकण्डे अपनाती है और चालाकी को रिवाज में तब्दील करने की पूरी कोशिश करती है-

''कोई नहीं सुनता

हस्तिनापुर में सुनने का रिवाज़ नहीं-

जो सुनते हैं

बहरे हैं या

अनसुनी करने के लिए

नियुक्त किये गये हैं।''

यह व्यवस्था, लोकतंत्र, विकास और लोक कल्याण के नाम पर जनता को गुमराह करती है जबकि असलियत यह है कि नागरिक/कोसल के अतीत पर/पुलकित होते हैं/जो पुलकित नहीं होते/उँघते हैं। इसलिये- ''कोसल मेरी कल्पना में गणराज्य है, क्योंकि 'कोसल सिर्फ कल्पना में गणराज्य है।' 'कल्पना का यह गणराज्य' क्या गणराज्य है ? चारों तरफ 'जड़ता' और 'चुप्पी' क्यों व्याप्त है ? 'मगध' की कविताओं में 'चुप क्यों हो ?' की आवृति बार-बार होती है- चुप क्यों हो, मित्रों ?/क्या हुआ ?/चुप क्यों हो?/कभी कभी/मगध में न जाने क्या हो जाता है/सब कुछ सामान्य होने के बावजूद/न कोई बोलता है/न मुँह खोलता है/सिर्फ शकटार/जड़ को छू/पेड़ की कल्पना करता है/सोचकर सिहरता है/मित्रों/जो सोचेगा/सिहरेगा। सिहरना, 'डर', 'संशय' और असमंजय का प्रतीक है। व्यवस्था डर, संशय और असमंजस को कायम रखना और मजबूत बनाना चाहती है। श्रीकांत वर्मा इस यथास्थितिवाद और सिहरन के खिलाफ 'हस्तक्षेप' की बात करते हैं, 'तीसरे रास्ते' की तलाश करते हैं- तुम बच नहीं सकते हस्तक्षेप से-। जब कोई नहीं करता/तब नगर के बीच से गुजरता हुआ/मुर्दा/यह प्रश्न कर हस्तक्षेप करता है-/मनुष्य क्यों मरता है ? यह कविता बहुत खलल पैदा करने वाली, डिस्टर्ब करने वाली कविता है। भले ही कोई टोकता तक नहीं/इस डर से/कि मगध में/टोंकने का रिवाज़ न बन जाये। हस्तक्षेप का यह 'प्रश्न'- मगध की शांति को भंग कर ही देता है। मगध के शासक मदिरा, प्रमाद और आलस्य में आकण्ठ डूबे हैं, यहाँ न कोई विकल्प है, न विकल्प की संभावना है। क्या कानून को तोड़ दिया जाय ? धर्म को छोड़ दिया जाय ? व्यवस्था को भंग कर दिया जाय ? दुर्नीति पर चलने और नीति पर बहस बनाये रखने, दुराचरण करने और सदाचरण की चर्चा चलाये रखने वाले समय में तीसरा रास्ता भी है- मगर वह/मगध/अवन्ती/कोसल/या/विदर्भ/होकर नहीं/जाता। श्रीकांत वर्मा अपनी कविताओं में व्यवस्था के इसी सड़ांध को खोलकर रख देते हैं, पाखण्ड का पर्दाफाश करते हैं तथा सत्ता प्रतिष्ठान को तिलमिलाने वाले सवाल करते हैं। उनकी कविताएँ परम्परागत सौन्दर्यबोध को तोड़ने वाली, सक्रिय प्रतिरोध का मुहिम खड़ा करने वाली कविताएँ हैं। कविताओं की प्रश्नवाचकता को इस नाटकीयता के साथ कविता में प्रस्तुत किया गया है कि चिंतन और संवेदना का विस्तार सहज ढंग से अभिव्यक्त हो गया है।

अभ्यास प्रश्न

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :-

4. श्रीकान्त वर्मा का जन्म .... वर्ष में हुआ है।

4. श्रीकान्त वर्मा .... दशक के कवि है।

4. श्रीकान्त वर्मा .... रचना से चर्चित हुए।

4. श्रीकान्त वर्मा का पहला संग्रह .... है।

ख) संक्षिप्त उत्तर दीजिए :-

4. श्रीकान्त वर्मा की रचनाओं का परिचय दीजिए।

4. श्रीकांत वर्मा का संक्षिप्त दीजिये।

4. श्रीकांत वर्मा राजनीतिक प्रश्नों के कवि हैं - सिद्ध कीजिए।

4. श्रीकांत वर्मा के काव्यात्मक महत्व पर प्रकाश डालिये।

12.5 सारांश

नयी कविता के बाद की कविता में एक साथ हिन्दी कविता की कई पीढियों के कवि सक्रिय हैं। यहाँ एक विशाल सृजन परिदृश्य है जिसमें अनेक धाराओं का वैचारिक कोलाहल सुनाई देता है। सातवें-आठवें दशक में तीस से ज्यादा काव्य-आन्दोलन प्रस्तावित किए गये किंतु उनमे से किसी को भी एक केन्द्रीय आन्दोलन के रूप में महत्त्व नहीं मिला। इस दौर की कविता किसी भी तरह के केन्द्रवाद का निषेध करती है। जिस नई चुनौती को इस दौर के कवि स्वीकार करते हैं, वह है- सपाट अनुभव की रचना। सपाटबयानी ही यहाँ असली कवि-कर्म है। श्रीकांत वर्मा इस दक्षता की खुली संभावनाओं का विस्तार करने वाले कवि हैं। मोहभंगपरक यथार्थ से समकालीन कविता का यथार्थ भिन्न हैं। समकालीन यथार्थ राजनीतिक सांस्कृतिक विकृतियों का यथार्थ है, जिन्हें जीने के लिए और जिनमें जीने के लिए आदमी लाचार है जिसके दुःखते-कसकते अनुभवों की यातना को श्रीकांत वर्मा की कविताएँ ‘चीख’ और ‘आग’ में बदलकर व्यक्त करती हैं।

श्रीकांत वर्मा अपने समय के एक अत्यंत सजग कवि हैं। आज का परिवेश, उसकी भयावहता, आतंक, अन्याय, शोषण, अजनबियत, उदासी तथा राजनीति और उसकी त्रासदी अपने नंगे रूप में उनकी कविताओं में मौजूद है। ‘मायादर्पण’ तथा ‘जलसाघर’ की कविताएँ खासतौर से बीसवीं सदी की अमानवीय बर्बरता का बयान करती हैं- ‘‘कई साल/हुए/मैंने लिखी थीं। कुछ कविताएँ/तृष्णाएँ/साल ख़त्म होने पर/उठकर..../स्त्रियाँ/पता नहीं जीवन में आती/या जीवन से/जाती हैं।’’ वह अन्तिम वक्तव्य के रूप में कहता है कि ‘आत्माएँ/राजनीतिज्ञों को/बिल्लियों की तरह/मरी पड़ी हैं/सारी पृथ्वी से/उठती हैं/सड़ांध!’ इन कविताओं में युद्ध की छाया मँडराती रहती है। यह दौर ऐसा है कि कुछ लोग मूर्तियाँ बनाकर/फिर/बेचेंगे क्रांति की (अथवा-षड्यंत्र की)/कुछ और लोग/सारा समय/कसमें खायेंगे/लोकतंत्र की।

श्रीकांत वर्मा की कविताओं में एक केन्द्र विहीन उत्तर आधुनिक सृजन परिदृश्य उमड़-घुमड़ रहा है। यहाँ मूल आदमी गायब है, केवल एक उपभोक्तावादी समाज है जिसमें उपभोक्ता ही सब कुछ है। कवि यह सूचना देने वाला भर रह गया है कि विश्वपूँजीवादी व्यवस्था में टेक्नालाजी का लाभ उन्हीं को मिलता है जो बाजार के मालिक हैं। श्रीकांत वर्मा की कविताएँ इस परिदृश्य का प्रमाणित दस्तावेज हैं-

दफ़्तर में, होटल में, समाचार पत्र में,

सिनेमा में

स्त्री के साथ एक खाट में ?

नावें कई यात्रियों को

उतारकर

वेश्याओं की तरह

थकी पड़ी हैं घाट में।

श्रीकांत वर्मा के यहाँ आधुनिकतावाद के सारे तत्व हैं, देश व काल से जीवन्त सम्बन्ध के संदर्भ हैं, तात्कालिकता का बढ़ता आग्रह है, इतिहास से मुक्ति पाने का संघर्ष है लेकिन यौन-विकृतियों की बजवजाहट भी कम नहीं है- 'जैसे किसी वेश्या के कोठे से/अपने को बुझाकर।' श्रीकांत वर्मा चिंतन और सघन अनुभूति को एकमेक करते हुए गद्य कविता में बड़ी दक्षता हासिल करते हैं। सपाटबयानी के साथ-साथ सघन बिम्ब-विधान को कला को साधने वाले वे बेजोड़ कवि हैं। मगध, काशी, कौशाम्बी, हस्तिनापुर, मथुरा, नालन्दा, तक्षशिला, कोसल ये सिर्फ काव्यात्मक प्रतीक भर नहीं है बल्कि सत्ता प्रतिष्ठान की बर्बरता, अमानवीयता, अनिर्णयात्मकता को साधने-खोलने के विराट जागृत प्रतीक भी है। उसे मालूम है कि- 'कोसल अधिक दिन नहीं टिक सकता/कोसल में विचारों की कमी है।' वह यह भी कहता है कि हस्तिनापुर का शत्रु पल रहा है- विचार। श्रीकांत वर्मा भटकाव और विचार की बात साथ-साथ करते हैं। उन्हें अस्तित्ववादी अवसाद से मुक्ति की संभावना विचार में ही दिखती है।

12.6 शब्दावली

4. आधुनिकतावाद- आधुनिकता का सम्बन्ध आधुनिकीकरण के फलस्वरूप पुरातन तथा परमपरागत विचारों एवं मूल्यों, धार्मिक विश्वासों और रूढ़िगत रीति-रिवाजों के खिलाफ नवीन और वैज्ञानिक विचारों तथा मूल्यों से है। आधुनिकतावाद साहित्य, कला तथा अन्य सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों के लिए बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में प्रचलित रहा जिसका विकास टी.एस. इलियट

की कृति- 'द वेस्ट लैण्ड' के प्रकाशन से माना जाता है। हिन्दी कविता में यह शब्द पचास के दशक में चर्चा का विषय बना जब यूरोप में विक्षुब्ध युवा ।बंगाल और अमेरिका में बीट्स की कृतियों का महत्व स्थापित हुआ। आधुनिकतावाद, धर्म, प्रकृति, परम्परा, नैतिकता, प्रतिबद्धता, आस्था, मूल्य तथा प्रत्येक प्रचलित विचार तथा वस्तु-स्थिति व व्यवस्था को चुनौती देता है। विद्रोह उसका मूल स्वर है। आधुनिकतावाद हर प्रकार के सामाजिक, नैतिक, वैचारिक तथा यौन दमन के विरूद्ध है। आधुनिकतावाद चौकाने- सनसनी फैलाने, उत्तेजना, आघात का प्रभाव विकसित करने के लिए भाषा और शैली में भी नये परिवर्तन का हिमायती है। साथ ही प्रकृतिवाद के विपरीत व्यक्ति की जटिल मानसिकता और अछूती संवेदनाओं को भी प्रस्तुत करता है।

12.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :-

4. 1931 4. सातवें दशक 4. मायादर्पण 4. भटका मेघ

12.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

4. श्रीकांत वर्मा: प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन।

4. नवल, नन्द किशोर, आधुनिक हिन्दी कविता।

4. राय, डॉ0 लल्लन, प्रगतिशील हिन्दी कविता

4. नवल, नन्द किशोर, आधुनिक हिन्दी कविता का इतिहास।

12.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य साम्रगी

4. सिंह, नामवर, कविता के नये प्रतिमान।

4. पाण्डेय, मैनेजर, शब्द और कर्म।

4. श्रीवास्तव, परमानन्द, समकालीन कविता का यथार्थ।

4. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास।

12.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4. सातवें दशक की कविता के बीच श्रीकांत वर्मा की कविताओं का महत्व बताइये।

4. सिद्ध कीजिए कि- 'श्रीकांत वर्मा नये काव्य मुहावरे के कवि हैं।'

4. श्रीकांत वर्मा की काव्य संवेदना और शिल्प सौंदर्य पर विस्तार से चर्चा कीजिए।

4. 'श्रीकांत वर्मा की कविताओं का लक्ष्य मूल्य विघटित राजनीतिक त्रासदी को उद्घाटित करना है ' - इस कथन की समीक्षा कीजिए।

इकाई 13 - केदारनाथ सिंह : पाठ एवं आलोचना

इकाई की रुपरेखा

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 केदारनाथ सिंह: काव्यात्मक परिदृश्य की विशालता
13.4.1 केदारनाथ सिंह: कविता की नई दुनिया
13.4.2 केदारनाथ सिंह: काव्यभाषा और बिम्ब विधान
13.4.3 केदारनाथ सिंह: संक्षिप्त परिचय और रचनाएँ
13.4 केदारनाथ सिंह: पाठ और आलोचना
13.4.1 केदारनाथ सिंह की कविताएँ: पाठ
13..4.2 केदारनाथ सिंह की कविताएँ: आलोचना
13.5 सारांश
13.6 शब्दावली
13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
13.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
13.10 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

पूर्व की इकाई में आप पढ़ चुके हैं कि स्वाधीनता प्राप्ति के बाद जीवन के हर क्षेत्र में नयी उम्मीदों ने जन्म लिया। प्रयोगवाद और नयी कविता के वस्तु और रूप का नया काव्य-मुहावरा सन् 1960 तक पहुँचते-पहुँचते अपना आकर्षण खोने लगा था। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद पनपे मूल्य विघटन के दौर ने नयी उम्मीदों को अवसाद और खिन्नता से ग्रस लिया। स्वयं नयी कविता के सभी जागरूक कवि अपने काव्य-मुहावरे की अपर्याप्तता का अनुभव करते हुए नये यथार्थ की बेचैनी के एहसास से तिलमिलाने लगे थे। हिन्दी कविता के इतिहास में यह समय मोहभंग, आत्मनिर्वासन, अकेलापन, विसंगति व विद्रूपताबोध से ग्रस्त रहा। फलतः नयी पीढ़ी में आक्रोश, विद्रोह, विक्षोभ, असंतोष के स्वर उभर पड़े। 'तीसरा सप्तक' के प्रकाशन को इस नये दौर का सूचक माना जा सकता है। उस समूचे काव्य सृजन संदर्भ को समकालीन कविता नाम दिया गया लेकिन इस काव्य सृजन के भीतर अनेक धारायें हैं, अनेक काव्य शैलियाँ हैं- अनेक तरह के छोटे बड़े काव्य आन्दोलन हैं- उनकी अलग-अलग तरह की काव्य ध्वनियाँ और प्रवृतियाँ हैं। इसमें अकविता, अस्वीकृत कविता, युयुत्सावादी कविता, प्रतिबद्ध कविता, भूखी पीढ़ी की कविता,

नंगी पीढ़ी की कविता, श्मशानी कविता आदि तथाकथित आन्दोलनों को अलग-अलग करके समझना-समझाना बेहद कठिन है। इसलिए काल चेतना की दृष्टि से इसे साठोत्तरी कविता कहना अधिक संगत प्रतीत होता है।

सन् साठ के लगभग बुद्धिजीवियों की जो नई-पुरानी पीढ़ी सामने आयी, उसने अपने आगे एक भयंकर अंधकार पाया। यह अंधकार इतना गहरा है कि सन् 1960 के बाद नयी कविता का व्यक्ति स्वातंत्र्य तथा शीत युद्ध की वेदना वाला भाव गायब होकर राजनीतिक-सांस्कृतिक चिन्ताओं की चीख-पुकार तथा गुर्राहट विद्रोह की अर्थ ध्वनियों में परिवर्तित हो जाता है। चीनी आक्रमण के साथ नेहरू युग से मोहभंग शुरू हुआ और देश की भीतरी तथा बाहरी स्थिति की असलियत उजागर हो गयी। इसने हिन्दी कविता को भी प्रभावित किया, जिससे वह नई कविता की रूमानियत को छोड़कर पुनः कटु यथार्थ की भूमि पर पॉव टेकने को विवश हुई। इस दौर में राजनीति से लेकर साहित्य तक में 'मोहभंग' शब्द का बार-बार आना अनायास नहीं है। यह शब्द वस्तुतः नई कविता के बाद की कविता का बीज शब्द है। धूमिल ने अपने दौर की कविता का पूर्ववर्तियों से अन्तर बताते हुए लिखा कि-

''छायावाद के कवि शब्दों को तोलकर रखते थे

प्रयोगवाद के कवि शब्दों को टटोलकर रखते थे

नयी कविता के कवि शब्दों को गोलकर रखते थे

सन् साठ के बाद के कवि शब्दों को खोलकर रखते हैं।''

'शब्दों को खोलकर' रखने से मतलब समय-समाज की मांग और दुःख-दर्द को महसूस करने से है और यह कार्य साठोत्तरी कविता के कवियों ने ही किया। सठोत्तरी कवियों में केदारनाथ सिंह, दुष्यंत कुमार, श्रीकान्त वर्मा, लक्ष्मीकान्त वर्मा, जगदीश गुप्त, धूमिल, राजकमल चौधरी, मणि मधुकर आदि का नाम उल्लेखनीय है। साठोत्तरी कवियों ने किसी वाद विशेष को अपनाने की आतुरता नहीं दिखाई बल्कि यह कविता राजनीति, समाज की विषम स्थितियों और असंगतियों से सीधा साक्षात्कार कराती है। साठोत्तरी कविता का व्यापक विस्तार केदारनाथ सिंह की कविताओं में देखा जा सकता है।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई में आप नयी कविता के बाद के दौर में आये बदलाव का अध्ययन करेंगे तथा समकालीन कविता के काव्यात्मक परिदृश्य की विशालता से परिचित होंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप साठोत्तरी कविता और केदारनाथ सिंह के महत्त्व का आकलन कर सकेंगे साथ ही साठोत्तरी कविता की मूल प्रवृतियों के बीच केदारनाथ सिंह की कविताओं के सम्बन्ध को भी

समझ सकेंगे। आजादी के बाद पनपे मोहभंग, आत्मनिर्वासन, अकेलापन, विसंगति-विद्रूपता आदि के भाव-बोध को लेकर नये शिल्प में केदारनाथ सिंह ने अपने रचना कर्म में किस प्रकार विकसित किया- यह विश्लेषित करना इस इकाई का लक्ष्य है।

13.3 केदारनाथ सिंह : काव्यात्मक परिदृश्य की विशालता

नयी कविता के बाद की कविता या साठोत्तरी कविता में एक साथ हिन्दी कविता की कई पीढ़ियाँ सक्रिय थीं। यह एक ऐसा विशाल सृजन परिदृश्य है जिसमें अनेक धाराओं का वैचारिक कोलाहल सुनाई देता है। यह कविता किसी भी तरह के केन्द्रवाद का विरोध करती है। केदारनाथ सिंह की कविताएँ खुली संभावनाओं का विस्तार हैं। उन कविताओं में जितना विस्तार है, उतनी ही गहराई भी। उनकी काव्य संवेदना की परिधि में टमाटर बेचने वाली बुढ़िया, गड़रिया, जगरनाथ, सन् 1947 के नूर मियाँ, शीत लहरी में काँपता हुआ बूढ़ा आदमी, मैदान में खेलते बच्चे आते हैं तो साथ ही निहायत गैर जरूरी लगने वाली चीजें जैसे- गर्मी में सूखते कपड़े, सुई और तागे के बीच, घड़ी, टूटा हुआ ट्रक भी कविता का विषय बनते हैं। उनकी कविता के शीर्षक को देखकर उनकी काव्य संवेदना के बारे में यह एकतरफा नहीं कहा जा सकता है कि वे महानगरीय संवेदना के कवि हैं या लोक संवेदना के कवि हैं। महत्त्वपूर्ण यह है कि समकालीन कविता के कई महत्त्वपूर्ण नाम (धूमिल, राजकमल चौधरी, सौमित्र मोहन, मणिक मोहिनी, मोनागुलाटी आदि) जब भयावह सरलीकरणों-निरर्थकताओं-चीखों-संत्रांसों का शिकार हो रहे थे तब केदारनाथ सिंह जीवन की समग्रता पर बल दे रहे थे। केदारनाथ सिंह का महत्व यह है कि वे अपने दौर की सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए विद्रोह की एक नई भावभूमि पर पांव टेक रहे थे। विद्रोह के इस मानसिक विक्षोभ को उन्होंने जनवरी-मार्च 1968 के आलोचना में प्रकाशित अपनी टिप्पणी 'युवालेखन: प्रतिपक्ष का साहित्य' में स्पष्ट करते हुए कहा कि ''यह मानसिक विक्षोभ साहित्यिक कम और ऐतिहासिक अधिक है। संभवतः नवलेखन के क्षेत्र में यह सौंदर्यवादी रूझान कुछ दिनों तक और चलता रहता यदि अकस्मात 1962 के राष्ट्रीय संकट में साहित्य तथा राजनीति में एक ही साथ बहुत से मोहक आदर्शों और खोखले काव्यात्मक शब्दों के प्रति हमारे मन में शंका न भर दी होती।'' डॉ0 बच्चन सिंह के अनुसार सन् 1960 के बाद की कविता की दो दिशाएँ थीं- देहगाथा की दिशा और बुर्जुआ लोकतंत्र के विरोध की दिशा। एक में बजबजाहट की तो दूसरे में बौद्धिक रूखाई। केदारनाथ सिंह ने कविता को उनसे मुक्त कर संवेदनात्मक बौद्धिकता से जोड़ा।

केदारनाथ सिंह शायद हिन्दी कविता के अकेले ऐसे कवि हैं, जो एक ही साथ गाँव के भी कवि हैं और शहर के भी। अनुभव के ये दोनों छोर कई बार उनकी कविता में एक ही साथ और एक ही समय दिखाई पड़ते हैं। अनुभव का यह विस्तार उनके संवेदनात्मक ज्ञान को और बढ़ाता है। उनकी संवेदना में विस्तार भी है और गहराई भी। इसमें आग और पानी के अर्थगर्भ संकेत हैं, मौत और जिन्दगी के उत्तर-प्रत्युत्तर हैं, युगीन चुनौतियाँ हैं, फसलें, रोटी, माँ की अनजानी

प्रतिध्वनियाँ और आहटें हैं और कुल मिलाकर यहाँ है- जीवन का पर्व। उनके पास अनुभवों का एक ठोस संसार है, जिसे उन्होंने आसपास से गहरे डूबकर प्यार करके प्राप्त किया है। उनकी काव्य संवेदना का दायरा गाँव से शहर तक परिव्याप्त है, जिसमें आने वाली छोटी-सी-छोटी चीज उनके उत्कृष्ट मानवीय लगाव से जीवन्त हो उठती है। नीम, बनारस, पहाड़, बोझे, दाने, रोटी, जमीन, बैल, घड़ी जैसी कविताएँ अपनी धरती और अपने लोगों के प्रति गहरी आत्मीयता की प्रमाण हैं। भारतीय समाज के प्रति उनके गहरे संवेदनात्मक लगाव को देखना हो तो 'माँझी का पूल', 'सड़क पार करता आदमी', 'पानी से घिरे हुए लोग', 'एक पारिवारिक प्रश्न', 'टूटा हुआ ट्रक' तथा 'बिना ईश्वर के भी'- जैसी कविताओं को देखना चाहिये। उनके यहाँ मामूली से मामूली विषयों में भी गहरे मानवीय सरोकार और चिंताएँ छिपी हुई हैं, जो बिना किसी वाद या खेमेबाजी के सैद्धांतिक बैसाखी के सहारे उनकी कविताओं में व्यक्त होती है। उनकी कविताओं की दुनिया एक ऐसी दुनिया है जिसमें रंग, रोशनी, रूप, गंध, दृश्य, एक-दूसरे में खो जाते हैं लेकिन कविता का 'कमिटमेंट' नहीं खोता- वहाँ कविता के मूल सरोकार, कविता की बुनियादी चिंता, कविता का काव्य या संदेश पूरी तीव्रता के साथ ध्वनित होता है। उनके अनुसार-

''ठण्ड से नहीं मरते शब्द

वे मर जाते हैं साहस की कमी से

कई बार मौसम की नमी से

मर जाते हैं शब्द''- लेकिन यह चिंता भी है कि-

''क्या जीवन इसी तरह बीतेगा

शब्दों से शब्दों तक

जीने

और जीने और जीने और जीने के

लगातार द्वन्द्व में ?''

वे कविता में एकालाप नहीं, सार्थक संवाद की कोशिश करते हैं। उनकी कविताएँ अपने समय की व्यवस्था और उसकी क्रूर जड़ता या स्तब्धता को विचलित करने वाली कविताएँ हैं।

13.4.1 केदारनाथ सिंह: कविता की नयी दुनिया

केदारनाथ सिंह विशिष्ट शब्दार्थों के कवि हैं। उनकी कविताएँ अपने समय समाज में बहुत दूर तक और देर तक टिकने वाली कविताएँ हैं। कविता का आन्दोलन, कविता का मतवाद आते-

जाते रहते हैं- लेकिन केदारनाथ सिंह को कविताएँ हर समय में प्रासंगिक बनी रहती हैं और नया अर्थ देती हैं। एक सामान्य कथन के सहारे वे एक ओर अन्तःकरण की पीड़ा को व्यक्त करते हैं तो दूसरी तरफ अपने समय की विडम्बना पर भी गहरा कटाक्ष करते हैं-

''पर सच तो यह है

कि यहाँ या कहीं भी फर्क नहीं पड़ता

तुमने यहाँ लिखा है 'प्यार'

वहाँ लिख दो सड़क

फर्क नहीं पड़ता।''

यहाँ महत्त्वपूर्ण है अत्यंत सामान्य से लगने वाले मुहावरे 'फर्क नहीं पड़ता' पर इतनी गहराई से और इतनी दूर तक की अर्थ अभिव्यंजना। उनके यहाँ 'हाँ' या 'नहीं', 'क्या' और 'क्यों' जैसे शब्द कामचलाऊ शब्द नहीं हैं। वे पूरे अर्थ में जीवित शब्द हैं जो अपना नया अस्तित्व या प्रयोजन सिद्ध करते हैं। उनकी काव्यात्मक यात्रा के कई महत्त्वपूर्ण पड़ाव हैं और हर पड़ाव 'होने की लगातार कोशिश' का परिणाम हैं। 'होने की लगातार कोशिश' के परिवर्त्तन की यह प्रक्रिया सन् 1960 में प्रकाशित उनके प्रथम संग्रह 'अभी बिल्कुल अभी' से होती है। वे तीसरा सप्तक तक युवा गीतकार के रूप में सामने आये थे लेकिन वे गीतों को अलविदा कहते हैं और कविता की नयी दुनिया में प्रवेश करते हैं। यह वह दौर है जब केदारनाथ सिंह अपनी रूमानियत (गीतों के रूमानियत) से छुटकारा पाकर यथार्थ का साक्षात्कार करते हैं और अपने को नेहरू युग के मोहभंग से जोड़ते हैं। 1967 आते-आते भारतीय समाज के आर्थिक और राजनीतिक अन्तर्विरोध इतने तीव्र हो जाते हैं कि आम चुनाव में नौ राज्यों में कांग्रेस अपना बहुमत खो देती है और मिली-जुली गैर कांग्रेसी सरकारों का एक नया दौर शुरू होता है यद्यपि उससे स्थिति में कोई बुनियादी परिवर्त्तन नहीं होता। साठोत्तरी कविता की समूची पीढ़ी का गहरा सम्बन्ध 1967 के आम चुनाव से है, लेकिन उसकी ट्रेजेडी है कि वह विकल्पहीन है। आम चुनाव के परिणामों ने उसके अनुभव में यथास्थिति के टूटने का एक तीखा बोध जरूर दिया था, लेकिन इससे उसकी स्थिति में कोई मूलभूत अंतर नहीं आया था। 1967 में केदारनाथ सिंह ने एक कविता लिखी- 'चुनाव की पूर्व संध्या पर', जिसमें उन्होंने कहा कि- भेड़िये से फिर कहा गया है- 'अपने जबड़ों को खुला रखें'- इससे भारतीय जनतंत्र से आप उनकी निराशा का अनुमान लगा सकते हैं। उनका दूसरा काव्य संग्रह लगभग दो दशकों के अन्तराल पर 1980 में 'ज़मीन पक रही है' प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की सभी कविताएँ साठोत्तरी कविता के दौर की ही हैं लेकिन उस दौर के बदलाव का आईना भी हैं। ज़मीन की तरह कवि के काव्यात्मक परिपक्वता का संकेत यहाँ साफ है जैसे केदारनाथ सिंह ने 'जमीन पक रही है'- ठेठ

किसानी मुहावरे को किसानों के बीच से उठा लिया है। केदार की कविताएँ जो कुछ भी और जहाँ कहीं भी सुन्दर और मूल्यवान है, उसे बचा लेना चाहती हैं-

''नहीं

हम मंडी नहीं जायेंगे

खलिहान से उठते हुए

कहते हैं दाने

जायेंगे तो फिर लौटकर नहीं आयेंगे

जाते-जाते

कहते जाते हैं दानें''

× × × ×

''मगर पानी में घिरे हुए लोग

शिकायत नहीं करते

वे हर क़ीमत पर अपनी चिलम के छेद में

कहीं-न-कहीं बचा रखते हैं

थोड़ी-सी आग''

केदारनाथ सिंह थोड़ी सी धूप, आम की गुठलियाँ, पुआल की गंध, खाली टीन, भुने हुए चने, महावीर जी की आदमक़द मूर्ति, टुटही लालटेल को हर कीमत पर बचाने की कोशिश करने वाले कवि हैं। 'यह जानते हुए कि लिखने से कुछ नहीं होगा/मैं लिखना चाहता हूँ'- यह सिर्फ केदारनाथ सिंह की काव्यपंक्ति भर नहीं है बल्कि उनकी प्रतिबद्धता और सजगता की पहचान भी है क्योंकि अब- ''इंतजार मत करो

जो कहना हो

कह डालो

क्योंकि हो सकता है

फिर कहने का काई अर्थ न रह जाय।''

उनकी कविता में एक ऐसा संसार है जिसमें कवि पूरी ताकत से शब्दों को फेंकना चाहता है, आदमी की तरफ यह जानते हुए कि आदमी का कुछ नहीं होगा, वह भरी सड़क पर सुनना चाहता है वह धमाका जो शब्द और आदमी की टक्कर से पैदा होता है और यह जानते हुए कि लिखने से कुछ नहीं होगा, वह लिखना चाहता है।

केदारनाथ सिंह के परवर्ती संग्रह 'यहाँ से देखो', 'अकाल में सारस' तथा 'उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ'- की कविताएँ जीवनोत्सव की कविताएँ हैं। उन्हीं के शब्दों में कहा नाम तो वे अपने काव्यानुभव के हर अगले पड़ाव पर धीरे-धीरे पहुँचते हैं जैसे- ''बनारस में धूल/धीरे-धीरे उड़ती है/धीरे-धीरे चलते हैं लोग/धीरे-धीरे बजते हैं घंटे/शाम धीरे-धीरे होती है।'' कविता में 'धीरे-धीरे' होने की यह लय इस बात की प्रमाण है कि कवि शब्दों और भावनाओं को संतुलन के साथ पेश करना चाहता है। विसंगतियों से भरे इस दौर में उन्हें आदमियत की तलाश है और उसके होने पर गहरा भरोसा भी है। उसे विश्वास है कि-

'एक दिन भक् से

मूँगा मोती

हल्दी-प्याज

कबीर-नरक

झींगुर कुहासा

सभी के आशय स्पष्ट हो जायेंगे।'

13.4.2 केदारनाथ सिंह: काव्य-भाषा और बिम्बविधान

केदारनाथ सिंह का मूल स्वर एक गीतकार का है। 'अभी बिल्कुल अभी' में वे गीतों की छन्दयोजना को इस हद तक संभालने की कोशिश करते हैं कि उनको मुक्तछन्द की कविताएँ सिद्ध किया जा सके। कम से कम 1965-67 तक केदारनाथ सिंह गीतों के प्रयोग कर रहे थे, न कि मुक्तछन्द में। कवि के द्वारा एक खास विधा में प्रयोग की इतनी संभावनाओं का उद्घाटन उनकी प्रयोग शक्ति और दृष्टि को प्रमाणित करता है। केदारनाथ सिंह की काव्य-भाषा कविताई की काव्य-भाषा से अलग अपने पाठक से सार्थक संवाद की काव्य-भाषा है। उनका मानना है कि ''बिना चित्रों, प्रतीकों, रूपकों और बिम्बों की सहायता के मानव-अभिव्यक्ति का अस्तित्व प्रायः असंभव है।'' उनकी कविताओं के विषय में यह भी कहा जाता है कि उनके यहाँ काव्य-भाषा व बिम्बविधान में अमूर्त्तन बहुत है। कहीं-कहीं अमूर्त्तन अर्थ-ग्रहण की अबूझ प्रक्रिया तक पहुँच जाता है। जैसे-

'उसे बेहद हैरानी हुई जब उसने/खरहों की माँद में जमीन नहीं है' या 'आदमी की परछाई एक छोटे-से चम्मच में रखी जा सकती है या नहीं' इत्यादि। केदारनाथ सिंह की कविताएँ उस दौर में लिखी गई जब सपाटबयानी का खूब शोर-शराबा था जबकि ज़िन्दगी की जटिलता को सपाटशैली में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता था। इसलिये केदारनाथ सिंह सूर्य, जमीन, रोटी, बैल, बढ़ई और चिड़िया, एक प्रेम-कविता को पढ़कर, धूप में घोड़े पर बहस आदि कविताओं में सौन्दर्यमूलक योजना के तहत चीजों को बिखरा देते हैं। इसके माध्यम से वस्तुओं के रिश्तों और स्पेस में अनुस्यूत अर्थवत्ता की तलाश करते हैं। बर्ड्सवर्थ ने जिस कविता में भावों के सहज एवं तीव्र उच्छलन की बात की है, केदारनाथ सिंह उन स्वतःस्फूर्त उद्रेकों को रोककर अधिक आभामय, अधिक प्रखर बनाने का प्रयत्न करते हैं। इसके लिये वे प्रायः दृश्यचित्रों को उनके संदर्भ से काटकर ऐसे घनचित्र उभारते हैं जो एक ही दृश्य को अनेक संदर्भ से जोड़ता, अनेक अर्थों को उभारता चला जाता है। अपने मन के विक्षोभ को, आकाश को, पराजय और असमर्थता को भी बिम्बों में बांधा जा सकता है यह सब पाब्लो नेरूदा की कविताओं की विशेषता है। पर केदारनाथ सिंह के यहाँ बिम्ब सीधे और आक्रामक रूप में आते हैं, दबे-सिकुड़े संदर्भ से कटे हुए नहीं- लगता है छतों पर सूखते हुए सारे कपड़े/मेरी त्वचा और हड्डियों की मांग से/उतनी ही दूर है/जितनी मेरे गॉव के टीले से/फिदेल कास्त्रों की भूरी दाढ़ी।

केदारनाथ सिंह अपने दौर के कवियों के बीच भाषा के जादूगर हैं। वे कभी-कभी चौकाने के प्रलोभन में पड़ जाते हैं, इससे उनकी कविताओं का सौन्दर्य बिगड़ता सा लगता है लेकिन वे बहुत कीमती धागे से बाँध लेते हैं। उनकी कविताओं में एक ठहराव है, बँधाव है। रोक रखने और बाँध लेने की शक्ति है, प्रश्न पर प्रश्न उभारते जाने की क्षमता है, पर उत्तर नहीं, गति नहीं। उनकी कविताएँ-

एक दिशा है
जो लौटा देती है सारे दूत
प्रश्नवाहक
भटकी आवाज।

× × × ×

छत पर आकाश
आकाश में
रखी हुई
सतरंगे बाँस की टेढ़ी-सी कुर्सी

कुर्सी में

मैं हूँ। -

यह मोह ही केदार की काव्यात्मक शिल्प विधान की विशेषता है। केदारनाथ सिंह पर 'कवि' पत्रिका में लिखते हुए कभी नामवर सिंह ने लिखा था कि वह ''मद्धिम संवेगों के कवि'' हैं। उनकी विशेषता है कि वे केवल रंगों और ध्वनियों को ही नहीं, पूरे दृश्य खण्ड को ही एक साथ अपनी तूली मे उठाकर नये सौन्दर्य की रचना कर सकते हैं। वे अंधेरे में पहुँच के पार फेंकने के उभरते हुए चित्रों की प्रतीति करा देते हैं-

'फेंक दिया जाता हूँ

(अपने ही पैरो से)

हवा की गेंद-सा

बाहर अंधेरे में

पहुँच के पार'

यहाँ फेंकने वाले पैर उनके ही हैं। उन्होंने अपना क्रूस स्वयं तैयार किया है और उसमें अपने को जड़ा भी, अपनी ही गढ़ी कीलों से है। वे अपनी कविताओं में कवि के रूप में कम, एक असाधारण दक्षता वाले शिल्पी के रूप में अधिक दिखाई देते हैं। अद्भुत है शब्दों की रंगत, मिज़ाज और ताप की उनकी पहचान, असाधारण और अविश्वसनीयता की हद तक असाधारण है उनकी दक्षता।

13.4.4. संक्षिप्त जीवन परिचय और रचनाएँ

जन्म: 1932, चकिया जिला बलिया, उ0प्र0 सामान्य किसान परिवार में। हाईस्कूल से एम.ए. तक की शिक्षा वाराणसी में। 1964 में काशी विश्वविद्यालय से 'आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्बविधान' विषय पर पीएचडी उपाधि। विधिवत् काव्य लेखन की शुरूआत 1952 से। बनारस से निकलने वाली अनियतकालीन पत्रिका 'हमारी पीढ़ी' से सम्बद्ध। 1959 में प्रकाशित 'तीसरा सप्तक' के कवियों में से एक। पेशे से अध्यापक, उदय प्रताप कॉलेज, वाराणसी, सेंट इण्ड्रूज कॉलेज, गोरखपुर, उदित नारायण कॉलेज, पडरौना तथा गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर से सम्बद्ध। 1976 में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के रूप में नियुक्त हुए वहीं से सेवानिवृत्त। प्रकाशित काव्य संग्रह- अभी बिल्कुल अभी, जमीन पक रही है, अकाल में सारस, यहाँ से देखो, उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ। आलोचना- कल्पना और छायावाद, आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्बविधान, मेरे समय के शब्द।

13.4 केदारनाथ सिंह: पाठ और आलोचना

13.4.1 केदारनाथ सिंह की कविताएँ: पाठ

4. रोटी

उसके बारे में कविता करना

हिमाक़त की बात होगी

और वह मैं नही करूँगा

मैं सिर्फ़ आपको आमन्त्रित करूँगा

कि आप आयें और मेरे साथ सीधे

उस आग तक चलें

उस चूल्हे तक--जहाँ वह पक रही है

एक अद्भुत ताप और गरिमा के साथ

समूची आग को गन्ध में बदलती हुई

दुनिया की सबसे आश्चर्यजनक चीज़

वह पक रही है

और पकना

लौटना नहीं है जड़ों की ओर

वह आगे बढ़ रही है

धीरे-धीरे

झपट्टा मारने को तैयार

वह आगे बढ़ रही है

उसकी गरमाहट पहुँच रही है आदमी की नींद

और विचारों तक

मुझे विश्वास है
आप उसका सामना कर रहे हैं
मैंने उसका शिकार किया है
मुझे हर बार ऐसा ही लगता है
जब मैं उसे आग से निकलते हुए देखता हूँ
मेरे हाथ खोजने लगते हैं
अपने तीर और धनुष
मेरे हाथ मुझी को खोजने लगते हैं
जब मैं उसे खाना शुरू करता हूँ
मैंने जब भी उसे तोड़ा है
मुझे हर बार पहले से ज़्यादा स्वादिष्ट लगी है
पहले से ज़्यादा गोल
और खूबसूरत
पहले से ज़्यादा सुर्ख और पकी हुई
आप विश्वास करें
मैं कविता नहीं कर रहा
सिर्फ़ आग की ओर इशारा कर रहा हूँ
वह पक रही है
और आप देखेंगे-यह भूख के बारे में
आग का बयान है
जो दीवारों पर लिखा जा रहा है

आप देखेंगे
दीवारें धीरे-धीरे
स्वाद में बदल रही है।

4. पानी में घिरे हुए लोग

पानी में घिरे हुए लोग
प्रार्थना नहीं करते
वे पूरे विश्वास से देखते हैं पानी को
और एक दिन
बिना किसी सूचना के
खच्चर बैल या भैंस की पीठ पर
धर-असबाब लादकर
चल देते हैं कहीं और
यह कितना अद्भुत है
कि बाढ़ चाहे जितनी भयानक हो
उन्हें पानी में
थोड़ी-सी जगह ज़रूर मिल जाती है
थोड़ी-सी धूप
थोड़ा-सा आसमान
फिर वे गाड़ देते हैं खम्भे
तान देते हैं बोरे
उलझा देते हैं मूँज की रस्सियाँ और टाट

पानी में घिरे हुए लोग

अपने साथ ले आते हैं पुआल की गन्ध

वे ले आते हैं आम की गुठलियाँ

खाली टिन

भुने हुए चने

वे ले आते हैं चिलम और आग

फिर बह जाते हैं उनके मवेशी

उनकी पूजा की घंटी बह जाती है

बह जाती है महावीर जी की आदमक़द मूर्ति

घरों की कच्ची दीवारें

छीवारों पर बने हुए हाथी-घोड़े

फूल-पत्ते

पाट-पटोरे

सब वह जाते हैं

मगर पानी में घिरे हुए लोग

शिकायत नहीं करते

वे हर क़ीमत पर अपनी चिलम के छेद में

कहीं-न-कहीं बचा रखते हैं

थोड़ी-सी आग

फिर डूब जाता है सूरज

कहीं से आती हैं

पानी पर तैरती हुई

लोगों के बोलने की तेज़ आवाज़ें

कहीं से उठता है धुँआ

पेड़ों पर मँडराता हुआ

और पानी में घिरे हुए लोग

हो जाते हैं बेचैन

वे जला देते हैं

एक टुटही लालटेल

टाँग देते हैं किसी ऊँचे बाँस पर

ताकि उनके होने की खबर

पानी के पार तक पहुँचती रहे

फिर उस मद्धिम रोशनी में

पानी की आँखों में

आँखें डाले हुए

वे रात-भर खड़े रहते हैं

पानी के सामने

पानी की तरफ

पानी के ख़िलाफ़

सिर्फ उनके अन्दर

अरार की तरह

हर बार कुछ टूटता है

हर बार पानी में कुछ गिरता है

छपाक्.........छपाक्............

4. फर्क नहीं पड़ता

हर बार लौटकर

जब अन्दर प्रवेश करता हूँ

मेरा घर चौंककर कहता है ‘बधाई‘

ईश्वर

यह कैसा चमत्कार है

मैं कहीं भी जाऊँ

फिर लौट आता हूँ

सड़कों पर परिचय-पत्र माँगा नहीं जाता

न शीशे में सबूत की ज़रूरत होती है

और कितनी सुविधा है कि हम घर में हों

या ट्रेन में

हर जिज्ञासा एक रेलवे टाइम टेबुल से

शान्त हो जाती है

आसमान मुझे हर मोड़ पर

थोड़ा-सा लपेटकर बाक़ी छोड़ देता है

अगला कदम उठाने

या बैठ जाने के लिए

और यह जगह है जहाँ पहुँचकर

पत्थरों की चीख साफ़ सुनी जा सकती है

पर सच तो यह है कि यहाँ

या कहीं भी फ़र्क नहीं पड़ता

तुमने जहाँ लिखा है ‘प्यार’

वहाँ लिख दो ‘सड़क’

फ़र्क नहीं पड़ता

मेरे युग का मुहाविरा है

फ़र्क नहीं पड़ता

अक्सर महसूस होता है

कि बगल में बैठे हुए दोस्तों के चेहरे

और अफ्रीका की धुँधली नदियों के छोर

एक हो गये हैं

और भाषा जो मैं बोलना चाहता हूँ

मेरी जिह्वा पर नहीं

बल्कि दाँतों के बीच की जगहों में

सटी है

मैं बहस शुरू तो करूँ

पर चीज़ें एक ऐसे दौर से गुज़र रही हैं

कि सामने की मेज़ को

सीधे मेज़ कहना

उसे वहाँ से उठाकर

अज्ञात अपराधियों के बीच में रख देना है

और यह समय है

जब रक्त की शिराएँ शरीर से कटकर

अलग हो जाती है

और यह समय है

जब मेरे जूते के अन्दर की एक नन्हीं-सी कील

तारों को गड़ने लगती है

4. अनागत

इस अनागत को करें क्या

जो कि अक्सर

बिन सोचे, बिना जाने

सड़क पर चलते अचानक दीख जाता है

किताबों में घूमता है

रात की बीरान गलियों-बीच गाता है

राह के हर मोड़ से होकर गुज़र जाता

दिन ढले--

सूने घरों में लौट आता है,

बाँसुरी को छेड़ता है

खिड़कियों के बन्द शीशे तोड़ जाता है

किवाड़ों पर लिखे नामों को मिटा देता

बिस्तरों पर छाप अपनी छोड़ जाता है।

इस अनागत को करें क्या

जो न आता है, न जाता है!

आजकल ठहरा नहीं जाता कहीं भी,

हर घड़ी, हर वक्त खटका लगा रहता है

कौन जाने कब, कहाँ वह दीख जाये

हर नवागन्तुक उसी की तरह लगता है!

फूल जैसे अँधेरे में

दूर से ही चीखता हो

इस तरह वह दरपनों में कौंध जाता है

हाथ उसके

हाथ में आकर बिछल जाते,

स्पर्श उसका

धमनियों को रौंद जाता है।

पंख

उसकी सुनहली परछाइयों में खो गये हैं,

पाँव

उसके कुहासे में छटपटाते हैं।

इस अनागत को करें क्या हम

कि जिसकी सीटियों की ओर

बरबस खिंचे जाते हैं।

11. एक पारिवारिक प्रश्न

छोटे-से आँगन में

माँ ने लगाये हैं

तुलसी के बिरवे दो

पिता ने उगाया है

बरगद छतनार

मैं अपना नन्हा गुलाब

कहाँ रोप दूँ!

मुट्ठी में प्रश्न लिये

दौड़ रहा हूँ वन-वन,

पर्वत-पर्वत,

रेती-रेती......

बेकार।

13.4.2 केदारनाथ सिंह की कविताएँ: आलोचना

केदारनाथ सिंह का काव्यात्मक विकास गीतकार के रूप में हुआ, जहाँ कथ्य व शिल्प की नयी दीप्ति थी और स्वर में ताज़गी, निजता और सम्वेद्यता भी- 'झरने लगे नीम के पत्ते', 'ये कोयल के बोल उड़ा करते' तथा 'आना जी बादल जरूर' जैसी कविताएँ इसका प्रमाण हैं। केदारनाथ सिंह नई कविता के थोड़े से भाग्यशाली कवियों में हैं जिनकी काव्यशक्ति पर प्रयोगवादियों तथा प्रगतिवादियों दोनों ने विश्वास जताया था। वे अपने आसपास की हल्लेबाजी से अलग, अपनी निजी जमीन पर टिके उस पूरे दौर में कविता करते रहे जब समूचा काव्य परिदृश्य भीड़ के साथ बहा जा रहा था लेकिन केदारनाथ सिंह के लिए परम्परा का एक गहरा अर्थ था और वह उनका निषेध करने के लिए प्रस्तुत नहीं थे:

'छोटे से आंगन में/माँ ने लगाए हैं/तुलसी के बिरवे दो/पिता ने उगाया है/बरगद छतनार/मैं अपना नन्हा गुलाब/कहाँ रोप दूँ।' यहाँ एक विनम्र स्वीकार है पूर्ववर्तियों के कृतित्व का, उनके द्वारा सिंचित-पल्लवित परम्परा का लेकिन उसमें नवीन के प्रति गहन आस्था भी है। वह जिसे प्रतिष्ठित करना चाहता है, वह कम प्यारा नहीं है- उसके लिए। वह न तुलसी की उपेक्षा करके गुलाब रोपने के पक्ष में हैं, न बरगद की छाया में उसे रोपकर इसे ग्रस्त होने देना चाहता है- यहाँ नई जमीन, नई संभावनाओं की खोज है। एक पारिवारिक प्रश्न सिर्फ पारिवारिक प्रश्न भर नहीं है बल्कि अपने पूरे सामाजिक-साहित्यिक संदर्भ के सम्मुख उपस्थित प्रश्न है, स्वीकृति और निषेध का और नवीन की स्थापना का भी।

केदार की कविताएँ अपने समय में बहुत देर तक टिकने वाली कविताएँ हैं। ये कविताएँ चुप्पी और शब्द के रिश्ते को बखूबी पहचानती हैं और उसे एक काव्यात्मक चरितार्थता या विश्वसनीयता देती है। गीतों की रूमानियत से छुटकारा पाकर जब वह यथार्थ का साक्षात्कार करते हों या सामाजिक-राष्ट्रीय मोहभंग का सामना करते हैं तो उन्हें साफ दिखता है कि- ''भेड़िये से फिर कहा गया है/अपने जबड़ों को खुला रखे।'' इससे भारतीय जनतंत्र से उनकी निराशा का सहज अनुमान लगाया

जा सकता है। उनकी कविताओं में आत्मनिर्वासन से लेकर वस्तुकरण तक का वर्णन है। 'सूर्य' उनकी बस्ती के लोगों की दुनिया में वह अकेली चीज़ है, जिस पर भरोसा किया जा सकता है। कवि के शब्दों में 'सिर्फ उस पर रोटी नहीं सेंकी जा सकती!'- यह संदर्भ अर्थव्यंजना को कहाँ तक खींच लाता है। डॉ0 बच्चन सिंह ने लिखा है कि 'केदार विशिष्ट शब्दार्थों के कवि हैं। उनकी कविता में शब्दार्थों की जो अद्वैतता है, स्पर्धाधर्मिता है, वह उसे विशिष्ट बनाती है।' केदारनाथ सिंह की कविताओं में निश्चिंतता का भाव भी है, एक बेचैनी है, जो कविताओं के बीच में बिजली की तरह कौंध-कौंध उठती है- ''आप विश्वास करें/मैं कविता नहीं कर रहा हूँ/वह पक रही है/और आप देखेंगे- यह भूख के बारे में/आग का बयान है/जो दीवारों पर लिखा जा रहा है।''- जो पक रही है वह 'रोटी' है। वह वहाँ तक चलना चाहता है जहाँ वह पक रही है- एक अद्भुत ताप और गरिमा के साथ/समूची आग को गंध में बदलती हुई/दुनिया की सबसे आश्चर्यजनक चीज/वह पक रही है- उसके पकने में जनसरोकार और प्रतिबद्धता का भाव निहित है। यहाँ जीवनोन्मेष की अनुभूति प्रबल है। यहाँ कविता श्रम संस्कृति और जन सरोकार का तिर्यक साक्षात्कार न करके, सीधे करती है। सब मिलाकर यहाँ कविता के स्तर में विषमता है। 'रोटी' न सिर्फ़ राजनीतिक प्रतीक भर है बल्कि जनधर्मी प्रतीक भी है। केदार की कविताएँ वास्तविकता का बयान होकर नहीं रहतीं, वे लगातार वास्तविकता के तल में छिपी हुई किसी उथल-पुथल की ओर इशारा भी करती हैं। उनके यहाँ खलिहान से उठते हुए दानों की आवाज़ है, जो मण्डी जाने से इंकार करते हैं, मनुष्य के खाली सिर हैं, जो अपने बोझे का इंतेजार कर रहे हैं, रोहू मछली की डब-डब आँखें हैं, जिसमें जीने की अपार तरलता है और वह बेचैन धूल है।

केदारनाथ सिंह की कविताओं में निश्चयता के स्थान पर अनिश्चयता है, आत्मविश्वास के स्थान पर संशयग्रस्तता है। उनकी कविताएँ सौन्दर्य और उल्लास की ओर चलते रहने का आग्रह करती हैं लेकिन गहरी प्रश्नाकुलता का संकेत भी करती हैं। 'माझी के पुल में कितने पाये हैं ? ', 'रास्ता किधर है? ', 'क्या तुम जानते हो? ', 'क्या शुरू हो गया आमों का पकना? ', 'तुम अब तक चुप क्यों हो मेरे भाई? '- क्या यह अनायास है कि केदार की कविताएँ प्रश्नवाचक चिन्हों से भरी पड़ी हैं! क्योंकि कवि प्रश्नवाचकता को अभिप्राय सहित खोलना चाहता है। उनकी कविताओं में अस्पष्टताबोधक चित्र अवश्य हैं, पर उन्हीं में वे सूक्ष्य रेखाएँ भी हैं जो विचार-बोध को विशेष अर्थ-बोध प्रदान करती हैं- 'उनके लक्ष्यहीन मोड़ों पर खिंचे हुए टोली के हल्के इशारे हैं।' दिशाहीन चिड़िया के पर में आकांक्षा के जीवित रेशे हैं। कामकाज, घर-हाट, खेत-खलिहान, घर-परिवार, गर्द-गुबार की दुनिया में धुंधले पड़े मामूली शब्द, इस्तेमाल की मामूली चीज़ें, प्रकृति लोक के नगण्य तथ्य केदारनाथ सिंह की कविता में अपना बजूद प्रमाणित करते हैं। वे अपने कलात्मक कौशल से मामूलीपन में भी अर्थपूर्णता व अनिवार्यता की तलाश करते हैं। अनागत है तो 'हाथ उसके हाथ में आकर बिछल जाते हैं।' पूल अजन्में हैं लेकिन हवाओं में तैरते हैं। केदार की कविताएँ अपने दायरे को तोड़कर व्यापक वास्तविकता का सामना करने की आकुलता जगाती हैं।

'अनागत'- वैसे अमूर्त्त है लेकिन कवि-दृष्टि उसकी आहट को अपने परिवेश या वातावरण में देख लेती है और वातावरण के उन अमूर्त्त संदर्भों द्वारा अनागत को मूर्त्त करने का प्रयास करती है। इन्हीं जीवन्त संदर्भों के चलते 'अनागत' एक निराकार भविष्य के स्थान पर 'जीवित सत्ता' की तरह जान पड़ता है। कभी वह प्रेत छाया की तरह किताबों में घूमता है, कभी रात की वीरान गलियों के पार जाता है। कभी बाँसुरी को छेड़ता है, कभी खिड़कियों के बंद शीशे तोड़ जाता है, कभी किवाड़ों पर लिखे नामों को मिटाते हुए बिस्तरों पर अपनी छाप अंकित कर जाता है। उसके आने-जाने की रहस्यता ऐसी है कि हर नवागन्तुक उसी की तरह लगता है। यहाँ प्रत्यक्ष है कि आस-पास के वातावरण से जो वस्तुएँ चुनी गई हैं, वे मन में निराकार और रहस्यमय अनागत की गतिविधियों को सजीव मूर्त्त और दीप्त बनाती है- फूल जैसे अंधेरे में दूर से ही चीखता है/इस तरह वह दरपनों में कौंध जाता है- उनका विश्लेषण करते हुए कविता की बिम्वधर्मी असंगतियों का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। कविता का वक्तव्य और कवि का भी वक्तव्य यही है कि भविष्य यहीं-कहीं, आस-पास है, पर उसका रूप अनिश्चित अज्ञात है- हालांकि 'हम उसकी ओर बरबस खिंचे जाते हैं।'

केदारनाथ सिंह साठोत्तरी कविता की सरलीकृत बोझिल शिथिलता तथा बिम्बधार्मिता की निरर्थकता का अनुभव कराते हैं। उनके यहाँ समस्या परिस्थितियों के सीधे साक्षात्कार की है क्योंकि-

'चीज़े एक ऐसे दौर से गुज़र रही हैं

कि सामने की मेज को सीधे-मेज कहना,

उसे उठाकर अज्ञात अपराधियों के बीच रख देना है'

यहाँ भाषा अकारण ही, वक्तव्य की भाषा नहीं है- 'तुमने जहाँ लिखा है 'प्यार'/वहाँ लिख दो सड़क/फर्क नहीं पड़ता/मेरे युग का मुहावरा है फर्क नहीं पड़ता।' मानवस्थिति की यह क्रूर विडम्बना- जिसके सामने हर जिज्ञासा रेलवे टाइम टेबुल से शांत हो जाती है'- वक्तव्य की सीधी भाषा में ही अपने को व्यक्त कर सकती है। यहाँ न कोई चित्रमयता है, न काव्योचित अलंकृति। यह कविता नेहरू युग के बाद के पनपे मोहभंग के बदले परिप्रेक्ष्य के साथ सूचित करती है, संकेत करती है और विश्लेषित भी करती है- जहाँ किसी चीज़ से कोई फर्क नहीं पड़ता- क्या यह स्थिति अमानवीयता की चरम स्थिति को नहीं सूचित करती है?

अभ्यास प्रश्न

क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :-

4. केदारनाथ सिंह का जन्म .... सन् में हुआ था।

4. केदारनाथ सिंह .... सप्तक के कवि हैं।

4. केदारनाथ सिंह हिन्दी कविता में .... के लिए प्रसिद्ध रहे हैं।

4. अभी बिल्कुल अभी केदारनाथ सिंह का .... संग्रह है।

ख) लघु उत्तरीय प्रश्न :-

4. केदारनाथ सिंह की काव्य रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दीजिये।

4. केदारनाथ सिंह की कविताओं का महत्त्व बताइये।

4. 'केदारनाथ सिंह विशिष्ट शब्दार्थों के कवि हैं' कैसे ?

4. अनागत या फर्क नहीं पड़ता कविता का वैशिष्ट बताइये।

13.5 सारांश

इस ईकाई में आपने साठोत्तरी कविता के संदर्भ में केदारनाथ सिंह की कविताओं के महत्त्व का परिचय प्राप्त किया है। हमने नेहरू युग के अन्त के बाद के दौर में भारतीय समाज में पनपे मोहभंग, संत्रास तथा मूल्य विघटन के सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य के साथ अकविता, भूखी पीढ़ी की कविता, शमशानी कविता, किसिम-किसिम की कविता वाले समय में केदारनाथ सिंह के महत्त्व को समझाने का प्रयास किया है। केदारनाथ सिंह तीसरा सप्तक के कवि हैं, उनकी काव्ययात्रा गीतकार के रूप में प्रारंभ होती है। वे इस अर्थ में विलक्षण कवि हैं कि प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की शिविर बद्धता के बीच वे दोनों के लिए समान प्रिय हैं। उनकी कविताएँ पहली बार रूप या तंत्र के धरातल पर एक आकर्षक विस्मय पैदा करती हैं, क्रमशः बिम्ब और विचार के संगठन में मूर्त्त होती हैं और एक तीखी बेलौस सच्चाई की तरह पूरे सामाजिक दृश्य पर अंकित होती चली जाती हैं। यहाँ कविता किसी अर्थ में एकालाप नहीं, वह हर हालत में एक सार्थक संवाद है। वह एक पूरे समय की व्यवस्था और उसकी क्रूर जड़ता या स्तब्धता को विचलित करती है। चुप्पी और शब्द के रिश्ते को वह बखूबी पहचानती हैं और उसे एक ऐसी चरितार्थता या विश्वसनीयता देती है- जिसके उदाहरण कम मिलते हैं। ये कविताएँ वास्तविकता का बयान होकर नहीं रहतीं, वे लगातार वास्तविकता के तल में छिपी हुई किसी उथल-पुथल की ओर इशारा करती हैं। उनकी संवेदना अपने समय के समस्त हिन्दी कवियों से भिन्न है और उन्हें सौन्दर्य के ऐसे अछूते आयामों से जोड़ती है जिनकी ओर सामान्यतः औरों की दृष्टि ही नहीं जाती। ग्रामांचल में एक विशाल सपाट, फैला, हरियाली से भरा दृश्य खण्ड, जो संभवतः किसी तलाब का कछार- इन सबका सार्थक चित्र

अन्यत्र मुश्किल है- हवा शान्त है/लोग/भागते हुए/स्वयं के साथ दौड़ती परछाई से अलग/तेजतर्रार /सीमान्तों पर/मुड़ते/मुड़ते/झण्डे बदल रहे हैं अपने।

केदारनाथ सिंह अपनी रचनायात्रा में कई बदलाव के साथ सक्रिय हैं। उनके प्रत्येक रचना संग्रह के साथ ताज़गी और रंगत के कई-कई विविध रूप अलग-अलग उभरते हैं। वे अपनी कविताओं में कवि कम, एक असाधारण दक्षता वाले शिल्पी के रूप में अधिक दिखाई देते हैं। वे भाषा के जादूगर अतिरंजना के कारण नहीं हैं बल्कि उनकी कविताएँ एक विशाल मंच पर सुनहरी पगड़ी और चमचमाती कोट पहने गिलि-गिलि करता हवा से या किसी तीसरे के हैट से मनमानी चीज़ें निकालता, दिखाता, गायब करता, बदलता, जोड़ता, तोड़ता और पूरी शान और आत्मविश्वास से एक छोर से दूसरे छोर तक टहलता और मुस्कुराता हुआ गोगिया पाशा की याद दिलाने वाली कविताएँ हैं।

केदार मुख्यतः रूपवादी कवि हैं उनका पैटर्न आश्चर्यजनक है। वे बहुत तेजी से घटित होने वाले बदलाव के खण्डित प्रभाव को शोर भरी निशब्धता में परिवर्तित कर देते हैं। उनकी कविताएँ उस दुनिया में विचरण करती हैं जिससे अभिजात्य रूचि वाले अन्य रूपवादी दूर भागते हैं- उनके यहाँ कन्धे पर कल्हाड़ी, पत्थरों की रगड़, आटे की गंध, बंसी डाले झुम्मन मियाँ, पकी रोटियों की गंध, अपनी समूची आदिम गरिमा के साथ उपस्थित है। इसलिये उनकी कोई भी कविता प्रतिक्रियावादी नहीं है। केदार जिस परिचित और आत्मीय दुनिया को अपनी कविताओं में उतारते हैं, उससे ही पैदा होता है वह विश्वास कि यह हमारा अपना कवि है और इसलिए थकान मिटाने या जी बहलाने को वह थोड़ी देर भटका और बिलमा तो सकता है, पर हमें धोखा नहीं दे सकता। वे काव्य प्रयोजन के प्रति बेहद सजग हैं, उनमें काव्य चमत्कार प्रदर्शित करने से अधिक चिंता जीवन के जवलन्त सरोकारों से जुड़ने की देखी जा सकती है। जहाँ कवि एक ऐसी आडम्बरहीन शैली का 'सादगी ओ पुरकारी बेखुदी ओ हुशियारी' का विकास करते हैं। वे आवेग के स्थान पर विट से काम लेते हैं, इसलिये उनकी सादगी विचलित और विगलित नहीं करती, हमें चमत्कृत करती है। केदार की कविताओं में एक कलात्मक नियंत्रण, एक लगाव-अलगाव का युगपत् व्यापार सहज ही पाया जाता है। ऊर्जा और कला का एक सार्थक संगठन केदार की खासियत है जिसे विलक्षण उत्तेजना के साथ कवि विश्लेषणपरक बनाता है।

13.6 शब्दावली

4. तीसरा सप्तक: (प्रकाशन-1959, से0 अज्ञेय) संकलित कवि: कुँवर नारायण, केदारनाथ सिंह, विजयदेव नारायण सारी, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, कीर्ति चौधरी, मदन वात्स्यायन, प्रयाग नारायण त्रिपाठी)

4. अकविता: अकविता का प्रयोग। साठोत्तरी कविता के अर्थ में किया गया है। 1963 में जगदीश चतुर्वेदी के सम्पादन में चौदह कवियों की कविताओं का संग्रह 'प्रारंभ' नाम से प्रकाशित हुआ था जिसके सम्पादकीय 'नये काव्य की भूमिका' के द्वारा प्रयोगवादियों के विरूद्ध सामूहिक आक्रोश के रूप में 'अभिनव काव्य' का प्रवर्तन किया गया। अभिनव काव्य शब्द को अपर्याप्त मानकर इसे । साठोत्तरी शीर्षक दिया गया जिसे अकविता के नाम से जाना जाता है। श्याम परमार, कैलाश वाजपेयी, राजकमल चौधरी की कविताओं के लिये यह नाम दिया गया। अकविता के मूल में विश्वयुद्धों के बाद दुनिया भर में फैली हताशा, एब्सर्डिटी और निरर्थकताबोध की लहर को माना जाता है जिसे किर्केगर्ड के परम्पराद्रोह तथा नीत्शे की ईश्वर की मृत्यु की घोषणा से काफी बल मिला। आजादी के बाद पनपे मोहभंग ने इसे हवा दी और यह आन्दोलन खड़ा हो गया।

4. बिम्बग्रहण: ऐसी रूप योजना जो मन के समक्ष वर्ण्य-वस्तु को प्रत्यक्ष कर दे, बिम्ब कहलाती है। केदारनाथ सिंह के अनुसार काव्यगत बिम्ब वह शब्द चित्र है जो ऐन्द्रिय गुणों से अनिवार्य रूप से समन्वित होता है। इस प्रकार सामान्य बिम्ब और काव्य बिम्ब में फर्क होता है। जहाँ भी कवि का उद्देश्य विषय का आलम्बन रूप में ग्रहण करना होगा वहाँ बिम्ब ग्रहण अनिवार्य होगा। बिम्बग्रहण वहीं होता है जहाँ कवि अपने सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा वस्तुओं के अंग प्रत्यंग, वर्ण, आकृति तथा उनके आसपास की परिस्थिति का परस्पर संश्लिष्ट विवरण देता है।

13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क) 4. 1932 4. बिम्ब 4. तृतीय सप्तक 4. प्रथम कविता संग्रह

13.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

4. नवल, नन्द किशोर, आधुनिक हिन्दी कविता।

4. श्रीवास्तव, परमानन्द, समकालीन कविता का यथार्थ।

4. श्रीवास्तव, (सम्पादक) परमानन्द, दिशांतर (समकालीन कविता का संकलन)।

4. प्रतिनिधि कविताएँ: केदारनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन।

11. सिंह, भगवान, इन्द्रधनुष के रंग।

13.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

4. सिंह, नामवर, कविता के नये प्रतिमान।

4. श्रीवास्तव, परमानन्द, कविता का अर्थात।

4. शर्मा, डॉ0 रामविलास, नयी कविता और अस्तित्ववाद।

4. सिंह, नामवर, कविता की जमीन और जमीन की कविता।

11. राय, डॉ0 लल्लन, हिन्दी की प्रगतिशील कविता।

13.10 निबंधात्मक प्रश्न

4. साठोत्तरी कविता और केदारनाथ सिंह के काव्य वैशिष्ट्य का महत्त्व बताइए।

4. केदारनाथ सिंह की कविताओं के शिल्प वैशिष्ट्य का मूल्यांकन कीजिये।

4. 'केदारनाथ सिंह की कविताओं का बिम्बविधान' को स्पष्ट कीजिये।

4. 'केदारनाथ सिंह साठोत्तरी कविता के परिदृश्य विशालता के कवि हैं'- कैसे ?

11. केदारनाथ सिंह मानवीय लगाव और जीवनोल्लास के कवि हैं- स्पष्ट कीजिए।

इकाई 14 अकविता : संदर्भ एवं प्रकृति

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 अकविता : संदर्भ एवं प्रकृति
14.3.1 अकविता : संदर्भ
14.3.2 अकविता : प्रकृति
14.3.3 अकविता की प्रवृत्ति
14.4 सारांश
14.5 शब्दावली
14.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.7 सन्दर्भ सूची
14.8 उपयोगी पुस्तकें
14.9 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

हिंदी के कवि मुक्तिबोध ने कहा था, “साहित्य के लिए साहित्य में निर्वासन आवश्यक है।” अकविता साहित्य की वही निर्वासित अभिव्यक्ति है। आप छायावादोत्तर हिन्दी कविता के इस पाठ्यक्रम में हिंदी कविता की उन सभी धाराओं से परिचित होंगे जिन्होंने हिंदी कविता के इतिहास में छायावाद के बाद अपनी जगह बनायी। इस अध्याय में आप हिंदी कविता की एक महत्वपूर्ण काव्य धारा ‘अकविता’ से परिचित हो सकेंगे। अकविता के निर्वासन को इस रूप में देखा जा सकता है कि इसकी बाहरी बनावट में कविता की पारंपरिक गुण-सूत्र मौजूद नहीं है। अकविता की पूर्वज कविताएँ कविता परम्परा में मौजूद नहीं है। यह पारंपरिक अभिरुचियों और जड़ स्वीकृतियों को अपने विन्यास में अभिव्यक्त नहीं करता। यह कलागत वैविध्य एवं अभिव्यक्ति का निरपेक्ष एवं यथार्थ वाचन है, जिसमें किसी तरह की नैतिक अथवा कहन के तरीक़े को नियमबद्ध नहीं किया गया है। अकविता वाद, प्रवृत्ति अथवा आंदोलन नहीं बल्कि सहज उद्भूत किसी पूर्वग्रह के बगैर वैचारिक प्रक्रिया का आत्मसातीकरण है। अकविता एंटी पोयट्री नहीं है और इसे नॉन पोयट्री भी नहीं कहा जा सकता है। इसका एक तय और ऐतिहासिक

संदर्भ है। यह हिंदी की ग़ैर रोमांटिक कविता है। किसी भी क़िस्म की मुलायमियत और रोमानी भावुकता में पड़े बगैर अपने युग-सत्यों को कहना ही इसका ध्येय है। अकविता एक क़िस्म से नग्न सचाई है, 'द नैकेड ट्रुथ'। अस्तित्ववाद, एंटी पोयट्री और क्षुधित पीढ़ी या भूखी पीढ़ी की कविता जिसके प्रमुख कवि सुनील गंगोपाध्याय, समीर राय चौधरी, मलय राय चौधरी, एलन गिन्सबर्ग इत्यादि से प्रभावित है। अकविता के प्रस्तावक श्याम परमार, जगदीश चतुर्वेदी और रवीन्द्रनाथ त्यागी थे, जिन्होंने अकविता पत्रिका निकली। श्याम परमार ने इसे' अंतर्विरोधों का अन्वेषक 'माना और इसे' अलग-अलग मनःस्थितियों 'से जुड़ा हुआ बताया। वे अकविता पर बीटनीकों के प्रभाव को नकारते रहे। दरअसल अकवितावादी एक मुक्त समाज ,आक्रोश की अनिर्वचनीयता , स्वंत्रतता और स्वेच्छाचार का समर्थक हैं जहाँ पाखंड, रोक-टोक, घेराबंदी और पराधीनता न हो। निरर्थकता अकविता का एक विशिष्ट मूल्य है। इसके साथ ही विरोध की तीव्रता इसकी उपलब्धि भी है। इसके प्रमुख कवियों में श्याम परमार, जगदीश चतुर्वेदी, गंगाप्रसाद विमल, सौमित्र मोहन, मोना गुलाटी, चंद्रकांत देवताले, विनय, कैलास वाजपेयी, रवीन्द्रनाथ त्यागी, मुद्राराक्षस, सुदामा पाण्डेय 'धूमिल', लीलाधर जगूड़ी, राजकमल चौधरी, कुमारेंद्र पारसनाथ सिंह इत्यादि शामिल हैं।

14.2 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के पश्चात् आप

- अकविता काव्यधारा से परिचित हो सकेंगे।
- अकविता के संदर्भ और प्रकृति को समझ सकेंगे।
- अकविता के प्रमुख कवियों और उनकी कविताओं से वाक़िफ़ हो सकेंगे।
- समकालीन कविता के परिदृश्य को समझ सकेंगे।
- आज की कविता पर अकविता के प्रभावों को जान सकेंगे।

14.3 अकविता : संदर्भ एवं प्रकृति

14.4.1 अकविता : संदर्भ

सन् साठ के बाद की हिंदी कविता अपनी विशिष्ट अथवा यूँ कहें अपनी पिछली रचना-पद्धति से विलग एक नयी पहचान बनाने की कविता है। हालाँकि यह विशिष्टता क्या है? इसपर

एक लम्बी बहस हो सकती है। एक बड़ी बहस तो हमारे सामने' समकालीनता 'पदबंध के रेखांकन का ही है। साठ के बाद तीसरे सप्तक के प्रकाशन के बाद प्रयोगवाद का समापन होता है और इसी से नयी कविता का भी। किन्तु कविता अब भी बहुत कुछ उन्हीं प्रतिमानों-शिल्पों और बिम्बों से काम चलाती नज़र आती है या उन्हीं काव्य-रूपों का विस्तार करती है। साठोत्तरी कविता में भी विदेशी काव्यान्दोलनों का अनुकरण और प्रभाव, निरर्थकता, व्यक्ति-केन्द्रीयता, आस्तित्व के सवाल ,आत्म-हारा या पराभव ,आत्महत्या या आत्म विगलन ,अस्वीकार और आक्रोश की प्रधानता के स्वर मौजूद हैं ,जो कमोबेश नयी कविता में भी मौजूद थे। इस कविता पर बीटनीक और एलेन गिन्सबर्ग का प्रभाव दिखता है ,जो बाद में अकविता के रूप में हमारे सामने आती है। अकविता, अस्वीकृत कविता, नकेन के प्रपद्य, मोतवाद, भूखी कविता, बीट कविता ,श्मसानी कविता, युयुत्सु कविता इत्यादि कई सारी धाराएँ इस कविता में मौजूद हैं। इन कविताओं में अंतर्भूत यौनिकता या यौन-बिम्बों की भरमार, विकृत-अतिरेक और गाली-गलौज का व्यामोह नयेपन के आत्म-मुग्ध और आत्म-विस्मृति के आवरण में समाया रहा। इस कविता में अपने समय के सवालों से सीधा मुठभेड़ न सही किन्तु एक छद्म लड़ाई जरुर देखने को मिलती है। वहीं कई कवि ऐसे भी हैं जिन्होंने उपरिवत प्रकृति से विलग एक संयत स्वर अपनाया और अपने परवर्ती स्वरों को छोड़ अपनी कविता को बदलते रहे। कुँवर नारायण और केदारनाथ सिंह को इस धारा में रखा जा सकता है। साठोत्तरी हिंदी कविता में इन बहुत सारी काव्य-धाराओं में अकविता कविता आन्दोलन सर्वाधिक चर्चित रहा। अकविता के प्रस्तावक श्याम परमार, जगदीश चतुर्वेदी और रवीन्द्रनाथ त्यागी थे, जिन्होंने अकविता पत्रिका निकली। श्याम परमार ने इसे' अंतर्विरोधों का अन्वेषक 'माना और इसे' अलग-अलग मनःस्थितियों 'से जुड़ा हुआ बताया। वे अकविता पर बीटनीकों के प्रभाव को नकारते रहे। दरअसल अकवितावादी एक मुक्त समाज ,आक्रोश की अनिर्वचनीयता ,स्वंत्रतता और स्वेच्छाचार का समर्थक हैं जहाँ पाखंड, रोक-टोक, घेराबंदी और पराधीनता न हो। निरर्थकता अकविता का एक विशिष्ट मूल्य है और इनकी तबियत' परम स्वतंत्र न सिर पर कोई' की है।

हिन्दी-कविता-इतिहास का पिछला सत्तर साल सबसे उथल-पुथल का साल रहा है- असंख्य घटनाएँ-परिघटनाएँ, सृजन और विध्वंश, उलटफेर, विचार और लेखन में असाधारण परिवर्तन हुए हैं। इन असंख्य परिवर्तन में कविता की किसी केन्द्रीय धारा को खोजना सरसों के ढेर में सुई को खोजने जैसा है। कविता की कोई एक केन्द्रीय विषयवस्तु निर्मित नहीं होती जो कविता अथवा समाज की जटिलताओं को ग्राह्य बना सके। इस समय का सूत्रीकरण विविधता के सूत्र को पकड़ कर किया जा सकता है। कविता और जीवन में आर्थिक-सामाजिक-राजनैतिक एवं सांस्कृतिक पक्ष अन्योन्याश्रित रूप में मौजूद है। अगर इन घटनाओं के आलोक में कविता के गतिकी को समझने की कोशिश की जाये तो कविता के सामान्य और विशिष्ट के बीच के द्वंद्व और कविता के इतिहास-क्रम को समझने में मदद मिल सकती है। कविता में समकालीनता के तत्व की

तलाश और समकालीन और समकालीनता की समझ को इसी सूत्र के माध्यम से समझने की कोशिश आगे किया गया है। हिंदी कविता के लिए छायावाद तक की कविता के लिए जो काम दर्शन और अध्यात्म ने किया, आधुनिक हिंदी कविता के लिए वही काम विचार ने किया। समकालीन हिन्दी कविता तक आते-आते विचार अपने स्वरूप को अवधारणा से अलग सामाजिक प्रयोगों तक अपने को ले जाता है, विचार यहाँ सिर्फ अवधारणा के स्तर पर नहीं जीवन के सच्चाइयों के साथ रू-ब-रू होकर जीवन के साथ-साथ चलने लगता है। यही वजह है कि अस्सी से नब्बे के दशक में विकसित हुई अस्मिताई विमर्श समकालीन हिन्दी कविता का एक विशिष्ट और आवश्यक स्वर बन जाता है। डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय इसे ही(समकालीनता को) 'जो हो रहा है, उसका खुलासा' कहते हैं। "समकालीन कविता में, 'जो हो रहा है' (बिकमिंग) का सीधा खुलासा है। इसे पढ़कर वर्तमान काल का बोध हो सकता है क्योंकि उसमें जीते, संघर्ष करते, लड़ते, बौखलाते, तड़पते-गरजते तथा ठोकर खाकर सोचते वास्तविक आदमी का परिदृश्य है। आज की कविता में काल अपने गत्यात्मक रूप में है, ठहरे हुए 'क्षण' या 'क्षणांश' के रूप में नहीं। यह 'कालक्षण' की कविता नहीं, कालप्रवाह की, आघात और विस्फोट की कविता है। इसी से, समकालीन कविता की बुनावट तरंगों की तरह है। उसमें अनुपात, अवयव-संतुलन, सामंजस्य नहीं है, 'क्लासिक' पूर्णता नहीं है, परिष्कृत नहीं है, उनमें मुक्तिबोधक चट्टानें, अंधड़, लू लपट, हिंस्रगर्जन, उपहास, व्यंग्य, लताड़ और मारधाड़ है। उसमें काल का 'होता हुआ' रूप है, जीवन और मूल्यों की अमूर्त धारणाओं के स्थान पर, सताए हुए लोगों का विरेचन और विद्रोह है, द्रोह है। समकालीन कविता की अतिकल्पनाएं गत्यात्मक हैं' तथा अपने समय के मुख्य अंतर्विरोधों और द्वंदों की कविता है। समृद्धों के समृद्धतर होने और दरिद्रों के दरिद्रतर होने की 'रचना प्रक्रिया' में ही समकालीन कविता की रचना प्रक्रिया का रहस्य छीपा हुआ है। यह कविता पर, जीवन का प्रभाव है। आज की कविता में अपने समय के साथ जितनी सीधी और उग्र मुलाकात होती है उतनी पहले की कविता में नहीं होती।"('समकालीन कविता की भूमिका', डॉ. विश्वंभर नाथ उपाध्याय, पृ. 3) आलोचक जगदीश नारायण श्रीवास्तव समकालीन कविता को चिन्तात्म्क काव्य-परिणितियों की संज्ञा से अभिहित करते हैं, उनके अनुसार समकालीन हिंदी कविता के केंद्र में विचार की चिंताएं हैं। उनके अनुसार समकालीन कविता के केंद्र में दार्शनिक मूल्यों के स्थान पर विचार हैं। यही वजह है कि समकालीन हिंदी कविता में एक गत्यात्मकता है, और विचार है। अगर समकालीन हिंदी कविता दर्शन से अनुप्राणित होती तो वह स्थिर रहती। विचार के केंद्र में होने से तात्कालिकता और वर्तमान समकालीनता के प्रमुख अवयव बन जाते हैं। वे लिखते हैं- "समकालीन कविता उतनी चिन्तन की नहीं, जितनी चिन्तात्म्क काव्य-परिणितियों की संज्ञा है। यों, किसी भी तात्कालिक घटना के कारण यकायक कविता का कोई नया प्रस्थान-बिंदु नहीं बना करता। कवि की आनुभूतिक और वैचारिक दृष्टि बहुत पीछे से जीवन परिस्थिति की जड़ों और संभावित कल को टटोलते हुए अपनी वर्तमानता का निर्धारण कर पाती है तथा उसे रचना की बुनावट में कसती रहती है।"('समकालीन कविता पर एक बहस',जगदीश नारायण श्रीवास्तव, पृ.

17) इसी बात को विस्तार देते हुए जगदीश नारायण श्रीवास्तव, सुरेन्द्र चौधरी की बात को आधार बनाते हैं, जहाँ तात्कालिकता और वर्तमान के संबंधों की पड़ताल है। सुरेन्द्र चौधरी के हवाले से जगदीश नारायण श्रीवास्तव लिखते हैं- "तात्कालिकता के समस्त संगठक तत्व समकालीन नहीं होते पर तात्कालिकता ही समकालीनता के अन्तर्दशाओं को रूप देती है। ये अन्तर्दशाएं युग विशेष की काव्य प्रवृत्ति का निर्माण करती हैं और इस प्रकार समकालीनता का काल-संदर्भ में विस्तार होता रहता है, जबकि प्रत्येक तात्कालिकता केवल पीछे छूटती जाती है।"('वही पृ. 17) उपरोक्त उद्धरण से पता चलता है कि समकालीनता कोई एक सर्वमान्य सिद्धांत नहीं है, इसमें आधुनिकता, तात्कालिकता, समसामयिकता के सवाल और उससे जूझते हुए बनी हुई काव्य-निर्मितियां समकालीनता के परिसर को बनाती हैं। आज के संदर्भ में प्रासंगिक सभी तात्कालिक मूल्य समकालीनता के अंग हैं, किन्तु समकालीन हिंदी कविता के वे अंग हो आवश्यक नहीं है। समकालीन हिंदी कविता का परिसर व्यापक और बहुआयामी है। उपरोक्त सवाल से जूझते हुए जो मूल्य निर्मित होते हैं वे समकालीन हिंदी कविता के मूल्य होंगे। इस प्रकार से देखें तो समकालीन हिंदी कविता की एक स्थाई विचार या मेनोफेस्टो के साथ विकसित हुआ आन्दोलन या काव्य-धारा नहीं है। इसमें समय-समय पर बहुवर्णी या विविध विचार जो विविधता के धरातल पर एक से प्रतीत हो सकते हैं, वे जुड़ते गए और इन सबने समकालीनता का एक रूप तैयार किया। इस प्रकार देखें तो समकालीनता एक मूल्यवाची शब्द है। अलग-अलग कवि-आलोचकों ने समकालीन कविता की शुरुआत अपने तरह से माना है। साहित्य में बदलाव किसी एक तिथि को आधार बना कर नहीं होता, कि उक्त तिथि से पहले का साहित्य और उक्त तिथि के बाद का साहित्य। "साहित्य चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिम्ब" है, और इसमें बदलाव बहुत धीरे होता है। साहित्य में बदलाव एक क्रमिक प्रक्रिया है। साहित्य का विन्यास, भाषा, रूप एक ही दिन में बदल जाने वाली वस्तु नहीं है। इस क्रमिकता को समझते हुए, साहित्य में समय का विभाजन तय होता है। डॉ. जगदीश गुप्त ने अपनी पुस्तक 'नयी कविता : स्वरूप और समस्याएँ' में 'नयी कविता : किसिम-किसिम की कविता' शीर्षक लेख में नई कविता के बाद की कविता आन्दोलनों की लम्बी सूची दी है- "4. सनातन सूर्योदयी कविता, 4. अपरम्परावादी कविता, 4. सीमांतक कविता, 4. युयुत्सावादी कविता, 11. अस्वीकृत कविता, 12. अकविता, 13. स-कविता, 11. अन्याथावादी कविता, 12. विद्रोही कविता, 13. क्षुत्कार कविता, 14. कबीरपंथी कविता, 14. समाहारात्म्क कविता, 14. उत्कविता, 14. विकाविता, 111. अ-अकविता, 112. अभिनव कविता, 113. अधुनातन कविता, 111. नूतन कविता, 112. नाटकीय कविता, 20. एंटी कविता, 24. निदिशायामी कविता, 24. गीत कविता, 24. नव प्रगतिवादी कविता, 24. बोध कविता, 211. लिंगवादल मोतवादी कविता, 212. एब्सर्ड कविता, 213. साम्प्रतिक कविता, 211. बीट कविता, 212. ठोस कविता (कांक्रीट कविता), 30. ताज़ी कविता, 34. टटकी कविता, 34. कोलाज कविता, 34. मुहूर्त कविता, 34. द्वीपांतर कविता, 311. अतिकविता, 312. अगली कविता, 313. प्रतिबद्ध कविता, 311. शुद्ध कविता, 312. स्वस्थ कविता, 40. नंगी कविता, 44. गलत कविता,

44. सही कविता, 44. प्राप्त कविता, 44. सहज कविता, 411. आँख कविता...आदि।"('नई कविता : स्वरूप और समस्याएँ', डॉ. जगदीश गुप्त, पृ. 91) इसमें सहज ही दो नाम और जोड़ा जा सकता है विचार कविता और साठोत्तरी हिंदी कविता का, ये सभी कविता आन्दोलन या नाम बहुत क्षणिक थे अथवा प्रतिक्रिया मात्र, जो समय के साथ विलीन हो गए, नई कविता के बाद आन्दोलन के तौर पर जिसकी पहचन बनी रह पाई वह अकविता आन्दोलन है, बाकी सब समकालीन काव्य-धारा में अनुस्यूत हो गये।

राजेश जोशी समकालीनता को 'समय को विभाजित करने वाली ऐतिहासिक घटनाओं के संदर्भ' में देखते हैं। उनके अनुसार किसी कृति के प्रकाशन से अधिक तत्कालीन घटना से बदले साहित्यिक परिवेश से समकालीनता के समय को निर्धारित करना अधिक उचित है। वे लिखते हैं- "स्पष्ट है कोई भी ऐसी घटना जो देश या अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर समय को पूर्व और बाद में विभाजित कर देती हो, जैसा-द्वितीय विश्वयुद्ध, रूसी क्रांति या आजादी ने किया, समकालीनता के निर्धारण के लिए जरुरी होगी। इस तरह समकालीनता इतिहास की निरंतरता से बाहर और विच्छिन्न समय की अलग इकाई नहीं होगी। दृष्टि का प्रश्न भी इसी में अंतर्निहित होगा। वर्तमान में समकालीन कविता पर बात करते हुए क्या हम ऐसी तिथियाँ तय कर सकते हैं? यह थोड़ा विवादास्पद मामला है। देश के स्तर पर एक तिथि 1975 का आपातकाल हो सकती है, जब पहली बार भारतीय बुर्जुआ का आंतरिक संकट आत्यंतिक रूप से सामने आया। दूसरी तिथि सोवियत संघ में समाजवादी महास्वप्न के विघटन की मानी जा सकती है। शीतयुद्ध की समाप्ति। विश्व समाज का मोनोपोलर होना। अमेरिकी साम्राज्यवाद का अत्यधिक शक्तिशाली होते जाना। प्रौद्योगिकी, उदारवादी अर्थनीति, मुक्त बाज़ार। भूमंडलीकरण और नई सैद्धांतिकी। ये कुछ ऐसे मुद्दे हो सकते हैं जिनके आधार पर वर्तमान कविता में समकालीनता की हदें तय की जा सकती हैं।" कवि श्रीप्रकाश शुक्ल के अनुसार समकालीनता एक विवादित शब्द है, जो समसामयिक बोध के साथ-साथ कालवाची और मूल्यवाची दोनों है। वे लिखते हैं- "समकालीनता एक विवादित शब्द है जिसे सुविधानुसार कोई भी पहन लेता है लेकिन इसके दो अर्थ – एक कालबोध दूसरा मूल्यबोध, से तो जुड़ते ही हैं। कालबोध के स्तर पर यह समयबद्ध है और स्थानीय भी। इसका अपना एक कालखंड होता है जैसे 2000 के बाद का समय। इसे आप समसामयिक से मिलता जुलता भी कह सकते हैं हालाँकि दोनों के बीच के अंतर को नज़रअंदाज नहीं कर सकते। लेकिन मूल्यबोध के स्तर पर यह एक प्रवाह है जहाँ कालिदास व निराला, केदारनाथ सिंह और नरेश सक्सेना तथा मदन कश्यप और जितेन्द्र श्रीवास्तव एक साथ खड़े हो सकते हैं। इलियट ने कभी कहा था कि रचना की महानता के लिए उसमें साहित्य के इतर मूल्य का होना जरूरी होता है। तब यह ठीक है कि मूल्य के स्तर पर समकालीनता एक मिजाज है लेकिन काल के स्तर पर 1960 से आज तक के समय को समकालीन नहीं कहा जा सकेगा। यह बात और है कि हिंदी कविता के क्षेत्र में अभी भी हम समकालीन हिंदी कविता को 1970 के बाद से आज तक मानते हैं।" कवि मदन कश्यप समकालीन

हिंदी कविता को 1990 के बाद की कविता के रूप में स्वीकार करते हैं। वे लिखते हैं,- "सबसे पहले बात समकालीनता की करे तो वह सबकुछ समकालीन नहीं है, जो आज लिखा जा रहा है। समकालीन कविता केवल वह है जो आज के समय में सार्थक हस्तक्षेप करने में सफल है, अर्थात् जो समय की जटिलता, विडम्बना और आंतरिक गतिशीलता को रेखांकित करने में सक्षम है। ऐसी कविता की चर्चा करने से पहले समकालीनता को यानी, समकालीन समय को निर्धारित और परिभाषित करना जरुरी है। बदलाव निरंतर होता रहता है और हर समय संक्रमण का समय होता है लेकिन, मोटे तौर पर हम आजादी के बाद के इतिहास को देखें, तो 1990 के आस-पास कुछ ऐसी घटनाएँ हुईं; जिसने हिंदी समाज के सोचने-समझने के ढंग और दायरे को इस हदतक परिवर्तित कर दिया कि उसे एक नए प्रस्थान बिंदु की तरह देखा जा सकता है। यह बदलाव केवल राष्ट्रीय स्तर पर नहीं, काफी हद तक वैश्विक बदलाव है। हम केवल हिंदी समाज पर अपना ध्यान केन्द्रित करें तो मंडल आन्दोलन, सोवियत संघ का विघटन और बाबरी मस्जिद का विध्वंश- तीन ऐसी घटनाएँ लगातार हुई, जिन्होंने समाज के सोचने-समझने के ढंग और ढब में काफ़ी परिवर्तन ला दिया। महाआख्यान के ध्वस्त होने के बाद, उसकी कई सीमाएँ सामने आ गयीं और सामाजिक न्याय के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन की राह खुलने लगी। स्त्रियाँ, दलितों और आदिवासियों के सामाजिक आंदोलनों के साथ उनके वैचारिक आन्दोलन भी आकार लेने लगे। 1990 के बाद की कविता, जिन्हें हम समकालीन कविता के रूप में स्वीकार कर रहे हैं; को सबसे अधिक पहचान और ताकत अस्मिता विमर्शों से मिली।" उपरोक्त टिप्पणी के आलोक में देखें तो समकालीनता की अवधारणा एक अलग चीज है, और कविता में समकालीनता एक अलग चीज है। समकालीनता एक मूल्य है। समकालीनता एक समय बोध है। और समकालीन एक काव्य-धारा है, जो अपने अवधारणात्मक रूप में बहुत साफ़ नहीं है। कोई इसे आजादी के बाद, कोई इसे 80 के बाद, अकविता आन्दोलन के समाप्त होने के बाद, कोई इसे 75 के बाद, कोई इसे 85 के बाद, कोई इसे 70 के बाद तो कोई इसे 90 के बाद की कविता के रूप में देखता है। समय की समकालीनता के अनुसार ये सभी कविता में बदलाव के निर्णायक स्थान हैं, लेकिन कविता के भाषा और शिल्प में जो परिवर्तन अकविता आन्दोलन और नक्सलबाड़ी आन्दोलन के बाद हुए, उसे ही समकालीन कविता के शुरुआत के आरम्भ बिंदु मानना चाहिए। अकविता और नक्सलबाड़ी के बाद कविता का शिल्प और रूप बदला है, जिसमें कलावाद और जनवाद की वैचारिकी भी है और विमर्शों की आहट भी। अकविता और नक्सलबाड़ी आन्दोलन के बाद हिंदी कविता का स्वर अपेक्षाकृत शांत है,इस कविता ने बिना हिंसा के, उग्रता और निरर्थकता के शोर या उत्सव के समकालीन मनुष्य की निरर्थकता, अकेलेपन, त्रासदी का चित्रण सार्थक और विशिष्ट ढ़ंग से संयत स्वर में किया है। अकविता और नक्सलबाड़ी के मुहावरों से निकलकर मुहवारेदानी से अलग सीधे-सपाट ढ़ंग से अपनी बात रखने की कोशिश की है। ये कविताएँ किसी आन्दोलन में पड़े बगैर नितांत व्यक्तिगत अनुभवों के माध्यम से समष्टि-बोध को संबोधित करने वाली कविताएँ हैं। यानी अकविता नई कविता के बाद और समकालीन कविता के ठीक पहले की

समकालीन कविता है। यानी अगर समकालीन कविता के समय सीमा और मूल्यों को व्यापक करें तो अकविता समकालीन कविता का पूर्व रंग है और समकालीन कविता को मूल्यों के अनुरूप करें तो अकविता के बाद समकालीन कविता की शुरूआत होती है। अकविता की निर्मिति के पीछे सामाजिक-राजनीतिक और आर्थिक स्थितियों को समझने से अकविता के परिदृश्य को और विस्तार से समझा जा सकता है।

परिमल समूह के कवि और नई कविता के कवि अस्तित्ववाद की अमूर्त्त समस्याओं में उलझकर अस्तित्ववाद का साहित्यिक काव्यात्मक अभिव्यक्ति कर रहे थे। दूसरे विश्व युद्ध के पश्चात् बरबादी, निराशा, हिंसा, अवसाद, भय, आत्म पीड़ा से अविश्वास, निरर्थकता, अनास्था, कुंठा इत्यादि मनोवृत्तियों का बोलबाला था। यह एक किस्म का अंधा-युग था। भारतीय संदर्भों में 1962 का चीन आक्रमण ने विश्वास से विश्वासघात की और भारतीय को धकेला। 1964 में मुक्तिबोध और नेहरू की मृत्यु ने एक ऐसी रिक्तता पैदा की जिसने व्यवस्था के यथार्थ को सामने ला दिया। नेहरू के स्वप्नों का बिखरना एक ऐसे मोहभंग को पैदा किया जिसमें अकविता के फलने फूलने का अवकाश पैदा कर दिया। धूमिल की पटकथा, राजकमल चौधरी की मुक्ति प्रसंग, लीलाधर जगूड़ी की बलदेव खटिक, अशोक वाजपेयी की जबर जोत मोहभंग की गुस्से की निर्मिति है। अकविता ने सामान्य मानव चिन्ता (जनरल ह्यूमन कंसर्न) को अतिरेक में देखना शुरू किया। वे अंतर्विरोध के इतने तह में चले गए अवधारणाओं के अविमिश्रण में विचारधारा और कविता दोनों अकविता से दूर चले गए। अकविता में बाहरी दृष्टि से ही देखने पर नैतिकता अथवा अश्लीलता का प्रश्न की निर्मिति करता है जबकि यह मनुष्य देह और वर्तमान राजनीति की कविता है। जिसमें समाज में पतनशील समझे जाने वाले नायक ही नायक बने हैं। जगदीश गुप्त में जो साठोत्तरी कविता की सूची बनायी उसमें सबसे प्रभावी अकविता ही हुआ। अकविता का आरम्भ 1963 में जगदीश चतुर्वेदी के प्रारंभ नामक संकलन से शुरू हुआ। इसमें बीट पीढ़ी के कवियों के राह पर चल कर कविता लिखने वाले कुल चौदह कवियों की कविताओं का संकलन किया गया। जगदीश चतुर्वेदी ने बीट पीढ़ी कवियों के गुस्से को अकविता का आधार बनाया। वे लिखते हैं- "इंग्लैंड के एंग्री यंगमैनों की तरह एक क्षुब्धता आज के हिन्दी कवियों में है। किन्तु इन युवा आक्रोशी कवियों में असामाजिकता कहीं भी नहीं है, वह समाज का विध्वंस नहीं करना चाहते, मात्र परिवर्तन चाहते हैं।" 'अकविता' शब्द सन् 1960-61 में नई कविता के संयुक्तांक में पहली बार प्रयोग किया गया। इसका अर्थ 'कविताओं की विशेषताओं से निरस्त ऐसी रचना जो ग्राह्य नहीं की जा सकती है" के अर्थ में किया गया। 'अकविता' को 'एन्टी-पोयट्री' कहा गया। सन् 1966 में 'अकविता' नामक पत्रिका के प्रकाशन के बाद यह आन्दोलन तेज हुआ। डॉ. श्याम परमार ने इस आन्दोलन के अगुआ बने। डॉ. श्याम परमार ने अकविता के अनेक पक्षों को विवेचित करते हुए उसे स्थापित किया। अकविता आन्दोलन के आरम्भ में गिरिजाकुमार माथुर और भारत भूषण अग्रवाल जैसे कवि भी शामिल हुए, किन्तु बाद में इस कविता में जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार,

सौमित्र मोहन, राजकमल चौधरी और मोना गुलाटी आदि की प्रमुखता रही। 'अकविता' शब्द हिन्दी काव्य में एक विशिष्टता के लिए पारिभाषिक हो गया। इसे 'निषेध' और 'नकार' का आन्दोलन भी कहा गया है क्योंकि इसमें राजनीतिकों तथा परम्परागत मूल्यों को नकारा गया है। इस आन्दोलन के प्रमुख कवि श्याम परमार इसे पूर्ण रूप से निषेध का काव्य नहीं मानते। उसी प्रकार वे इस पर विदेशी प्रभाव को भी अस्वीकार करते हैं। सन् 1967 में 'कृति परिचय' के सम्पादक ललित कुमार श्रीवास्तव ने भी अकविता नामक अंक निकाला। 1963 में 'प्रारम्भ' के प्रकाशन के लगभग नौ वर्ष बाद सन् 1972 में जगदीश चतुर्वेदी जी ने 'निषेध' नामक कृति का सम्पादन किया, जिसमें गंगाप्रसाद विमल, जगदीश चतुर्वेदी और श्याम परमार की रचनाएँ संकलित की गई थीं। इसे 'विजप' के नाम से भी जाना गया है। 'अकविता' पत्रिका के प्रकाशन के बाद इस विषय पर चर्चाओं का एक लम्बा सिलसिला चल पड़ा। अकविता को 'एन्टी पोएट्री' कहा गया तथा इसे 'निषेध' और 'नकार' का आन्दोलन भी कहा गया। डॉ. श्याम परमार ने इस कविता पर लगाए गए आरोपों का खंडन करते हुए अपने पक्ष के समर्थन में विभिन्न तर्क दिए। उन्होंने कहा कि-

4. "अकविता स्थितिपरक सन्तुलित स्तर की कविता है।

4. अकविता की नियति अकेलेपन की नियति नहीं है, बल्कि विकृत सम्बन्धों की नियति है।

4. अकविता वस्तुतः कविता के ऊबे हुए लोगों की अभिवृत्ति है। यह ऊब नैराश्य जाया नहीं, न ही ऐसे लोगों की प्रतिक्रिया है जिन्हें 'आइडेन्टिटी' की आवश्यकता है। नैराश्य अब स्वभावः बन गया है।

4. अकविता अन्तर्विरोधों की अन्वेषक कविता है।

11. अकविता अवाक् मन की प्रक्रिया नहीं है।

12. अकविता स्वाभाविक कविता की दिशा है।"

श्याम परमार 'अकविता' नाम की सार्थकता को सिद्ध करने का प्रयास करते हैं, "सोचने पर 'कविता' और 'नई कविता' साधारण शब्द प्रतीत होते हैं-कविता में 'अ' जोड़ने से उक्त दोनों शब्दों के बासीपन से मुक्ति मिलती है।" अकवितावादी इसे पूर्ण रूप से निषेध का काव्य नहीं मानते। वे अकविता पर विदेशी प्रभाव को भी नहीं मानते हैं। नई कविता में जहाँ स्त्री को मित्र रूप में स्वीकार किया गया है, वहीं अकविता में स्त्री को भोग मात्र की वस्तु समझा लिया गया। स्त्री देह को लक्ष्य कर अर्थ की अभिव्यंजना की गई। अकविता के कवियों ने अनेक ऐसे शब्दों का उपयोग अपनी कविता में किया जो इसके पूर्व काव्य में विशेष रूप से दिखाई नहीं देते। यौन शब्दावली एवं अश्लील भाव का चित्रण इन कवियों ने सहजता से किया है। इन कवियों की विशेष उपलब्धि यह रही है कि इन्होंने सामाजिक विसंगतियों, विडम्बनाओं तथा परम्परागत संस्कारों के प्रति विद्रोह

का भाव अभिव्यक्त किया है। यह अभिव्यक्ति सीधी सरल सपाट नहीं, अपितु व्यंग्योक्ति से हुई है। अकविता के सन्दर्भ और शब्द घृणास्पद और भोंडेपन या नग्नता से भरे हैं। उसमें सेक्स की अधिकता है। डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय के विचारानुसार- "यौन-चित्रों की वीभत्सता इस कविता में इतनी अधिक है कि विक्टोरियन नैतिकता के लोग तो इसे अपठनीय घोषित कर देंगे मगर नव समृद्ध वर्ग में ही नहीं, सारे उच्च और मध्यमवर्ग में यौनतृष्णा अत्यन्त प्रबल है जो समाज के भय के कारण अँधेरे, उजालों में पूरी निर्लज्जता से प्रकट है। स्वयं अकवि की स्थिति भी यही है।" अकविता के कवि देह की राजनीति में ही उलझे रहे अतः कविता, कविता नहीं रही, वह दूषित अथवा कुत्सित मनोवृत्तियों का ढेर बन गई।

14.3.2 अकविता : प्रकृति

छठवें दशक में नई कविता के बाद आस्था-अनास्था का द्वंद्व, व्यक्ति स्वतंत्रता, उत्तरदायित्व इत्यादि मूल्यों का तेजी से विगलन हुआ और व्यक्ति और समाज की दूरी बढ़ती गई। अहं के विसर्जन के जगह पर कवि ही अहं में विसर्जित होने लगे। राजनीतिक वादों की तरह कवियों की आस्था टूटने लगी। परिणामतः उनमें अस्वीकार और नकार एक जीवनमूल्य की तरह कविताओं में मुखरित हुई। लोकतंत्र की विसंगति और व्यक्तिगत भ्रष्टाचार ने कई विसंगतियां पैदा की। स्वतंत्रता के सभी स्वप्न ख़ारिज होने लगे। मोहभंग और मूल्यहीनता अकविता के लिए उचित सामग्री उपलब्ध करा रहे थे। समय की गत्यात्मकता राजनीतिक पतन और व्यक्तिक पतन के साथ एकाकार हो गया। अकविता नई कविता का ही विस्तार है। जिस पर सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक दबावों को स्पष्टतः देखा जा सकता है जहाँ यथार्थ चित्रण पर अधिक बल है। यथार्थ चाहे जैसा हो। दरअसल बदलते जीवन-मूल्यों के साथ अभिव्यक्ति का ढंग भी बदल जाता है। आजादी के कुछ ही दिनों बाद परिस्थितियों से मोहभंग होने लगा था। शाश्वत एवं परंपरागत मूल्य विखंडित होने लगे थे। चारों ओर अस्थिरता, अस्त-व्यस्तता, अराजकता एवं टूटन का परिदृश्य गहरा होता जा रहा था। जिसकी अभिव्यक्ति में नयी कविता नहीं कर पा रही थी। परिणामतः सन् 60 के बाद एक ऐसा आंदोलन पैदा हुआ, जो परंपरागत मूल्यों, विचारधाराओं, व्यवस्थाओं, आस्थाओं का निषेध कर दिया या नकार दिया। अकविता ने किसी स्वप्न का सृजन नहीं किया और इसकी संवेदना में मूल्यों का अभाव है। यह विकल्पहीनता और संत्रास की कविता है। सर्वनिषेध की भावना से पीड़ित होने के कारण सभी स्थापनाओं का निषेध अकविता का मुख्य स्वर बन गया। अकविता में व्यक्त विकल्पहीनता सामाजिक दबाव और निर्मितियों की उपज है। अकविता में नेहरू युग से मोहभंग का चरम रूप दिखता है। यह युगीन संवेदना से जुड़ा हुआ है। अकविता का संबंध विश्व कविता से जुड़ता है। विश्वयुद्ध के बाद पश्चिम में पूँजीवाद से मोहभंग हुआ, जिसकी अभिव्यक्ति में विश्व कविता में दिखती है। पश्चिम में 'एंटी थिएटर', 'एंग्री यंग मैन पीढ़ी' का

दौर चला। अकविता इससे कहीं-न-कहीं जरूर प्रभावित है। विजय कुमार ने लिखा है- "सातवें दशक की युवा कविता की शुरुआत वास्तविक रूप में जगदीश चतुर्वेदी संपादित और 1963 में प्रकाशित 14 कवियों के संयुक्त संकलन 'प्रारंभ' से होती है।" संपादक जगदीश गुप्त ने 'प्रारंभ' की कविताओं को 'अभिनव काव्य' की संज्ञा दी और कहा कि "परंपरा से हटकर जिन युवा कवियों ने स्वयं को व्यक्त किया है, उनके सामूहिक आक्रोश का, उनके अभिनव काव्य का एक जगह सन्निहित होना भी मेरे विचार में आवश्यक था और निश्चय ही यह भी संकलन-प्रकाशन का एक उद्देश्य रहा हो।" इन कवियों में प्रमुख थे जगदीश चतुर्वेदी, कैलास वाजपेयी, राजकमल चौधरी, श्याम परमार, ममता अग्रवाल, राजीव सक्सेना, स्नेहमयी चौधरी आदि। 6 जुलाई, 1965 के धर्मयुग में डॉ. केदारनाथ सिंह ने लिखा, "आंगन के पार द्वार' के पुरस्कृत होने के साथ नई कविता का एक दौर पूरा हो जाता है।" इस दौर के बाद लिखी जाने वाली कविता को उन्होंने 'कविता' से अकविता' की ओर जाने वाली कविता कहा। प्रतिक्रिया में अगस्त, 1965 के धर्मयुग में अजित कुमार ने लिखा, "अकविता का अर्थ कविता की समाप्ति नहीं, बल्कि कविता के श्रेष्ठतर और गहनतर आयामों के अन्वेषण की दिशा है। वास्तव में हम अकविता से कविता की ओर बढ़ रहे हैं।" 'अकविता' पत्रिका के कुल पाँच अंक प्रकाशित हुए। छठा अधूरा ही रह गया। अकविता का एक महत्वपूर्ण संग्रह 'निषेध' सन् 1972 में प्रकाशित हुआ। इनमें 11 कवियों की कविताएँ थीं और संपादक थे जगदीश गुप्त। उन्होंने अपनी भूमिका में रेखांकित किया कि राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय घटना-चक्र के बीच पिसती मानवता, मानव-मूल्यों के विघटन, विसंगत जीवन का उल्लेख करते हुए अकविता को समाज सापेक्ष बताया। अकविता का समय सन् 1963 से लेकर अधिक-से-अधिक सन् 1972 तक माना जा सकता है।

बोध प्रश्न 1

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अकविता क्या है?

....
....
....
....
....
....
....

....

2. जगदीश गुप्त ने साठोत्तरी कविता की कितनी धाराओं का उल्लेख किया है। कुछ प्रमुख धाराओं का नामोल्लेख कीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....

3. अकविता के प्रमुख कवियों का नाम लिखिए।

....
....
....
....
....
....
....
....

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

4. इनमें से अकविता के कवि नहीं हैं।

I. श्याम परमार
II. जगदीश चतुर्वेदी
III. गंगाप्रसाद विमल
IV. कुँवर नारायण

5. अकविता का आरम्भ इस पत्रिका से माना जाता है?

I. प्रारंभ
II. धर्मयुग
III. आलोचना
IV. सारिका

6. राजकमल चौधरी की कविता है।

I. मोचीराम
II. मुक्ति प्रसंग
III. बलदेव खटिक
IV. जबर जोत

7. विजप के कवि नहीं हैं।

I. श्याम परमार
II. जगदीश चतुर्वेदी
III. गंगाप्रसाद विमल
IV. चंद्रकांत देवताले

8. साठोत्तरी कविता की कविता धारा नहीं है।

I. सनातन कविता
II. बीट कविता
III. नई कविता
IV. अकविता

सामूहिक गतिविधि

अकविता के प्रमुख कवियों की कविताओं का वाचन करें।

राजकमल चौधरी की मुक्ति-प्रसंग, धूमिल की मोचीराम, सौमित्र मोहन की लुकमान अली, लीलाधर जगूड़ी की बलदेव खटिक, चंद्रकांत देवताले की लकड़बग्घा हंस रहा है, मोना गुलाटी, श्याम परमार, जगदीश चतुर्वेदी, गंगा प्रसाद विमल इत्यादि की कविताओं को पढ़ सकते हैं।

सहयोग : विभिन्न पुस्तकालयों और कविता कोश, हिंदी समय, हिन्दवी जैसे सोशल मीडिया के वेबसाइट आपके लिए मददगार हो सकते हैं।

14.3.3 अकविता की प्रवृत्ति

अकविता की प्रमुख प्रवृत्ति को लक्षित करें तो इन प्रवृत्तियों का रेखांकन अकविता में किया जा सकता है।

1. नई कविता में मोहभंग का जैसा दार्शनिकीकरण किया उसे अकविता ने यथार्थ की नग्न सचाई से हटा दिया। अकविता ने बगैर किसी मूल्य को स्वीकार किए अपने सच को उजागर किया। जगदीश चतुर्वेदी ने लिखा, 'अकविता को किसी प्रकार के व्यामोह या अतीतोन्मुख वैभव या रागात्मकता से तीव्र घृणा है।' मोना गुलाटी की कविता में इसे देखा जा सकता है। वे लिखती हैं, "पर मुझे नहीं रहा मोह कुलबुलाते नर मादा कीटों का" यहाँ मोना गुलाटी लोगों को कीटों की तरह देखती हैं। और मोह का नहीं होना, यह असंलग्नता और संबंधहीनता प्रेम और घृणा में कोई अंतर नहीं करता। अकविता संबंधों की निःसंगता और कठोरता को अधिकता के स्तर पर ले जाती है। सतीश जमाली लिखते हैं- "मेरा बाप/ मेरी माँ को पसंद नहीं करता अब मेरी माँ अब/ बहुत बूढ़ी हो गई है।"
2. अकविता मूलतः महानगरीय बोध और मध्यवर्गीय मनःस्थिति की कविता है। इसमें ग्रामीण और लोक जीवन की स्मृति अथवा संलग्नता का घोर अभाव है। अकविता के अधिकतर कवि कस्बायी और गाँवों को छोड़ नगरों में आए हुए थे जिन पर नगरीय हो जाने का बहुत अधिक दबाव था। इसी दबाव ने उन्हें एक ऐसी असंलग्नता दी जिससे वे एकायामी होते गए। कुंठा, क्रूरता, नग्नता, विसंगति, मूल्यहीनता, मूल से कटे होने का भाव अपनी सहजता को छिपाने की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के कारण उत्पन्न होता है, जिसकी अभिव्यक्ति अकविता में दिखती है। जगदीश चतुर्वेदी की कविता है- "नगर में शोर है/ विषैला धुँआ आँखों से निकल रहा है।" दरअसल अकविता का नगर बोध भयावह, विरूप और अमानवीय ही अधिक है।
3. अकविता में सामूहिक गुस्से का प्रकटीकरण हुआ जिसे मुद्राराक्षस 'समूह का गुस्सा' के रूप में देखते हैं। अकविता में सबकुछ का निषेध किया गया और यह निषेध इतना तेज था कि अकवितावादियों का झुकाव पतनशील मूल्यों की ओर झुकता चला गया।
4. विसंगति-बोध, नकार, अर्थहीनता अकविता का मूल्य बन गया। मूल्यों का निषेध और सम्बन्धों का खोखलापन ही उन्हें सबमें दिखने लगा। यहाँ तक की जीवन की

मुलायमियत, प्रेम और सौहार्द में भी उन्हें साज़िश दिखने लगी। जगदीश चतुर्वेदी ने लिखा- "मुझे ऐसा लगा प्यार महज एक धोखा है।"

5. अकविता के व्यर्थताबोध पर अस्तित्ववाद का प्रभाव दिखता है। नई कविता का अस्तित्ववाद भारतीय ढंग का है जबकि अकविता के अस्तित्ववाद पर पाश्चात्य का रंग अधिक है। कुँवर नारायण, धर्मवीर भारती, अज्ञेय, मुक्तिबोध की कविताओं में अस्तित्ववाद का रंग भारतीय ढंग का है जबकि अकवितावादियों में बीट कविता का प्रभाव है। नेहरू युग के अंतर्विरोधों से उपजा मोहभंग और अस्तिस्त्ववववादी समस्या शिल्प में अधिक है अंतर्वस्तु में कम।
6. अकविता में मनुष्य और मनुष्यता को कमतर कर उसे अन्य मनुष्येत्तर प्राणी के रूप में प्रतीकित कर दिया गया। अक्सर जानवरों के प्रतीक के रूप में अकवितावादियों ने देखा। वे न मनुष्य के प्रति और न ही जानवरों के प्रति न्याय कर पाए। अकविता में इस तरह के प्रतीकों की भरमार है। मोना गुलाटी की कविताओं में जंगली कुत्ता, बनैला सूअर, काँखता उल्लू, टेपवर्म, बैल इत्यादि का प्रतीक भरपूर मात्र में है।
7. अकवितावादियों के व्यर्थताबोध ने क्षणवाद और आत्महत्या का समर्थन किया और एक भविष्यहीन अनवरत वर्तमान की स्थापना के।
8. अकविता में प्रतिहिंसा, विनाश और खलनायकत्व को पर्याप्त जगह मिली है।
9. अकविता का स्त्री-दृष्टिकोण भोगपरक, असामान्य, शोषणवादी और पूंजीवाद के असर से उपभोक्तावादी है।
10. अकविता की सबसे बड़ी उपलब्धि अंतर्विरोधों एवं भीतरी तहों की नग्न, कुरूप और यथास्थितिवादी व्यंग्यपूर्ण चित्रण की है। जिसे बाद की समकालीन कविता ने संयतपूर्ण और वैचारिक तार्किकता के रूप में ग्रहण किया। समकालीन कविता ने अकविता के प्रतीकवाद से मुक्ति तो पाई लेकिन व्यंग्य एवं सचाई के कहन को अपने लिए पाथेय बनाया। साथ ही अकविता का व्यक्तिवाद बाद की कविता में भी फलित होता रहा।

बोध प्रश्न

9. अकविता की विभिन्न प्रवृत्तियों की चर्चा कीजिए।

....

....

....
....
....
....
....
....
....

10. अकविता की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को रेखांकित कीजिए।

....
....
....
....
....
....
....
....
....

14.4 सारांश

छठवें दशक में नई कविता के बाद आस्था-अनास्था का द्वंद्व, व्यक्ति स्वतंत्रता, उत्तरदायित्व इत्यादि मूल्यों का तेजी से विगलन हुआ और व्यक्ति और समाज की दूरी बढ़ती गई। अहं के विसर्जन के जगह पर कवि ही अहं में विसर्जित होने लगे। राजनीतिक वादों की तरह कवियों की आस्था टूटने लगी। परिणामतः उनमें अस्वीकार और नकार एक जीवनमूल्य की तरह कविताओं में मुखरित हुई। लोकतंत्र की विसंगति और व्यक्तिगत भ्रष्टाचार ने कई विसंगतियां पैदा की। स्वतंत्रता के सभी स्वप्न ख़ारिज होने लगे। मोहभंग और मूल्यहीनता अकविता के लिए उचित सामग्री उपलब्ध करा रहे थे। समय की गत्यात्मकता राजनीतिक पतन और व्यक्तिक पतन के साथ एकाकार हो गया। अकविता नई कविता का ही विस्तार है। जिस पर सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक दबावों को स्पष्टतः देखा जा सकता है जहाँ यथार्थ चित्रण पर अधिक बल है। यथार्थ चाहे जैसा हो। दरअसल बदलते जीवन-मूल्यों के साथ अभिव्यक्ति का ढंग भी बदल जाता है। आजादी के कुछ ही दिनों बाद परिस्थितियों से मोहभंग होने लगा था। शाश्वत एवं परंपरागत मूल्य विखंडित होने लगे थे। चारों ओर अस्थिरता, अस्त-व्यस्तता, अराजकता एवं टूटन का परिदृश्य गहरा होता जा रहा था। जिसकी अभिव्यक्ति में नयी कविता नहीं कर पा रही थी। परिणामतः सन् 60 के बाद

एक ऐसा आंदोलन पैदा हुआ, जो परंपरागत मूल्यों, विचारधाराओं, व्यवस्थाओं, आस्थाओं का निषेध कर दिया या नकार दिया। अकविता ने किसी स्वप्न का सृजन नहीं किया और इसकी संवेदना में मूल्यों का अभाव है। यह विकल्पहीनता और संत्रास की कविता है। सर्वनिषेध की भावना से पीड़ित होने के कारण सभी स्थापनाओं का निषेध अकविता का मुख्य स्वर बन गया। अकविता में व्यक्त विकल्पहीनता सामाजिक दबाव और निर्मितियों की उपज है। अकविता में नेहरू युग से मोहभंग का चरम रूप दिखता है। यह युगीन संवेदना से जुड़ा हुआ है। अकविता का संबंध विश्व कविता से जुड़ता है। विश्वयुद्ध के बाद पश्चिम में पूँजीवाद से मोहभंग हुआ, जिसकी अभिव्यक्ति में विश्व कविता में दिखती है।

14.5 शब्दावली

मोहभंग : देखें गए स्वप्न के पूरा नहीं होने से पैदा हुआ टूटन

विकल्पहीनता : विकल्प की कमी

विगलन : धीरे धीरे समाप्त हो जाना

अतीतोन्मुख : भूतकाल के प्रति आग्रही होना

अभिरुचि : पसंद

14.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अध्याय देखें।
2. अध्याय देखें।
3. अध्याय देखें।
4. कुँवर नारायण
5. प्रारंभ
6. मुक्ति प्रसंग
7. चंद्रकांत देवताले
8. नई कविता
9. अध्याय देखें।
10. अध्याय देखें।

14.7 सन्दर्भ सूची

1. समकालीन कविता की भूमिका', डॉ. विश्वंभर नाथ उपाध्याय, दि मैकमिलन कम्पनी ऑफ़ इण्डिया लिमिटेड, नई दिल्ली
2. 'समकालीन कविता पर एक बहस', जगदीश नारायण श्रीवास्तव, चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहबाद
3. 'नई कविता : स्वरूप और समस्याएँ', डॉ. जगदीश गुप्त, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
4. 'समकालीन हिंदी कविता', डॉ. अशोक त्रिपाठी,शारदा सदन, इलाहाबाद

14.7 उपयोगी पुस्तकें

1. अकविता और कला संदर्भ : जगदीश चतुर्वेदी
2. विजप : संपादक- जगदीश चतुर्वेदी
3. सोच को दृष्टि दो – मोना गुलाटी
4. महाभिनिष्क्रमण – मोना गुलाटी
5. तस्वीर में दिखता आधा आदमी – सौमित्र मोहन
6. प्रतिनिधि कविताएँ – राजकमल चौधरी
7. प्रतिनिधि कविताएँ – सुदामा पांडे धूमिल
8. प्रतिनिधि कविताएँ – चंद्रकांत देवताले
9. प्रतिनिधि कविताएँ – लीलाधर जगूड़ी
10. प्रतिनिधि कविताएँ – अशोक वाजपेयी

14.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. अकविता के संदर्भ एवं प्रकृति को समझाते हुए अक्विता की प्रमुख प्रवृत्तियों को रेखांकित कीजिए।
2. साठोत्तरी हिन्दी कविता में अकविता के महत्व को बताते हुए समकालीन कविताओं के विकास में अकविता के योगदान पर चर्चा कीजिए।

इकाई 15:समकालीन कविता सन्दर्भ एवं प्रकृति

इकाई की रूपरेखा

15.0 प्रस्तावना

15 .1 उद्देश्य

15.2 समकालीन कविता की पृष्ठभूमि

15.2.1 नयी कविता और समकालीन कविता

15.2.2 समकालीन परिस्थितियाँ

15.2.3 समकालीन कविता की प्रमुख धाराएँ

15.3 समकालीन कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

15.3.1 साठोत्तरी कविता

15.3.2 प्रगतिशील-जनवादी कविता

15.3.3 नवगीत परंपरा

15.4 समकालीन कविता की प्रमुख शिल्पगत विशेषताएँ

15.4.1 काव्य-भाषा

15.4.2 शिल्प-पक्ष

15.4.3 प्रतीक और बिंब

15.5 समकालीन कविता के प्रमुख कवि

15.6. सारांश

15.7 उपयोगी पुस्तकें

15.8 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

15.0 प्रस्तावना

छायावाद से नयी कविता तक हिंदी कविता में जीवन दृष्टि, विषय वस्तु, काव्य-रूप और काव्य-भाषा सभी दृष्टियों से महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है। छायावाद से प्रगतिवाद तक की काव्य-यात्रा की प्रमुख प्रेरणा राष्ट्रीय आंदोलन था। जबकि प्रयोगवाद और नयी कविता का जन्म इनसे भिन्न स्थितियों के बीच हुआ। प्रयोगवाद प्रगतिवाद की प्रतिक्रियास्वरूप जन्मा था। उसने काव्य में प्रयोग पर अधिक बल दिया। प्रयोगवाद के दौरान कविता समाज सापेक्ष होने की बजाए व्यक्ति-उन्मुख हुई । नयी कविता ने व्यक्ति की स्वतंत्रता और अनुभवपरकता पर बल दिया परन्तु इस काव्यधारा में प्रगतिशील और समाजोन्मुख काव्य प्रवृत्ति भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती थी । नयी कविता की उपर्युक्त दोनों धाराओं-व्यक्तिवादी-आनिकतावादी तथा प्रगतिशील का विकास हम समकालीन कविता में देख सकते हैं। हिंदी में समकालीन कविता जैसी कोई काव्य-प्रवृत्ति नहीं है। नयी कविता के बाद के दौर में उभरे विभिन्न काव्यांदोलनों, काव्यधाराओं और काव्य प्रवृत्तियों को ही यहाँ सुविधा के लिए समकालीन कविता कहा गया है। नयी कविता का काल प्रायः सन् 19,59-60 तक माना जाता है। इस प्रकार इस इकाई में पिछले तीन दशकों की हिंदी कविता की विकास यात्रा का परिचय दिया जाएगा। नयी कविता के बाद उभरी काव्य प्रवृत्तियों का नयी कविता से क्या संबंध था ? वे कौन-सी परिस्थितियाँ थीं जिन्होंने इन प्रवृत्तियों को जन्म दिया ? इन काव्य-प्रवृत्तियों की क्या विशेषताएँ हैं तथा इस दौर के प्रमुख कवि कौन-कौन से हैं? आदि विभिन्न पक्षों का उल्लेख इकाई में किया गया है। इकाई को पढ़ने से आपके सम्मुख समकालीन कविता की पूरी तस्वीर उभर आएगी ।

15.1 उद्देश्य

इसमें नयी कविता के बाद की प्रमुख काव्य प्रवृत्तियों पर विचार किया गया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः हिंदी की समकालीन कविता की पृष्ठभूमि बता सकेंगे; समकालीन कविता की प्रमुख काव्य प्रवृत्तियों का परिचय दे सकेंगे; समकालीन कविता की प्रमुख शिल्पगत विशेषताएँ समझा सकेंगे; और समकालीन कविता से जुड़े प्रमुख कवियों और उनकी प्रमुख रचनाओं के बारे में बता सकेंगे

समकालीन कविता की पृष्ठभूमि 15.2

नयी कविता के बाद के दौर की कविता को क्या नाम दिया जाए, यह विवाद का विषय रहा है। सन् 1960 के बाद के दौर में नयी कविता की व्यक्तिवादी-आधुनिकतावादी काव्यधारा ही और अधिक तीव्रता के साथ विकसित हुई । यद्यपि इस दौर में उभरे कवियों ने अपने की पूर्व की

काव्यधाराओं से अलगाया था। लेकिन साठ के बाद के पहले दशक की कविता जिसे साठोत्तरी कविता नाम भी दिया गया है, अपने को कई नामों और आंदोलनों से व्यक्त करती है। अकविता, विद्रोही कविता, बीट कविता, सनातन सूर्योदयी कविता, युयुत्सावादी कविता, नूतन कविता, सहज कविता, विचार कविता आदि विभिन्न नामों के साथ सातवें दशक में युवा कवि नये तेवर और नयी भंगिमा के साथ उभर रहे थे परन्तु इनमें से एक भी नाम और आंदोलन हिंदी काव्य परंपरा में स्थायी महत्व प्राप्त नहीं कर सका। ये सभी काव्यांदोलन क्षणजीवी प्रमाणित हुए। परन्तु महत्व इस बात का नहीं है। अलग-अलग नामों और घोषणाओं के साथ जो नये काव्यांदोलन उभर रहे थे, वे सारी भिन्नताओं के दावों के बावजूद एक सी काव्य दृष्टि और विचार दृष्टि का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। सर्वस्वीकृत प्रवृत्तिगत नाम के अभाव में हम भी सातवें दशक की इस युवा कविता को साठोत्तरी कविता कहेंगे। सन् 1967-68 में भारतीय परिस्थितियों में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए जिनकी चर्चा हम आगे करेंगे, उनका प्रभाव हिंदी कविता पर भी पड़ा और साठोत्तरी कविता की व्यक्तिवादिता, निषेधना, पराजय-भाववाद आदि से कवि धीरे-धीरे मुक्त होने लगा और उसके बदले एक नयी आशा और उत्साह का उदय हुआ। हिंदी कविता का यह दौर अत्यंत महत्वपूर्ण है यद्यपि '75 के बाद इस कविता के तेवर में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन आए । समकालीन कविता के इस विकास क्रम की पृष्ठभूमि पर आइए, विस्तार से चर्चा करें।

नयी कविता और समकालीन कविता 15.2.1

विश्व बाजार की होड़ और युद्धों की जघन्यता के बीच व्यक्ति को यह लगने लगा कि सत्य केवल मृत्यु है, शेष सब कुछ मिथ्या है। आस्था, आदर्श, मूल्य, प्रगति, भविष्य सभी कुछ मिथ्या है। इस सोच ने लोगों को स्वार्थ-प्रेरित और आत्म केन्द्रित बनाया । इस दौर में व्यक्ति-स्वातंत्र्य का नारा भी लगाया गया। इसके पीछे मार्क्सवाद विरोध की भावना भी थी। सोवियत संघ तथा अन्य समाजवादी देशों के बारे में यह धारणा प्रचलित थी कि इन देशों में व्यक्ति को किसी प्रकार की स्वतंत्रता उपलब्ध नहीं है। इसलिए मार्क्सवाद विरोध व्यक्ति स्वातंत्र्य के नारे में बदल गया। लेकिन व्यक्ति की स्वतंत्रता की यह माँग मध्यवर्ग के व्यक्ति की ही माँग थी, जो शेष जनता को "भीड़" के रूप में देखता था और अपने को उससे घिरा पाता था। समाजवाद विरोध ने इस मध्यवर्गीय व्यक्ति को विचारधारा से भी मुक्त कर दिया और कवि केवल निजी विवेक को ही अंतिम सत्य बताने लगा। नये कवि का मानना था कि व्यक्ति का विवेक ही उसे सही दिशा दे सकता है न कि कोई बाहरी सत्य । नयी कविता में औद्योगिक सभ्यता की भी तीव्र आलोचना थी। बढ़ते औद्योगीकरण और मशीनीकरण ने मनुष्य को भावात्मक स्तर पर अकेला और असहाय बनाया, स्वार्थी और लोभी भी। भारत में भी स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हुए विकास ने मध्यवर्ग के संवेदनशील मन पर गहरा असर डाला। किसी समाजोन्मुख चिंतन के अभाव में इस दौर का कवि अपने आसपास की सारी समस्याओं का कारण औद्योगिक विकास को ही मानने लगा। नयी कविता में मनुष्य की निजी

अनुभूतियों की अभिव्यक्ति पर अधिक बल दिया गया है। इस प्रकार नयी कविता की व्यक्तिवादी-आधुनिकतावादी धारा ने जो रास्ता अपनाया उसी का विकास (या पतन) हम साठोत्तरी कविता में देख सकते हैं।

साठोत्तरी कविता में यह व्यक्तिवाद और प्रबल हुआ। निजी विवेक में भी कहीं-न-कहीं चिंतन और सोच की संभावना निहित थी, जबकि साठोत्तरी कविता ने "विवेक से विदाई" का नारा दिया। इस दौर के कवियों के लिए भी जनता भीड़ ही रही वरन् इस "भीड़" के प्रति उसकी घृणा और नफरत और अधिक तीव्र रूप में व्यक्त हुई। साठोत्तरी कविता में भोगवाद यौन-जुगुप्सा में बदल गया। नारी मात्र देह रह गयी। कवियों में पराजय और निषेध की भावना ही प्रबल थी। आस्था, आशा और आदर्श जैसे शब्द कविता से लुप्त हो गये थे। व्यक्तिवाद के प्रबल आग्रह ने कवियों को छोटे-छोटे गुटों में बदल दिया। नित नये आंदोलन बनने और टूटने लगे। कविता के क्षेत्र में संपूर्ण अराजकता की स्थिति व्याप्त हो गई। यह अराजकता कविता की भाषा, रूप और शिल्प में भी व्यक्त होने लगी। कविता कवि की मानसिक प्रतिक्रियाओं की वाहक मात्र रह गयी। प्रयोग के नाम पर कविता और भाषा दोनों से खिलवाड़ किया जाने लगा। ऐसे काव्य-बिंबों और प्रतीकों का प्रयोग होने लगा जो केवल जुगुप्सा उत्पन्न करते थे। इन युवा कवियों ने विद्रोही तेवर के साथ अपनी कविता को "एंटी-पोइट्री" या अकविता नाम दिया। नयी कविता की व्यक्तिवादी आधुनिकतावादी धारा की इस परिणति के कारण तत्कालीन परिस्थितियों में निहित थे।

समकालीन परिस्थितियाँ 15.2.2

सन् 1947 में भारतीय राजसत्ता की स्थापना जिस आशा, उत्साह और उमंग के साथ हुई थी, वह जल्दी ही धूल-धुसरित होने लगी। बढ़ती बेरोजगारी, भूखमरी, सूखा, बाढ़ आदि ने आम लोगों के जीवन के कष्टों को बढ़ाया ही, कम नहीं किया। इसका असर छोटे नगरों और कस्बों में रहने वाले युवाओं पर भी पड़ा। प्रगति और विकास का जब कोई फल दिखाई नहीं दिया तो उनका विचलित होना स्वाभाविक था। एक तरह की मोहभंग की स्थिति इसे कहा जा सकता है। इन परिस्थितियों को बदलने वाली शक्तियाँ भी निस्तेज थीं। देश में वामपंथी और प्रगतिशील आंदोलन अपने अंतर्विरोधों के कारण बिखर गया था। ऐसे में युवा मन जल्दी ही निराशा, पराजय और नकारवाद की गिरफ्त में आ गया। कस्बों और छोटे नगरों में रहने वाले युवा कवि जब महानगरों में आकर रहने लगे तो उन्हें एक नये आश्चर्यलोक के दर्शन हुए। महानगर में फैली संपन्नता, विलासिता और चमक-दमक ने उसे चकाचौंध कर दिया। अपने कस्बे के गतिहीन जीवन और महानगर की इस रफ्तार भरी जिंदगी को वह सहज ही जज्ब नहीं कर पाया। इस अंतर्विरोध को समझने की बजाय उसे यहाँ और वहाँ दोनों ही जीवन निरर्थक लगने लगे। एक इसलिए कि वह उसकी मध्यवर्गीय पहुँच से परे था और दूसरा इसलिए कि वह उसकी आकांक्षाओं से अत्यंत अल्प था। ऐसे में सब कुछ को नकारने के विद्रोही तेवर अपनाते हुए हर चीज़ को और अपने-

आपको भी निरर्थक मानने और बताने लगा। विचार, प्रेम, आस्था, संघर्ष आदि शब्द उसे गाली की तरह लगते थे।

सातवें दशक की यह मानसिकता उस दौर के मध्यवर्ग की मनःस्थिति को व्यक्त करती है। लेकिन यह कोई स्थायी चीज नहीं थी। 1962 में चीन के साथ संघर्ष और 1965 में पाकिस्तान के साथ लडाई ने स्थितियों को और बदतर बनाया। शासक पार्टी कांग्रेस की लोकप्रियता कम होने लगी। जनता का असंतोष विभिन्न जन आंदोलनों के माध्यम से व्यक्त होने लगा। 1967 के चुनावों में लोकसभा में कांग्रेस को मामूली सा बहुमत प्राप्त हुआ और कई राज्यों में विरोधी दलों की संयुक्त सरकारें बनीं। पश्चिम बंगाल और केरल में वामपंथी सरकारें स्थापित हुई। देश के कुछ हिस्सों में नक्सलवादी आंदोलन के रूप में सशस्त्र विद्रोह भी हुए। बहरहाल, सातवें दशक की समाप्ति तक सारे देश में जगह-जगह जनता का असंतोष और परिवर्तन की आकांक्षा जनांदोलनों के रूप में व्यक्त हो रही थीं। इसका असर युवा कवियों पर पड़ने लगा था। जनांदोलनों में उन्हें नयी आशा और नये भविष्य के सपने उगते नजर आने लगे। उनकी कविता को एक नया प्रेरणा संसार मिला। वे पराजय और नकारवाद के चंगुल से मुक्त होकर जनता की अपराजेय शक्ति के गीत गाने लगे। ऐसे समय इन कवियों को काव्य परंपरा के रूप में प्रगतिवाद का स्मरण आना स्वाभाविक था। आश्चर्य यह था कि नागार्जुन, त्रिलोचनशास्त्री, केदारनाथ अग्रवाल, मुक्तिबोध, शमशेर आदि प्रगतिवादी कवि ही नहीं रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह जैसे नये कवि भी इस निराशा और हताशा के दौर में भी जीवन की आस्था और संघर्ष की कविता लिख रहे थे। लेकिन व्यक्तिवादी पराजयवादी स्वर इतना प्रबल था कि उसके शोर में ये कविताएँ हाशिए पर चली गई। लेकिन बदली परिस्थितियों ने एक बार फिर इस प्रगतिशील-जनवादी धारा को काव्य परंपरा के केन्द्र में स्थापित किया।

1975 तक क्रांति और परिवर्तन का स्वर मुखर से मुखरतर होता गया। कवियों को लग रहा था कि बस क्रांति तो उनके दरवाजे पर दस्तक दे रही है लेकिन तभी देश में आपातकाल की घोषणा हो गई। राजनीतिक गतिविधियाँ ठप्प पड़ गई, जनांदोलन लुप्त हो गये. चारों ओर सन्नाटा और आतंक का साम्राज्य छा गया। कवियों के लिए यह अकल्पनीय स्थिति थी। लेकिन इस बार वह निषेधवाद और पराजय-भावना से ग्रस्त होने से बचा रहा। क्रांति का स्वर तो लुप्त हो गया परन्तु जनता में आस्था और परिवर्तन की आकांक्षा बरकरार रही। 1977 में हुए. घटनाचक्र ने एक बार फिर उसे उत्साहित किया, परन्तु इसके बाद के लगभग डेढ़ दशक में राजनीतिक परिस्थितियों में परिवर्तन तो होते रहे परन्तु जनता की बदहाली में कोई परिवर्तन नहीं आया बल्कि बढ़ती सांप्रदायिकता, जातिवाद और क्षेत्रीयतावाद ने राष्ट्रीय एकता और अखंडता के सामने ही गंभीर चुनौती खड़ी कर दी। आज हिंदी कविता इन स्थितियों के प्रति अधिक सजग है, उसका चिंतन अधिक प्रौढ़ और उसकी अभिव्यक्ति अधिकं संतुलित और सकारात्मक है। आगे हम हिंदी कविता के इसी विकास-क्रम का परिचय प्राप्त करेंगे।

समकालीन कविता की प्रमुख धाराएँ 15.2.3

साठोत्तरी कविताः नयी कविता ने काव्य रचना के जो मुहावरे और सरोकार अपनाये थे, वह सन् 60 तक आते-आते रूढ़ होने लगे। अधिकांश कवि एक सा कथ्य, एक सी भाषा, बिंब, प्रतीक, शैली आदि दोहराने लगे। जाहिर है, इस स्थिति को तोड़ना आवश्यक हो गया। 1960 के आसपास उभरे युवा कवियों ने नयी कविता की रूढ़िबद्धता से भिन्न मार्ग खोजने की कोशिश की। सातवें दशक में सामने आये कवियों ने लघु पत्रिकाओं के माध्यम से अपने को व्यक्त करना शुरू किया। हर लघु पत्रिका के साथ एक नया काव्यांदोलन जन्म ले रहा था। नये काव्यांदोलन के घोषणा पत्र तैयार हो रहे थे। अकविता, सनातन सूर्योदयी कविता, युयुत्सावादी कविता, विद्रोही कविता, नूतन कविता, बीट कविता, नंगी कविता, ठोस कविता, सहज कविता, विचार कविता आदि लगभग पचास कविता आंदोलनों की चर्चा डॉ. जगदीश गुप्त ने अपने लेख "किसिम किसिम की कविता" में की है। 1963 में जगदीश चतुर्वेदी ने "प्रारंभ" का संपादन किया था जिसमें पहली बार ऐसी कविताएँ संग्रहीत हुई श्रीं जो नयी कविता से भिन्न एक नयी प्रवृत्ति की सूचक थी। जगदीश चतुर्वेदी के ही संपादन में 'अकविता' पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ। इसके प्रवेशांक में लिखा गया था- "आज का कवि परंपरागत रूढ़ियों और संस्कारों के प्रति विक्षुब्ध है और उसका काव्यात्मक संवेदन भी उसी अनुपात में परंपरा से मुक्त भी और निस्संग भी.। परिवर्तित सौन्दर्यबोध के कारण आज का कवि पिछली परंपराओं को नकार कर अपना संपूर्णतया पृथक् मार्ग भी खोजने में रत है। आधुनिक मनोवृत्ति की इसी अनिवार्यता को हम "अकविता" के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास कर रहे हैं।" (डॉ. हरदयाल की पुस्तक "हिंदी कविता की प्रकृति" से उद्धृत पृ. 137) इस कथन से स्पष्ट है कि साठोत्तरी दौर के कवि भी अपने को अपने से पूर्व की काव्यधारा से भिन्न मानते थे और एक नये मार्ग की खोज पर बल दे रहे थे। परन्तु क्या ये भिन्न-भिन्तं काव्यांदोलन एक सी जीवन दृष्टि और काव्य मूल्य से प्रेरित नहीं थे ? स्वयं जगदीश चतुर्वेदी ने लिखा है, "नई कविता से इतर जिस काव्य-संवेदना का प्रारंभ इस दशक की कविता में हुआ, वह युगांतकारी और समय सापेक्ष है इस दशक में अस्वीकृति के विभिन्न स्वर कई काव्यांदोलनों के नाम से मुखरित हुए और उन निषेधात्मक काव्याभिव्यक्तियों ने पिछले कई दशकों से चली आ रही काव्य-संवेदना में आमूल परिवर्तन किया।"

"काव्य संवेदना में आमूल परिवर्तन" की जो बात जगदीश चतुर्वेदी ने कही है, वह किस हद तक साठोत्तरी कविता पर लागू होती है यह विवाद का विषय है, परन्तु महत्वपूर्ण है उस दौर में उपजे क्षणजीवी काव्यांदोलनों की एकता की पहचान। निश्चय ही साठोत्तरी कविता की केन्द्रीय विशेषता "निषेधात्मकता" को माना जा सकता है। इसलिए हम यहाँ अकविता, ठोसे कविता, बीट कविता आदि "किसिम किसिम" नामों से प्रचलित इस साठोत्तरी कविता को एक ही काव्य-प्रवृत्ति की

भिन्न-भिन्न अभिव्यक्तियां मानकर विचार करेंगे। इस काव्य प्रवृत्ति की विशेषताओं की चर्चा हम आगे के भागों में करेंगे।

प्रगतिशील-जनवादी कविताः 1967 के बाद बदली परिस्थितियों का प्रभाव कवियों पर भी पड़ रहा था। जहाँ एक ओर पुराने प्रगतिशील कवि नयी ऊर्जा और तेजस्विता के साथ सामने आ रहे थे, वहीं रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर आदि नये कवि अधिक जनोन्मुखी और सकारात्मक रचनाधर्मिता का परिचय दे रहे थे। धूमिल, लीलाधर जगूड़ी, राजकमले चौधरी जैसे साठोत्तरी दौर के कवियों पर भी इस नये प्रगतिशील जनवादी उभार का असर दिखाई दे रहा था। आठवें दशक में सामने आने वाले अधिकांश कवि तो इस उभार से प्रभावित और प्रेरित थे ही। यह नयी प्रगतिशील जनवादी कविता चौथे पांचवें दशक के प्रगतिवाद का अनुकरण मात्र नहीं था। यह काव्यधारा भी अपनी प्रेरणा जन आंदोलनों से ले रही थी परन्तु जीवन-यथार्थ, काव्य रूप, शैली आदि की दृष्टि से यह नितांत भिन्न काव्यधारा थी। इसकी विशिष्टताओं की चर्चा हम आगे करेंगे।

नवगीत परंपराः छायावाद से प्रगतिवाद तक कविता लिखने के साथ-साथ गीत लिखने की परंपरा भी अबाध रूप से चलती रही। परन्तु प्रयोगवाद और नयी कविता में गैर रूमानियत पर इतना अधिक बल दिया गया कि गीत लेखन की परंपरा लगभग अवरूद्ध हो गयी । छठे दशक के अंत तक आते-आते कुछ गीतकारों ने "नयी कविता" की तरह "नवगीत" का नारा दिया। नवगीत की यह परंपरा छायावाद की रूमानी धारा से भिन्न थी। परन्तु इसने हिंदी काव्य परंपरा को अधिक प्रभावित नहीं किया। यह अवश्य है कि नवगीत की यह परंपरा बाद के दशकों में भी चलती रही और कविता के क्षेत्रों में होने वाले परिवर्तनों का असर. भी नवगीत परंपरा पर पड़ा और आठवें दशक में जनवादी गीत की भी सुदृढ़ धारा दिखाई देने लगी। नवगीत की इस परंपरा पर लोकगीतों का असर था । नवगीत की विशेषताओं की चर्चा भी हम आगे करेंगे । इस प्रकार, समकालीन कविता को हम उपर्युक्त तीन काव्यधाराओं में अभिव्यक्त होता पाते' हैं।

बोध प्रश्न

1) नयी कविता की किस धारा का विकास हुआ ?

----

2) समकालीन कविता तीन काव्यधाराओं को तीन-चार पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

----

3) 1967 के बाद भारतीय परिस्थितियों में क्या परिवर्तन हुए ? तीन-चार पंक्तियों में बताइए ?

अभ्यास

1) नयी कविता और साठोत्तरी कविता की संक्षिप्त तुलना कीजिए। उत्तर पाँच पंक्तियों में लिखिए।.

समकालीन कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ 15.3

समकालीन कविता के तीन दशकों में हिंदी कविता का एक स्वरूप नहीं रहा, यह हम कह चुके हैं। लेकिन जहाँ से हमारे अध्ययन की शुरुआत होती है, वहाँ समकालीन कविता पर मुख्य रूप से नयी कविता की आधुनिकतावादी-व्यक्तिवादी काव्यधारा का ही असर था। इस धारा को कई नाम दिये गये। अकविता या "ऐंटी पोइट्री" इनमें प्रमुख था। अकविता अर्थात् ऐसी कविता जो परंपरागत कविता की एंटी या विरोधी है या परंपरागत अर्थ में कविता नहीं है। विरोधी होकर

भी यह कविता भी अंततः कविता ही थी। फिर अकविता भी नाम सबको स्वीकार्य नहीं था और किसी ने इसे ठोस कविता, किसी ने विद्रोही कविता और किसी ने विचार कविता आदि नाम दिया। नाम की इस अराजक स्थिति से इस दौर की कविता को साठोत्तरी कविता कहना ज्यादा समीचीन है।

15.3.1 साठोत्तरी कविता

साठोत्तरी दौर की कविता परंपरा से असंपृक्त नहीं थी। "अकविता" पत्रिका के प्रवेशांक में कहा गया था- "आज का कवि परंपरागत रूढ़ियों और संस्कारों के प्रति विक्षुब्ध है और उसका काव्यात्मक संवेदन भी उसी अनुपात में परंपरा से मुक्त भी है और निस्संग भी । परिवर्तित सौन्दर्यबोध के कारण आज का कवि पिछली परंपराओं को नकार कर अपना संपूर्णतया पृथक् मार्ग भी खोजने में रत है। आंधुनिक मनोवृत्ति की इसी अनिवार्यता को हम "अकविता" के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास कर रहे हैं। नये कवि ने जिस बृहत्तर परिवेश में नवीन काव्य-रचना के विविध प्रयोग किये हैं, उनका दिग्दर्शन कराना ही हमारा अभीष्ट है।" (डॉ. हरदयाल की पूर्वोक्त पुस्तक से उद्धृत पृ. 137)उपर्युक्त कथन पर विचार करें तो हम देख सकते हैं कि अकविता के कवि भी लगभग वे ही बातें कह रहे थे जो उससे पूर्व प्रयोगवाद और नयी कविता के व्यक्तिवादी कवि कह रहे थे। साठोत्तरी कविता की प्रवृत्तिगत विशेषताओं से स्पष्ट हो जाएगा कि वह कविता किस अर्थ में अपनी पूर्ववर्ती कविताओं से भिन्न है।

विचारों से विदाईः विचारधारा और राजनीति का विरोध नयी कविता की भी विशेषता रही है। 'अकवियों ने भी राजनीतिक विचारों से प्रेरित कविता का विरोध किया।' प्रारंभ (1963) की भूमिका में जगदीश चतुर्वेदी कहते हैं- "राजनीतिक विचारों पर काव्य रचने का जमाना लद चुका, समाज का द्रष्टा कवि आज मानवीय चेतना के बौद्धिक स्तरों को प्रतिभासित कर रहा है। यह कहने में मुझे कोई अड़चन नहीं कि किसी भी कुंठित या ग्रस्त राजनीतिक विचारधारा में हमारा विश्वास नहीं है। व्यक्ति सत्ता तथा अनुभूत सत्य ही हमारे काव्य का, और दूसरे शब्दों में हमारे जीवन का धार्मिक दर्शन हैं। हमारे सामाजिक आदर्श हमारी अपनी बौद्धिक चेतना से ही अनुप्राणित हैं।" (पूर्वोक्त, पृ. 138) जगदीश चतुर्वेदी के इस कथन में भी विचारधारा का निषेध और स्वविवेक पर बल दिया गया है परन्तु कविता के स्तर पर तो विचार का भी निषेध ही है। इन कवियों ने लोकतंत्र, देशप्रेम, क्रांति, परिवर्तन, प्यार आदि हर उस विचार और भावना का मजाक उड़ाया जो मनुष्य के मनुष्य होने का एहसास कराती है।

कुछ लोग मूर्तियां बनाकर/फिर
बेचेंगे क्रांति की (अथवा षड्यंत्र की)
कुछ और लोग/सारा समय
कसमें खायेंगे/लोकतंत्र की
(श्रीकांत वर्मा, माया दर्पण)

देश एक लंगड़ाता वृद्ध मरीज........ दिया हुआ महामंत्र। देश प्रेम एक अय्यासी का
दिया हुआ महामंत्र दुखती है कोई कनपटी की नस
और बाजुओं में रक्तपात की इच्छा पनपने लगती है। देश-प्रेम एक अय्याशी का
(जगदीश चतुर्वेदी, निषेध)
मुझे तानाशाही से लगाव है, जनतंत्र के रिरियाते गीदड़ से नहीं।
(जगदीश चतुर्वेदी, इतिहासहंता)
उपर्युक्त काव्यांशों को पढ़ने से साफ हो जाएगा कि इस दौर के कवि के लिए लोकतंत्र, राजनीतिक परिवर्तन, देश-प्रेम आदि का कोई मतलब नहीं था, वह इन पर सोचने से भी उकता चुका थाः

पर जब सभी
कुछ ऊल ही जलूल है
सोचना फिजूल है......

मध्यवर्ग के कवि के इस सोच का कारण क्या था ? लगता है भारत की राजनीतिक-सामाजिक स्थिति में आए ठहराव ने उसे हताश और निराश बना दिया था। लेकिन यह हताशा कुछ-कुछ ओढ़ी हुई-सी भी लगती है क्योंकि इसमें एक तरह की शहीदाना मुद्रा है। यहाँ विपरीत स्थितियों को स्वीकार करने की मुद्रा है, नं कि उससे संघर्ष कर बदलने की। परन्तु इस स्वीकार को पाखंड की तरह शहीदाना अंदाज में लिया गया है। कैलाश वाजपेयी की ही एक कविता "परास्त बुद्धिजीवी का वक्तव्य" इन कवियों की मानसिकता का सही प्रतिनिधित्व करती है।
न हमारी आंखे हैं आत्मरत
न हमारे होठों पर शोकगीत
जितना कुछ ऊब सके ऊब लिए
हमें अब किसी भी व्यवस्था में डाल दो
(जी जायेंगे)

शहादत और विद्रोह की इस मुद्रा में वस्तुतः पराजय-भावना ही अंतर्निहित है।

व्यर्थताबोधः राजनीति' और व्यवस्था से यह विचारहीन विद्रोह जो पराजय-भावना के कारण कवियों को धीरे-धीरे व्यर्थताबोध की ओर ले गया है। इन कवियों का यथार्थ के प्रति रवैया सिनिकल, आत्मग्रस्त और निजी फ्रस्ट्रेशन का रूप लिये हुए है। यथार्थ के प्रति इसी रवैये ने इन कवियों की चेतना को और अकेला और असहाय बनाया है जिसे न तोड़ पाने की विवशता के कारण वे उसे अपनी नियति मान लेते हैं। यही कारण है कि इन कवियों की प्रतिक्रियाओं में उनका विषादग्रस्त "मैं" हर क्षण मौजूद रहता है और कई बार तो यह "मैं" ही विलाप करता रहता है और विलाप के वस्तुगत कारण लुप्त हो जाते हैं।

मैं हँसता हूँ, गाता हूँ
रोता हूँ, चीखता हूँ
प्यार करता हूँ गालियाँ देता हूँ
लेकिन हर स्थिति में
वैसा का वैसा ही रह जाता हूँ
जैसे मैं मुर्दों के बीच हूँ।
(सर्वेश्वर दयाल सक्सेना)

नयी कविता में विरोध का स्वर व्यंग्य के रूप में था, लेकिन साठोत्तरी कविता में व्यंग्य का स्थान ऊब ने ले लिया। इसके मूल में समाजगत वास्तविकता से कवियों का मानसिक अलगाव है।

चारों तरफ शोर है
चारों तरफ भरापूरा है
चारों तरफ मुर्दनी है
भीड़ और कूड़ा है
हर सुविधा एक ठप्पेदार अजनबी उगाती है
हर व्यस्तता और अधिक अकेला कर जाती है

(गिरिजा कुमार माथुर) -

भीड़ के बीच घिरा अकेलापनः नयी कविता के कवियों की तरह इस दौर का कवि भी जनता को भीड़ के रूप में देखता है। कवि इसके मूल में महानगरीय चेतना को मानते हैं।

जगदीश चतुर्वेदी लिखते हैं "हममें से अधिकांश कवि महानगरों या नगरों में रह रहे हैं। नगरों का जीवन यांत्रिक हो गया है। व्यस्तता में लीन एक अजीब-सी उमस और अजनबियत तथा अकेलेपन की भावना हममें घर करती जा रही है"। अकविता के अधिकतर कवि यद्यपि रहते तो महानगरों में थे परन्तु यहाँ आने से पहले वे छोटे शहरों और कस्बों के वासी थे। इसलिए इन कवियों के इस दावे के बावजूद की उनकी चेतना महानगरीय है और कविता गैर रोमानी, कविता को पढ़ते हुए कवियों की "मूल कस्बाई भावुकता उनके तथाकथित महानगर-बोध के सामने संयमित या तनावपूर्ण न होकर दरअसल और अधिक सतही और लिजलिजी हो गई है"। (अशोक वाजपेयी, फिलहाल) महानगर का आतंक ही इन कवियों को अन्य से काट देता है। वह अपने चारों ओर की दुनिया को भीड़ समझता है और जाहिर है भीड़ से कोई संवाद स्थापित नहीं किया जा सकता :

कभी-कभी बहुत अजीब लगता है
कि मैं-
किसी मसीहा की तरह
अपने हाथों में
दिशा-संकेत संभाले
भीड़ के साथ
दौड़ता जाता हूँ
जबकि मैं जानता हूँ
कि भीड़ की आंखें नहीं होती
केवल आवाज़ होती है।
(कुमार विकल)

भीड़ के प्रति यही दृष्टिकोण साठोत्तरी कविता में व्यक्त हुआ है। सवाल यह है कि समाज जो जटिल संरचना है तथा मनुष्य उसकी एक इकाई उसको भीड़ के रूप में देखना कहाँ उचित है क्योंकि भीड़ से न संवाद संभव है न लगाव । इससे तो व्यक्ति केवल अलगाव ही महसूस कर सकता है। नारी के प्रति पतनोन्मुखी दृष्टिकोण: अकविता के इस दौर में स्त्री के प्रति सम्मान की भावना प्रायः कम हो गई है, वह केवल शरीर और भोग्या बन कर उपस्थित हुई है। इस कविता में नारी का जो रूप उभरता है, उसमें नारी के प्रति न तो आदर की भावना है, न उसकी पीड़ा के प्रति सहानुभूति । इसमें न तो प्रेम का रूमानी भाव है न प्रिय के बिछोह की पीड़ा। अगर कुछ है तो केवल नारी देह का उपभोग। जहाँ नारी जीवन की अभिव्यक्ति हुई है वहाँ नारी पुरुष की वासना को तृप्त करने वाले साधन के रूप में या

बच्चों को पैदा करने वाली मशीन के रूप में। और अगर नारी किसी भाव या विचार को व्यक्त करने के लिए व्यक्त हुई है तो वह भी विकृत रूप में। जहाँ स्त्री मां, बेटी, बहन, पत्नी, मित्र के रूप में नहीं केवल वेश्या के रूप में या शारीरिक वासना को तृप्त करने वाले साधन के रूप में हो वहाँ कवि नारी जीवन के यथार्थ दर्द को कैसे अनुभव कर सकता है।

1)
कुछ स्त्रियाँ प्रेम करती हैं
वर्दी से
बाकी
नामर्दी से

(श्रीकांत वर्मा)

2)
कवियों की झूठ में लिपटी हुई
वेश्या-मां
अपनी संतानों का स्वर्ग देख रही हैं।

(श्रीकांत वर्मा)

स्त्री को पुरुष की संपत्ति के रूप में ही नहीं वरन् पुरुष के सामूहिक उपभोग की वस्तु के रूप में देखना पूंजीवादी समाज की विकृत मनोदशा का भी प्रभाव है। नारी के प्रति यह भावना मध्ययुगीन समाज की मनोवृत्ति से भी अधिक विकृत और जुगुप्सोत्पादक है।

निषेधात्मकता: साठोत्तरी कविता चूंकि विचारधारा, राजनीति, मूल्य-व्यवस्था सभी का निषेध करती है इसलिए इसे हम निषेध की कविता भी कह सकते हैं। डॉ. हरदयाल इस सर्वांनषेध की प्रवृत्ति की व्याख्या करते हुए लिखते हैं, "जिस तरह सातवें दशक का कवि राजनीति को अस्वीकार करता है उसी तरह वह भावुकता, आदर्शवादिता, प्रेम, नैतिक, मूल्यों इत्यादि के प्रति निषेधात्मक दृष्टिकोण को अपनाता है। मूल्यों के प्रति यह संदेहवाद यह निषेधं आम आदमी के जीवन में व्याप्त दिखाई देता है, कवि ने तो उसे केवल अभिव्यक्ति दी है जिस समाज में "लाभ" और "पद" सबसे बड़े मूल्य बन गये हों, जिस समाज में बेईमानी, रिश्वतखोरी, भाई-भतीजावाद, सिफारिश, गुंडागर्दी इत्यादि को सम्मान

मिलने लगा हो, उसमें यदि रचनाकार में निषेधात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न नहीं होता तो यह आश्चर्य की बात होगी।" (डॉ. हरदयाल, हिंदी कविता की प्रकृति, पृ. 139)।

जहाँ हर यात्रा का अर्थ दुर्घटना है
और अस्पतालों में मृत्यु अधिक निश्चित है
जहाँ धूर्त होना/अतिरिक्त गुण और बेईमानी
प्रामाणिक हो चुकी है
दोहरा व्यक्तित्व, पाखंड, चाटुकारिता
प्रचार, पक्षपात और उलझन / जहाँ के सर्वमान्य मूल्य हैं।
जहाँ सत्य शब्द का/उच्चारण
अब केवल अर्थी ले जाने में होता है
गाली ही अब जहाँ एक मात्र भाषा है
ताश के पत्तों पर/अब जहाँ निर्माण होता है
और लोग/कागज़ पर मिनिटों में फसलें उगाते हैं
अब जहाँ घड़ियाँ/व्यक्तिगत सुविधा के अनुसार चलती है
और जहाँ पानी तक/शुद्ध नहीं मिलता है।
जहाँ फिल्म अभिनेता/संस्कृति के रक्षक हैं
और बुद्धिजीवी अय्याश हैं
जहाँ जड़ मुर्ख हैं/ रचयिता विधान के और
कुछ विदुषक शासन चलाते हैं।

(कैलाश वाजपेयी, सक्रांत)

उस समय के हालात की इस तस्वीर ने इन कवियों में आक्रोश तो पैदा किया परन्तु यह किसी सकारात्मक परिणति की ओर जाने की बजाय "विनाश की तीव्र आकांक्षा के रूप में" अभिव्यक्त हुआ:

मैं प्रेम जैसे अभिशप्त रोग को मुट्ठी में भरकर
आग में झोंक देना चाहता हूँ
मैं आस-पास के घरों में एक हाहाकार मचाना चाहता हूँ
- एक अनिर्दिष्ट व्याघात।
मैं तमाम यात्राओं को दुर्घटना में बदलना चाहता हूँ।

(जगदीश चतुर्वेदी, इतिहासहंता)

15.3.2 प्रगतिशील-जनवादी कविता

नयी कविता का परिचय देते हुए हमने बताया था कि उसी दौर में शमशेर बहादुर सिंह, गजानन माधव मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह आदि कवियों की कविताओं पर नयी कविता की आधुनिकतावादी व्यक्तिवादी दृष्टिकोण का प्रभाव नहीं था। इन कवियों के काव्य में जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण व्यक्त हुआ। इसी दौर में नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शील, त्रिलोचनशास्त्री जैसे कवि भी थे जो निरंतर प्रगतिशील काव्य की रचना में रत थे, परन्तु जिनकी रचनाशीलता कविता के केन्द्र में न रहकर हाशिए पर चली गई थी। 1967 के बाद बदली परिस्थितियों ने एकबार फिर कविता में वामपंथी रूझान को उभारने में मदद की। इस दौर में जिसे कोई सत्तारोत्तरी कविता का दौर तो, कोई नववाम या न प्रगतिवाद या जनवाद नाम देता है, ने कविता को भी दूर तक प्रभावित किया। हम इसे प्रगतिशील जनवादी कविता का दौर कहेंगे। इस दौर ने अकविता के कई कवियों को जनवादी-प्रगतिशील कविता की ओर मोड़ा। इनमें धूमिल, लीलाधर जगूड़ी, मंगलेश डबराल, कुमार विकल, इब्बार रब्बी आदि प्रमुख थे। इसी दौर में रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, केदारनाथ सिंह आदि नयी कविता के कवि भी इस नयी प्रगतिशील जनवादी कविता के और निकट आये। इस कविता को हम दो चरणों में बांट सकते हैं। प्रथम चरण हम सातवें दशक से उत्तरार्द्ध और आठवें दशक के पूर्वाद्ध को कह सकते हैं जब कविता का उदय हुआ है और इस पर अकविता के सोच और मुहावरों का काफी असर था। दूसरा चरण आठवें दशक के उत्तरार्द्ध से अब तक का है जब इस कविता में उग्रवादिता कम हुई है और स्वर अधिक संयमित और संतुलित हुआ है। यहाँ हम इन दोनों चरणों की विशेषताओं का अलग-अलग विवेचन करेंगे। प्रथम चरणः सातवें दशक के उत्तरार्द्ध में हुई राजनीतिक घटनाओं का असर कवियों और बुद्धिजीवियों के भावबोध पर भी पड़ा। दो दशकों के कांग्रेस के सत्ता पर एकाधिकार को पहली बार सशक्त चुनौती दी गई थी और कई राज्यों में विपक्षी दलों की सरकारें बनीं। केरल और पं. बंगाल में वामपंथी सरकारें अस्तित्व में आई। जगह-जगह राजनीतिक परिवर्तन के लिए उग्र जनांदोलन फूट पड़े। इन सब का असर हिंदी के कवियों पर भी पड़ा। व्यवस्था का अंध विरोध जो साठोत्तरी कविता की विशेषता था, उस विरोध को अब तक दिशा मिलने लगी। नक्सलबाड़ी के आंदोलन के प्रभाव में कई युवाओं को परिवर्तन और क्रांति अपनी दहलीज पर दस्तक देती सुनाई देने लगी। क्रांति की इस गुहार में परिवर्तन की प्रबल आकांक्षा साफ झलक रही थी। इस परिवर्तन की आकांक्षा के पीछे देश की बदतर स्थितियाँ थीं जिसके प्रति ये कवि गहरे आक्रोश से भरे थे। इसका उदाहरण हम धूमिल की कविता में देख सकते हैं:

अपने यहाँ संसद

तेली की वह घानी है
बीस बरस बीत गये
लालसा मनुष्य की तिल-तिल कर मिट गयी
रोज-रोज थोड़ा-थोड़ा मरते हुए लोगों का झुंड
तिल-तिल खिसकता है शहर की तरह
मैं क्या कर रहा था जब मैं मरा
मुझसे ज्यादा तो तुम जानते लगते हो
तुमने लिखा मैंने कहा था स्वाधीनता
शायद मैंने कहा था बचाओ

(रघुवीर सहाय, हंसो, हंसो जल्दी हंसो)

इस दौर की कविता में केवल दमन और आतंक के ही चित्र नहीं है वरन् आशा और विश्वास के भी चित्र हैं।

सूर्योदय
औचक से घट जाने वाली
अनायास घटना नहीं
क्षण-क्षण/टूटना है अंधेरों का
तार-तार
बूंद-बूंद /घुलना है चुप-चुप
कटना है उजास का

(मनमोहन, सूर्योदय)

यहाँ सूर्योदय जीवन के अंधकार के बीच आशा का उदय है परन्तु इस आशा के स्वर में बड़बोलापन नहीं है। आठवें नवें दशक की जनवादी कविता ने राजनीतिक यथार्थ से आगे जाकर जीवन की छोटी-छोटी सच्चाइयों को भी अपनी कविता का विषय बनाया। घर-परिवार, उसका संघर्ष, अपने परिवेश से जुड़ी छोटी-छोटी सच्चाइयाँ। स्त्रियों के जितने संघर्षशील और कंरूण चित्र इस दौर की कविता में मिलते हैं उतनी किसी अन्य दौर की कविता में नहीं। असद जैदी की प्रसिद्ध कविता "बहनें" में स्त्रियों के दुःख भरे संसार की करूण तस्वीर उभर आती है।

लकड़ियां हैं हम लड़कियां
जब तक गीली हैं धुआं देंगी पर इसमें
हमारा क्या बस ? हम
पलीतियां हैं तुम्हारे घर की, भाई, पिता
मां देखो हम पलीतियां हैं
हम सूख जाएंगी

इस दौर की कविता की विशेषता यह है कि इसमें जीवन अपनी पूर्णता में आया है। पेड़, चिड़िया, पहाड़, बच्चे तो हैं ही इसके साथ जीवन को संघर्ष के वे विविध रूप जिनमें कवि उस मानवीय संवेदना को ढूंढ़ता है जो हमारे जीवन से लुप्त होती जा रही है।

15.3.3 नवगीत परंपरा

नवगीत समकालीन हिंदी कविता की महत्वपूर्ण विधा है। डॉ. रवीन्द्र भ्रमर के अनुसार "इसकी रूपरेखा छठे दशक के उत्तरार्द्ध में तैयार की गयी। उस समय "नयी कविता" के कतिपय दुराग्रही पक्षधरों द्वारा प्रगीत काव्य का व्यापक विरोध किया जा रहा था। गीत सर्जना को युगबोध और युगाभिव्यक्ति के नितांत प्रतिकूल घोषित कर दिया गया था। ऐसी विषम परिस्थिति में, कुछ जागरूक रचनाकारों ने "नवगीत" का उद्घोष किया । उत्तरछायावाद युग के नितांत वैयक्तिक, रोमानी और सपाट गीतों से एकदम हटकर, लोकचेतना और लोकधुनों के संस्पर्श से उन्होंने गीतिकाव्य को नयी गरिमा और नयी अर्थवत्ता प्रदान की। "डॉ. भ्रमर के इस कथन से स्पष्ट है कि उन्होंने "नयी कविता" की प्रतिक्रिया में ही "नवगीत" की तात कही। लेकिन यह सही है कि तब से गीतों की एक स्वतंत्र धारा के रूप में बराबर होती रही। नवगीत के प्रारंभिक दौर के प्रमुख गीतकारों में शंभूनाथसिंह, ठाकुरप्रसाद सिंह, रामदरश मिश्र, रवीन्द्र भ्रमर, वीरेन्द्र मिश्र, ओम प्रभाकर, उमाकांत मालवीय आदि प्रमुख हैं। डॉ. रवीन्द्र भ्रमर ने नवगीत को परिभाषित करते हुए लिखा है, "लोकधर्मी अनुभूतियाँ, लोकगीतों की अंतवर्ती लयचेतना, वर्तमान जीवन के द्वंद्व और संघर्ष की रागात्मक कलाभिव्यक्ति, भाषा के मुहावरे और छंदों की ताजगी, नवजीवन से लिये गये अप्रस्तुत और बिंब-नवगीत को विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान करते हैं।"

उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि नवगीत ने अपना संबंध जीवन के संघर्ष और लोकधर्मी अनुभूतियों से जोड़ा। गीत को केवल नारी सौन्दर्य और स्त्री-पुरुष प्रेम का वाहक बनाने की बजाए इन गीतकारों ने जीवन के छोटे-छोटे अनुभवों और स्थितियों को गीतों में बांधने की कोशिश की। सन् 70 के

आसपास उभरी नयी जनचेतना का असर कविता के साथ-साथ गीतों पर भी पड़ा। इस दौर में गीतों की विषयवस्तु में भी परिवर्तन हुआ। अब किसानों-मजदूरों और आम आदमी के दुःख दर्द और संघर्ष के गीत गाये जाने लगे। गीतों को हर तरह की रोमानियत से मुक्त कर उनको जीवन के यथार्थ से जोड़ा गया।

भूमि पर, मन पर, बदन पर

है. अमावस का बसेरा

चंद लोहे की छड़ों में

बंद है युग का सवेरा।

- रमेश रंजक

नवगीत की एक प्रमुख विशेषता है उसे लोक परंपरा से जोड़ना। लोक गीत लोक भावना का प्रतिबिंब होता है। लोकगीत की जीवंतता, सहज संप्रेष्णीयता और सरलता को अपनाकर जनवादी नवगीत को नयी शक्ति और ऊर्जा प्राप्त हुई। इन गीतकारों ने प्रचलित लोकगीतों और लोक धुनों का प्रयोग नये कथ्य और नये रूप में किया है। उदाहरण के लिये होली के लोकगीत का नया रूप देखिएः

रंग के भाग ठिठोली लिखी है

रूप के भाग में चीर

अपने तो भाग, मजूर के भाग है

भाल. पै स्याम लकीर

लोकगीतों में जो तलस्पर्शी आत्मीयता होती है उसी आत्मीयता के कारण ये गीत काफी लोकप्रिय हुए। इस दौर के जनचेतना संपन्न गीतकारों में रमेश रंजक, हरीश भादानी, माहेश्वर तिवारी, शलभ श्री रामसिंह, अश्वघोष, कातिमोहन, नचिकेता, गोरख पांडेय आदि प्रमुख हैं।

15.4 समकालीन कविता की प्रमुख विशेषताएँ

समकालीन हिंदी कविता के शिल्प पक्ष पर विचार करते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि कथ्य की तरह इसका शिल्प भी अलग-अलग प्रवृत्तियों में भिन्न-भिन्न रूप में व्यक्त हुआ है। साठोत्तरी

कविता की भाषा और रूप वही नहीं है जो बाद की प्रगतिशील जनवादी कविता का है। यही बात नवगीत परंपरा पर लागू होती है। वह एक ओर अपनी समकालीन कविता से तो भिन्न है ही स्वयं नवगीत की भाषा में सातवें और आठवें दशक में अंतर नज़र आता है। भाषा, छंद, गीत, मुक्तक, प्रतीक, बिंब आदि क्षेत्रों में इस काव्य के वैविध्य का संक्षिप्त परिचय आगामी पृष्ठों पर प्राप्त करेंगे।

15 .4.1 काव्य-भाषा

नयी कविता के प्रमुख कवि डॉ. केदारनाथ सिंह ने कविता में बिंब विधान पर बल दिया था। परंतु साठोत्तरी कविता में वक्तव्यों पर अधिक बल दिया जाने लगा। कवि अपने आसपास के यथार्थ से उपजने वाली अपनी मानसिक प्रतिक्रियाओं को ही कविता में वक्तव्य के रूप में प्रस्तुत करने लगा। इस वक्तव्य प्रधानता का नतीजा यह हुआ कि कविता में बात कहने के ढंग पर अधिक बल दिया जाने लगा।

पेट और प्रजातंत्र के बीच

आदमी दरार की तरह खड़ा है और बवंडर/हर दरवाज़े पर/ पर्दे की तरह पड़ा है।

(लीलाधर जगूड़ी)

मुझे तानाशाही से लगाव है, जनतंत्र के रिरियाते गीदड़ से नहीं।

(जगदीश चतुर्वेदी)

उक्त काव्यांशों में कवि का बल ऐसे चमत्कारिक वक्तव्य पर है जो शब्दों के ज़ोर पर पाठक को प्रभावित करे। इस चमत्कारिकता के लिए कवियों ने कई बार स्त्री-देह और स्त्री-पुरुष के शारीरिक संबंधों का भी इस्तेमाल किया हैं। इस तरह का प्रयोग प्रायः जुगुप्सा पैदा करने वाला है। राजकमल चौधरी, धूमिल, लीलाधर जगूड़ी जैसे कवि भी इस नकारात्मक असर से नहीं बच सके हैं। वक्तव्य प्रधान इस भाषा को सपाटबयानी का नाम दिया गया है। इस सापाटबयानी का 'कवियों ने सृजनात्मक प्रयोग भी किया है। ऐसा प्रयोग हम रघुवीर सहाय, धूमिल, राजकमल चौधरी, सौमित्र मोहन आदि कवियों में देख सकते हैं। सपाटबयानी का अर्थ है बात को इतने सीधे और सहज रूप में कहा जाए कि वह सपाटता में ही असरदार बने।

एक मेरी मुश्किल है जनता

जिससे मुझे नफरत है सच्ची और निस्संग

जिस पर कि मेरा क्रोध बार-बार न्योछावर होता है

(रघुवीर सहाय)

कविता/शब्दों की अदालत में

मुजरिम के कटघरे में खड़े बेकसूर आदमी का

हलफनामा है।"

(धूमिल)

लेकिन समकालीन कविता में सपाटबयानीं का ही उपयोग नहीं किया गया है, भाषा का सर्जनात्मक इस्तेमाल करने के लिए उसके अन्य औजारों का भी उपयोग किया गया है। सातवें दशक में भाषा में चमत्कार प्रधान वक्तव्य की जो प्रवृत्ति थी, वह आठवें दशक के

उत्तरार्द्ध की कविता में काफी कम हो गई। कथ्य की तरह ही भाषा भी जीवन के अधिक नजदीक आई और बिना बड़पोलेपन के वह सहज ढंग से अपनी बात कहने में अधिक समर्थ बनी। मंगलेश डबराल की कविता "एक स्त्री" में स्त्री के जीवन के यथार्थ की जो 'सहज तस्वीर पेश की गई है, वह तस्वीर ही स्त्री की दशा पर इतना कुछ कह जाती हैकि कवि को अलग से कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं।

सारा दिन काम करने के बाद

एक स्त्री याद करती है

अगले दिन के काम

एक आदमी के पीछे

चुपचाप एक स्त्री चलती है

उसके पैरों के निशान पर अपने पैर रखती हुई

रास्ते-भर नहीं उठाती निगाह

रात को आंखें बंद किए हुए

एक स्त्री सोचती है

समय बीत रहा है

समय बीत जायेगा आँखें बंद किये हुए।

(मंगलेश डबराल, पहाड़ पर लालटेन)

सातवें दशक का कवि भाषा से गोली का काम लेना चाहता था परंतु आठवें दशक के उत्तरार्द्ध तक आते-आते कवि को एहसास हो गया कि भाषा से गोली का काम लेना ज्यादती है, परंतु अगर भाषा का स्रोच-समझकर इस्तेमाल किया जाए तो बिना चमत्कार और आडंबर के भी वह अपने मकसद को पूरा करने में समर्थ हो सकती है।

15.4.2 **शिल्प पक्ष**

साठोत्तरी कविता में सपाटबयानी के असर का परिणाम यह हुआ कि उसमें गद्यात्मकता का अत्यधिक समावेश हुआ। कहीं-कहीं तो यह पहचानना मुश्किल हो गया कि यह गद्य है या पद्य। कविता में लंय और संगीतात्मकता बिल्कुल लुप्त हो गई। भाव और विचार में भी नवीनता न होने के कारण काव्य पंक्तियाँ अर्थहीन वक्तव्य मात्र रह गई।

मैंने दोस्तों के लिए समय बहुत बरबाद किया पर दोस्त न मिले

जो मिले वह घटिया थे साथ छोड़ गये

या मैं खुद हो गया अन्यमनस्क।

परिवार और परिजन हमेशा सिखाते रहे ढोंग

और बढ़ती रही खीझ और रह गया अकेला और निरुपाय

स्वयं के बाल नोचता हुआ।

(इतिहासहंता)

कविता में ऐसे कथन जो मात्र सामान्य कथन हो और उनकी प्रस्तुति में भी कोई नवीनता न हो तो उन्हें कविता मानना कठिन होगा। सरलता का अर्थ साधारणता नहीं है। सामान्य कथन को भी प्रभावशाली बनाया जा सकता है। इसे हम निम्नलिखित वाक्यांश में देख सकते हैं।

यह जमीन हर साल

और कठोर होती जाती है

पेड़ हर साल तक कुछ कम फल देते हैं

बच्चे दिखते हैं और भी दुबले

उनके मां-बाप कुछ और कातर

मौसम बदल रहा है

साठोत्तरी कविता में आरंभ में वक्तव्य प्रधानता और गद्यात्मकता का जोर रहा परंतु धीरे-धीरे समकालीन कविता ने अपना मुहावरा ढूंढ़ने की कोशिश की और कविता की . भाषा को कविता के अनुकूल बनाया। इस दौर की कविता में निहित संवेदना, तनाव और संघर्ष की स्थितियाँ ही उसमें एक खास तरह की लय पैदा करती है। आठवें दशक के बाद की कविता में व्यंग्य, करुणा, संघर्ष और तनाव तो है परंतु हताशा, टूटन और कुंठा नहीं है न कवि का आत्मदया उत्पन्न करने की कोशिश करता है। यद्यपि कविता में अब भी "मैं" मौजूद है परंतु वह कहीं अधिक सहज है और कवि अपने इस "मैं" से बाहर जाकर भी यथार्थ को देखने और व्यक्त करने की कोशिश करता है। कवि का बल यथार्थ में निहित उस सच्चाई और संवेदना पर होता है जिसे वह कविता द्वारा व्यक्त करना चाहता है। वह अगर एक शब्द से भी संभव है तो कवि उस एक शब्द से ही संपूर्ण प्रभाव उत्पन्न करने की कोशिश करता है। उदाहरण के लिए इब्बार रब्बी की कविता "कंडक्टर" का निम्नलिखित अंश ले सकते हैं। यहाँ "सुनसान" शब्द से ही खास तरह की लय कविता में उत्पन्न हो गई है जो पाठक को उस संवेदना बिंदु पर ले जाता है जहाँ तक कवि पाठक को ले जाना चाहता है:

सुनसान घर कंडक्टर का

गंदी बस्ती में

सुनसान है उसका प्रेम

सुनसान उसकी रोटी

सुनसान उसकी पत्नी

सुनसान उसका बच्चा

सुनसान है उसका अतीत

कविता के उपुर्यक्त अंश को पढ़ने से आप महसूस करेंगे कि "सुनसान" शब्द की बार-बार आवृत्ति कविता में खास असर पैदा करती है और पाठक कंडक्टर की उस मनोदशा से तादात्म्य कर लेता है जो उक्त पंक्तियों में व्यक्त हुआ है।

समकालीन कविता की एक प्रमुख विशेषता है लंबी कविताओं का लेखन । वैसे तो आधुनिक हिंदी कविता में लंबी कविता की रचना का आरंभ छायावाद से होता है परंतु सातवें आठवें दशक में कई महत्वपूर्ण लंबी कविताएँ लिखी गईं जिनमें कथातत्व की प्रधानता रही है। इन कविताओं में नाटकीय स्थितियों के द्वारा तत्कालीन सामाजिक यथार्थ को उजागर किया गया है। इन लंबी कविताओं में नागार्जुन की "हरिजन गाथा", त्रिलोचन की "नगई महरा", धूमिल की "पटकथा", सौमित्र मोहन की "लुकमान अली", लीलाधर जगूड़ी की "बलदेव खटिक" और रघुवीर सहाय की "आत्महत्या के विरुद्ध" प्रमुख हैं।

समकालीनं कविता में संवेदना का यही तत्व उसे कविता बनाता है भले ही राग, छंद और संगीत का तत्व उसमें न्यूनतम हो परंतु इसी दौर में नवगीत परंपरा ने छंद, राग और संगीत के तत्व की कविता में न केवल रक्षा की वरन् गीत परंपरा में नये प्रयोग कर उसका विकास भी किया।

गीत का सौंदर्य उसके पढ़ने में नहीं सुनने में है इसलिए यह आवश्यक है कि गीतों में अनुभव की जटिलता की तरह शिल्प की जटिलता भी नहीं होनी चाहिए। वस्तुतः वही गीत सफल हो सकता है जिसमें शब्द, राग, लय और स्वर का सफल संयोजन हो। नवगीत में यद्यपि प्रेम, श्रृंगार आदि रोमानी भावबोध के भी गीत मिलते हैं परंतु इस दौर के गीतों की पहचान उनके यथार्थ की अभिव्यक्ति में है इसलिए गीतों की भाषा, छंद और रूप में भी परिवर्तन आया है। परंतु आरंभिक नवगीतकारों में वही जीवन दृष्टि मिलती है जों नयी कविता और अकविता के कवियों में थी। इनके गीतों में भी आत्मनिर्वासन, ऊब, उदासी, अकेलापन, टूटन और बिखराव की अभिव्यक्ति हुई है। वीरेन्द्र मिश्र कहते हैं:

खंडकाव्य जैसा जीवन भोगा

एक शब्द, एक गीत क्या होगा

भूखी आकांक्षा को तुम केवल चाशनी न दो

(वीरेन्द्र मिश्र)

या बालस्वरूप राही के निम्नलिखित गीत-अंश में लगभग उसी शब्दावली में राजनीति की भर्त्सना की गई है जिनमें अकविता का कवि करता थाः

हर जुलुस कुछ नारों का अनुगामी है

भीड़ों का कोई व्यक्तित्व नहीं होता

'सबसे अधिक सुनी जाती हैं अफवाहें

बहुमत में सच का अस्तित्व नहीं होता

(बाल स्वरूप राही)

गीतों में वैसा ही पराजय-भावना हम निम्नलिखित अंश में देख सकते हैं:

जलती न कोई आग है

छिड़ता न कोई राग है

केवल सुलगती है चिता

इस गीत के आकाश में

(वीरेन्द्र मिश्रः)

लेकिन गीतों में व्यक्त इस पराजय भावना, टूटन, निराशा का एक सामाजिक पक्ष भी है। इसीलिए आठवें दशक में बदली परिस्थितियों का असर गीतों पर भी पड़ा और उन्होंने अपने गीतों को गरीब और मेहनतकश जनता के दुःख दर्द से जोड़ा। ऐसा करते हुए उनकी कविता की भाषा और तेवर में भी परिवर्तन आया। आरंभ में अति उग्रता का स्वर भी कविता की तरह गीतों में भी व्यक्त हुआ। नचिकेता के गीत के निम्नलिखित अंश को देखिए:

कुचली आंखों में अब भी है

लाल लपट मौजूद

संसद से सड़क तक चलो,

बिछा दें अब बारूद बहुत

दिनों तक खेली है

सत्ता ने छुई मुई

(नचिकेता)

लेकिन रमेश रंजक, हरीश भादानी, माहेश्वर तिवारी, अश्वघोष, कांतिमोहन आदि के स्वर में अधिक संयम और ऊर्जा दिखाई देती है। आठवें दशक के गीतों में यथार्थ की सीधी-सहज अभिव्यक्ति भी है। जैसे-

गिरवी हैं सारी उम्मीदें

दिल का चैन रात की नींदें

कर्ज़ पसीने पर हावी है आँखें चढ़ी थान की

इतनी भर जिंदगी बची इंसान की

(रमेश रंजर्क, किरन के पांव)

इस दशक के गीतों की प्रमुख विशेषता है उनका लोक तत्व। इन गीतों में कथ्य, रूप और राग सभी लोकगीतों से प्रेरित हैं परंतु दृष्टि और संवेदना इस युग के अनुकूल है। रमेश रंजक ने इस दृष्टि से अत्यंत सुंदर प्रयोग किये हैं। उन्होंने ग्रामीण जीवन से संबंधित विभिन्न प्रसंगों को आधार बनाकर उसी राग और भाषा में गीत लिखे हैं, परंतु संवेदना और दृष्टि के कारण उसका अर्थ अधिकै विस्तृत और गहन हो गया है। निम्नलिखित गीत अंश में राज-मजूरिन का चित्र देखिए-

गारे के पांय, पसीने को अंचरा

सीस में धूल के बाल

सजनवा ! हमको न चावे गुलाल

(रमेश रंजक, इतिहास दुबारा लिखो)

समकालीन कविता के शिल्प पक्ष की चर्चा करते हुए हिंदी ग़ज़लों की चर्चा भी आवश्यक है। उर्दू की इस महत्वपूर्ण विधा में हिंदी में भारतेंदु के समय से ही प्रयोग होते रहे हैं, परंतु इस क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान दुष्यंत कुमार का है जिन्होंने आठवें दशक में कई ग़ज़लें लिखीं। उनकी ग़ज़लों का कथ्य रूमानी नहीं वरन यथार्थवादी है और उस समय के हालात

का सच्चा आईना है। खास बात यह हैं कि उसकी भाषा में बोलचाल की हिंदी की मिठास है और ग़ज़ल के शिल्प पर उनका जबर्दस्त अधिकार है।

कहां तो तय था चिरागाँ हरेक घर के लिए

कहां चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए।

यहां दरख्तों के साये में धूप लगती है

चलो यहां से चलें और उम्र भर के लिए

न हो, कमीज़ तो पांवों से पेट ढंक लेंगे,

ये लोग कितने मुनासिब हैं, इस सफर के लिए

(दुष्यंत कुमार, साये में धूप)

दुष्यंत कुमार के बाद भी हिंदी में गज़लें लिखी जाती रहीं जिनमें रामकुमार कृषक, कांतिमोहन, ब्रजमोहन, नईम, आदि कई नाम लिये जा सकते हैं परंतु फिर किसी को वैसी लोकप्रियता नहीं मिली।

15.4.3 प्रतीक और बिंब

साठोत्तरी कविता यद्यपि वक्तव्य प्रधान थी परंतु कवियों ने बिंबों और प्रतीकों का यथावसर प्रयोग किया। सातवें दशक के कवियों पर तो सपाटबयानी ही हावी रही परंतु बाद के कवि अवश्य बिंब-विधान की ओर उन्मुख हुए। जहाँ तक प्रतीकों का सवाल है इस दौर की अलग-अलग प्रवृत्तियों के प्रतीकं भी अलग-अलग थे। अकविता के कवियों के प्रतीक उनकी मनोवृत्ति को व्यक्त करने वाले थे। पराजय भावना, आत्मनिर्वासन, कुंठा, टूटन, आत्मदया, हताशा आदि मनोभावों को व्यक्त करने वाले ही प्रतीक उन्हें अधिक प्रिय थे। "रात का उड़ता हुआ निःश्वास/सो गया है/मैथुनों में रत/भग्न आंखों में उलूकों को (जगदीश चतुर्वेदी) इन पंक्तियों में रात, मैथून, भग्न आँख, उलूक ये सभी वस्तुतः उसी मनोभावों के प्रतीक हैं जो साटोत्तरी कविता की विशेषता रहा है। परकटा

पक्षी, कोढ़ की तरह छाई हुई चापलूसी, देश एक लंगड़ाता वृद्ध मरीज़, अंधेरी गुफाओं में भटकता रहा, हम सब नपुंसक हैं, इन नपुंसक हैं, इन कीड़ों से मानव पिंडों के लिए, जनतंत्र के रिरियाते गीदड़ से नहीं-ऐसी अनगिन पदांश उद्धृत किये जा सकते हैं और उनमें प्रयुक्त प्रतीकों से अनुमान लगाया जा सकता है कि साठोत्तरी कविता में किस तरह के प्रतीक प्रयुक्त होते थे। परकटा पक्षी, कीड़े, नपुंसक, गीदड़, अंधेरी गुफा, कोढ़ आदि उस दौर की मध्यवर्ग की मनोदशा को व्यक्त करते थे जो बाह्य यथार्थ की प्रतिक्रिया से उपजी थी। उन्हें हर तरफ जुगुप्सा और घृणा का ही माहौल नज़र आता था। प्यार, विश्वास, आशा, गतिशीलता आदि शब्द उन्हें अर्थहीन लगते थे। लेकिन आठवें दशक की कविता में प्रतीकों में परिवर्तन आया। परिवर्तन आशा और आश्वस्ति की भावना ने उनकी भाषा पर भी असर डाला। इसे हम. रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह, धूमिल आदि की तत्कालीन कविता में देख सकते हैं और उन नये कवियों में तो देख हीं सकते हैं जो नये भावबोध और जीवन दृष्टि को लेकर सामने आ रहे थे। धूमिल की कविता "प्रौढ़ शिक्षा" के निम्नलिखित अंश में प्रयुक्त प्रतीक आशा और संघर्ष को व्यक्त करते हैं-

लालटेन की लौ जरा और तेज़ करो

उसे यहाँ पेड़ में गड़ी हुई कील से

लटका दो/हाँ-अब ठीक है

आज का सबक शुरू करने से पहले

मैं एक बार फिर वह सब बतलाना चाहूँगा

जिसे मैंने कल कहा था

क्योंकि पिछले पाठ का दुहराना

हर नयीं शुरुआत में शरीक है

(धूमिल, संसद से सड़क तक)

धूमिल ने जिसे शब्दों से नये परिचय की संज्ञा दी है वही हमें आठवें नवें दशक की कविता में दिखाई देता है। कुमार विकल की कविता का निम्नलिखित अंश देखिए। यहाँ जीवन का मामूली-सा बिंब किस तरह शक्तिवान बन कविता में परिवर्तित हुआ है-

सुन, छोटी जगीरो के दुःख छोटे होते हैं

बड़ी जगीरो के दुःख. बहुत-बहुत बड़े होते हैं-

बच्चों की रोती आँखों में

चमक सी कौंध जाती है

जब जगीरों मज़बूत हाथों से अपने डिब्बे को आगे सरकाती है

'और उसकी आँखों में कई स्टोव एक साथ जल उठते हैं

(कुमार विकल, रंग खतरे में हैं)

इन बिंबों में जीवन का मर्मस्पर्शी चित्र है। इनमें न चमत्कार है न शब्दाडंबर । कवि सीधे-सरल शब्दों में अपने जीवनानुभवों को शब्दों में बांध देता है और एक ऐसा जीवंत चित्र खड़ा कर देता है, जो न केवल हमारे हृदय को छूता है वरन् हमें एक नये अर्थ से भी साक्षात्कार कराता है। अरूण कमल की "उर्वर प्रदेश" कविता का निम्नलिखित अंश देखिए - {

खोलता हूं खिड़की

और चारों ओर से दौड़ती है हवा

मानो इसी इंतजार में खड़ी थी पल्लों से सट के

पूरे घर को जलभरी तसली-सा हिलाती

मुझसे बाहर मुझसे अनजान

जारी है जीवन की यात्रा अनवरत

बदल रहा है संसार

(अरूण कमल)

समकालीन कविता की एक और विशेषता है कविता में व्यक्तिवाचक नामों का प्रयोग । नागार्जुन, त्रिलोचन, रघुवीर सहाय और अब नये युवा कवि भी कविता में ऐसे व्यक्तिवाचक नामों का प्रयोग करने लगे हैं जो आम आदमी के प्रतिनिधि रूपं में कविता में उपस्थित होते हैं। ऊपर हमने कुमार विकल की कविता का अंश उद्धृत किया है जिसमें जगीरो एक ऐसा ही नाम है। त्रिलोचन शास्त्री का नगई महरा, सौमित्र मोहन का लुकमान अली, लीलाधर जंगूड़ी का बलदेव खटिक और रघुवीर सहाय का रामदास ऐसे ही नाम हैं।

"लुकमान अली" कविता का एक अंश देखिए-

लुकमान अली के लिए स्वतंत्रता उसके कद से केवल तीन इंच बड़ी है

वह बनियान की जगह तिरंगा पहनकर कलाबाजियाँ खाता है

वह चाहता है कि पाँचवें आम चुनाव में बौनों का प्रतिनिधित्व करें

उन्हें टाफियाँ बाँटे

जाति और भाषा की कसमें खिलाए

(सौमित्र मोहनः लुकमान अली तथा अन्य कविताएँ)

समकालीन हिंदी कविता की विविधता और कलात्मक संपन्नता हिंदी काव्य परंपरा को और समृद्ध बनाएगी।

15.5समकालीन कविता के प्रमुख कवि

समकालीन हिंदी कविता की विभिन्न धाराओं का प्रतिनिधित्व करने वाले कई महत्वपूर्ण कवियों के काव्यांशों का उद्धरण हमने इकाई में दिये हैं। यहाँ हम कुछ प्रमुख कवियों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं। साठोत्तरी हिंदी कविता में महत्वपूर्ण योगदान करने वाले प्रमुख कवियों में जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार और गंगाप्रसाद विमल प्रमुख हैं। इन तीनों कवियों को विजय के नाम से भी जाना जाता है। इन कवियों ने ही अकविता आंदोलन की शुरुआत की थी। इनके **जगदीश चतुर्वेदी** अकविता के प्रवर्तक भी माने जा सकते हैं। कविता में निषेधवादी प्रवृत्ति का प्रबल आग्रह उनकी कविताओं में रहा है। "प्रारंभ (1963), विजप (1967), इतिहासहंता (1970), निषेध (1972) और "डूबते इतिहास की गवाह" में (1980) में संकलित अधिकांश कविताएँ अकविता की निषेधवादी-पराजयवादी भावना का प्रतिनिधित्व करती है। उनकी कविताओं में यौन-बिंबों का प्रयोग अधिक है और ऐसे प्रतीक हैं जो टूटे और पराजित व्यक्ति की मनोदशा को व्यक्त करते हैं। **राजकमल चौधरी** की कविता पर लिखते हुए विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने लिखा था स्त्री, मृत्यु और स्वाधीनता राजकमल की कविता के तीन बुनियादी सरोकार हैं। यौन प्रसंग और यौन प्रतीक और बिंब उनकी कविता में अतिरंजना की हद तक आते हैं। मृत्यु भी पराजय भावना का ही प्रतिनिधित्व करती है परंतु स्वाधीनता की आकांक्षा राजकमल को अकविता के दायरे से बाहर लाती है और उन्हें अपने समय का एक महत्वपूर्ण कवि बनाती है। "कंकावती" राजकमल

की विवादास्पद कविता है तो "मुक्ति प्रसंग" उनकी सर्जनात्मक ऊर्जा का उत्कर्ष है। **धूमिल (1936-1975)** की भी राजकमल चौधरी की तरह अल्पायु में मृत्यु हो गई। धूमिल की कविता सातवें दशक के युवा वर्ग के आक्रोश और विक्षुब्धता का प्रतिनिधित्व करती है। उनकी कविता में अपने परिवेश में व्याप्त मूल्यहीनता, ढोंग, पाखंड और अमानवीय स्वार्थपरत्ता का निर्मम भंडाफोड़ किया है। उनकी लंबी कविता "पटकथा" इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है । "संसद से सड़क तक" (1972) और 'कल सुनना मुझे' उनके महत्वपूर्ण काव्य संग्रह हैं। **सौमित्र मोहन** (जन्म 1938) अकविता दौर के महत्वपूर्ण कवि हैं तथा सातवें दशक की कविता में कथ्य और शिल्प की दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रयोग कर उन्होंने पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है। "लुकमान अली" सातवें दशक की बहुचर्चित लँबी कविता रही है जिसमें "घृणा", वितृष्णा", रतिक्रीड़ा और आध्यात्मिक अभिसंधियों के विरुद्ध आक्रामक काव्यानुभव हरकत करते दिखाई देते हैं।" सौमित्र मोहन के प्रमुख काव्य संग्रह हैं-"चाकू से खेलते हुए" (1972) और "लुकमान अली" तथा अन्य कविताएँ (1978)। निषेध (1972) में भी उनकी कविताएँ संकलित हैं । **लीलाधर जंगूड़ी** अकविता से जनवादी कविता की ओर संक्रमण करने वाले प्रमुख कवि हैं। जनवाद की ओर उन्मुख होने पर भी उन पर अकविता का असर बना रहा। उनकी कविता का संसार भी वही है जो इस दौर के कवियों का रहा है परंतु संवेदना के धरातल पर उनकी कविताएँ अपेक्षित प्रभाव नहीं छोड़ पाती। उनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं- "नाटक जारी है", "इस यात्रा में", "रात अब भी मौजूद है", "बची हुई पृथ्वी" और "घबराए हुए शब्द"। "बलदेव खटिक" उनकी प्रसिद्ध लंबी कविता है।

नवगीत और जनवादी गीत परंपरा ने भी कई महत्वपूर्ण कवि दिये । नवगीत ने शंभुनाथ सिंह, वीरेन्द्र मिश्र, रवींद्र भ्रमर, ओम प्रभाकर, ठाकुर प्रसाद सिंह, रामदरश मिश्र, उमाकांत मालवीय आदि प्रमुख हैं। **शंभुनाथ सिंह** जनवादी गीतकारों में सबसे उल्लेखनीय नाम है: रमेश रंजक । रमेश रंजक के अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण कवि हैं: हरीश भादानी, कांति मोहन, अश्वघोष, माहेश्वर तिवारी, गोरख पांडेय, नचिकेता, ब्रजमोहन, रामकुमार कृषक, पुरुषोत्तम प्रतीक आदि । **रमेश रंजक** ने गीतों में नये-नये प्रयोग भी किये हैं। कथ्य, भाषा, भाव, राग और स्वर सभी दृष्टियों से उनके गीत पूर्णता का एहसास कराते हैं। लोकगीतों का शिल्पगत प्रयोग तो उनका अनूठा है। उनके गीत संग्रह हैं: किरन के पाँव (1970), हरापन नहीं टूटेगा (1974), गीत विहग उतरा (1969), मिट्टी बोलती है (1976) तथा इतिहास दुबारा लिखो (1977)। सातवें-आठवें दशक में कई कवियों ने अपनी रचनात्मक ऊर्जा द्वारा हिंदी कविता को समृद्ध किया इनमें नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, त्रिलोचन शास्त्री आदि प्रगतिशील कवि, रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह, श्रीकांत वर्मा, प्रयाग शुक्ल आदि नयी कविता दौर के कवि प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त सातवें-आठवें दशक में अपना लेखन शुरू करने वाले कवि भी हैं जिनमें अशोक वाजपेयी, विष्णु खरे, कमलेश, गिरधर राठी, विनोद कुमार शुक्ल, चंद्रकांत देवताले, कुमार विकल, ज्ञानेंद्रपति, मंगलेश डबराल, इब्बार रब्बी, श्रीराम वर्मा, सोमदत्त, ऋतुराज, राजेश जोशी, मनमोहन, विष्णु नागर, असद जैदी, अरुण कुमल, उदयप्रकाश, आलोक धन्वा आदि प्रमुख हैं। **अशोक वाजपेयी** समकालीन

हिंदी कविता में अशोक वाजपेयी एक महत्वपूर्ण नाम है। इनकी कविता पर न तो साठोत्तरी कविता की निषेधवादी प्रवृत्तियों का प्रभाव है और न ही प्रगतिशील जनवादी कविता का। अशोक वाजपेयी मूलतः निजी अनुभवों के कवि हैं। इन अनुभवों में जीवन के राग-विराग व्यक्त हुए हैं। उनके प्रमुख काव्य-संग्रह हैं: "शहर की अब भी 'संभावना है" और "एक पतंग अनन्त में"। **कुमार विकल**: कुमार विकल पर आरंभ में अकविता का असर रहा, परंतु बाद में वे जीवन के वैविध्यमय यथार्थ को व्यक्त करने की ओर प्रवृत्त हुए। कुमार विकल की कविताओं में आम आदमी के जीवन संघर्ष की संवेदनशील तस्वीर मिलती है जिसमें बड़बोलापन नहीं है। उनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं: "एक छोटी सी लड़ाई" और "रंग खतरे में हैं"। **मंगलेश डबराल** की कविता पर टिप्पणी करते हुए डॉ. परमानंद श्रीवास्तव लिखते हैं "मंगलेश डबराल की कविता में दुःख और थकान के, उदासी और निराशा के अनुभव अनेक रूपों में मौजूद हैं पर मंगलेश उन कवियों में नहीं हैं जो एक तरह के आत्ममोह के रंग में इन अनुभवों को ग्रहण करते हैं। इनके पीछे जो ठोस सामाजिक कारण तर्क काम कर रहे हैं, मंगलेश उनके प्रति भी अधिक सूक्ष्म स्तर पर समीक्षाशील दिखाई देते हैं "। मंगलेश डबराल के अब तक दो काव्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं- पहाड़ पर लालटेन और घर का रास्ता । **असद जैदी:** असद जैदी आठवें दशक के समर्थ कंवियों में से हैं। इनकी कविताओं में कस्बे निम्नमध्यमवर्ग के जीवनानुभवों से लेकर महानगर की कठोर स्थितियों तक के चित्र मिलते हैं। बहनें उनकी प्रसिद्ध कविता हैं जिनमें स्त्रियों की करुण सामाजिक स्थिति के द्वारा उनके जीवनं यथार्थ का सूक्ष्म अवलोकन किया गया है। उनके अब तक दो काव्य संग्रह प्रकाशित हुए हैंः बहनें तथा अन्य कविताएँ और कविता का जीवन । **इब्बार रब्बी**: इब्बार रब्बी की कविताओं का संसार मध्यवर्ग का है परंतु उनकी खास विशेषता है व्यक्तिगत अनुभवों को सार्वजनिक अनुभव के रूप में प्रस्तुत करना। वे किसी रूढ़ और प्रचलित मुहावरे में अपनी कविता को नहीं बाँधते बल्कि अत्यंत सरल और अप्रचलित ढंग से अपनी बात कह जाते हैं। उनके प्रमुख संग्रह हैं: घोषणा पत्र (1981) और लोगबाग (1985) ।

बोध प्रश्न –

साठोत्तरी कविता (अकविता) के क्या है लिखिए

....
....

समकालीन हिंदी कविता में प्रतीकों के प्रयोग की विशेषताएं लिखिए

सारांश 15.6

इस इकाई में आपने समकालीन हिंदी कविता का अध्ययन किया है। इस दौर की शुरुआत हमने नयी कविता के बाद के सातवें दशक की कविता से की है। सातवें दशक की कविता जिसे अकविता सहित कई नाम दिये गये हैं, हमने साठोत्तरी कविता कहा है। सातवें दशक की इस कविता की विशेषता यह है कि यह युवा वर्ग की उस मानसिकता का प्रतिबिंब है जो मोहभंग के कारण बनी थी। इसमें आत्मनिवार्सन, पराजय भावना, सर्वनिषेधवाद, टूटन आदि भावना का प्राबल्य रहा है। सातवें दशक के उत्तरार्द्ध में बदली राजनीतिक स्थितियों से कवियों की मानसिकता में परिवर्तन हुआ और वे सर्वनिषेधवाद और पराजय भावना की मनः स्थिति से उभरे और सामाजिक यथार्थ की यथार्थवादी चित्रण की ओर अग्रसर हुए। आरंभ में अतिक्रांतिकारिता और बड़बोलेपन का आग्रह रहा, परंतु आपात्काल के अनुभव ने कवियों के स्वर को अधिक संयमित और संतुलित बनाया।

समकालीन कविता में हम तीन काव्यधाराओं को देख सकते हैं- साठोत्तरी कविता या जिसे हम अकविता भी कह सकते हैं, प्रगतिशील जनवादी कविता और नवगीत परंपरा। अकविता मूलतः व्यक्तिवादी कविता है जिसमें कवियों ने तत्कालीन स्थितियों से निराश होकर अपनी मानसिक प्रतिक्रियाओं को वाणी दी है। विचारधारा का विरोध, राजनीति का विरोध, व्यर्थथा बोध, स्त्रियों के प्रति कुंठित मनोवृत्ति, जनता को भीड़ समझना और निषेध की प्रवृत्ति-इस कविता की खास पहचान है। सातवें दशक के उत्तरार्द्ध में बदली परिस्थितियों से उपजी नयी काव्य प्रवृत्ति ने अपना संबंध प्रगतिवाद से जोड़ा। इसलिए इस धारा की प्रगतिशील-जनवादी काव्यधारा नाम दिया गया।

आरंभ में इन कवियों ने राजनीतिक परिवर्तन की आकांक्षा को काव्य. का विषय बनाया परंतु बाद में वे जीवन के व्यापक यथार्थ के चित्रण की ओर उन्मुख हुए। इन कवियों ने काव्य में यथार्थवाद पर बल दिया और आम आदमी के दुःख-दर्द, संघर्ष, आकांक्षा और भविष्य को अपनी कविता का विषय बनाया। प्रयोगवाद और नयी कविता के कारण काव्य में गीतों का महत्व कम हो गया था। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप सातवें दशक के आरंभ में "नवगीत" का आंदोलन आरंभ हुआ। यह गीत परंपरा श्रृंगार, प्रेम और भक्ति की बजाय सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति की ओर उन्मुख हुई। आरंभ में इस पर अकविता, की निषेधवादी प्रवृत्ति का भी असर रहा परंतु आठवें दशक में गीत भी प्रगतिशील - जनवादी काव्यधारा की तरह जनोन्मुखी बने।

समकालीन हिंदी कविता में बिंबात्मकता की बजाय सपाटबयानी पर बल दिया गया। यद्यपि इसके कारण कविता में गद्यात्मकता का आग्रह बढ़ा। लेकिन आठवें दशक में कविता ने बिंबात्मकता आदि को भी अपनाना आरंभ किया। भाषा में भी शब्दाडंबर की बजाय यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया गया। यद्यपि इस दौर की कविता अधिकांशतः मुक्तक या छोटी ही है परंतु इस दौर में कुछ महत्वपूर्ण लंबी कविताएँ भी लिखी गई। प्रतीकों के प्रयोग में साठोत्तरी कविता ने अपने कथ्य और दृष्टिकोण के अनुकूल वैसे ही यौनपरक, स्त्री देह आदि से संबंधित प्रतीक चुने जबकि बाद की कविता में प्रतीकों का क्षेत्र अधिक व्यापक हुआ। समकालीन दौर के गीतों ने छंद आदि की दृष्टि से कई नये प्रयोग किये परंतु इसकी मुख्य विशेषता है-लोकगीतों की परंपरा को आत्मसात कर उसका विकास करना। इस दृष्टि से इस दौर में कई महत्वपूर्ण प्रयोग हुए। समकालीन हिंदी कविता को समृद्ध बनाने में प्रगतिवादी, और नयी कविता दौर के कवि भी सक्रिय रहे जिनमें नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर, त्रिलोचन शास्त्री आदि प्रमुख हैं। मुक्तिबोध का साहित्य तो प्रेरक के रूप में मौजूद था ही। नयी कविता दौर के रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह, श्रीकांत वर्मा आदि ने भी इस दौर में महत्वपूर्ण लेखन किया। इनके अतिरिक्त इस दौर के प्रमुख कवि हैं- जगदीश चतुर्वेदी, सौमित्र मोहन, प्रयाग शुक्ल, धूमिल, लीलाधर जगूड़ी, विनोद कुमार शुक्ल, ऋतुराज, अशोक वाजपेयी, आलोक धन्वा, कुमार विकल, अरुण कमल, इब्बार, रब्बी, मंगलेश डबराल, राजेश जोशी, मनमोहन, विष्णु नागर आदि। गीतकारों में शंभूनाथ सिंह, रामदरश मिश्र, वीरेंद्र मिश्र, उमाकांत मालवीय, रवीन्द्र भ्रमर, ठाकुरप्रसाद सिंह, रमेश रंजक, हरीश भादानी, माहेश्वरी तिवारी आदि प्रमुख हैं।

इकाई को पढ़कर आप समकालीन हिंदी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों और शिल्पगत विशेषताओं का उल्लेख कर सकेंगे।

15.7उपयोगी पुस्तकें

डॉ. हरदयालः हिंदी कविता की प्रकृति, सरस्वती प्रेस, नयी दिल्ली, प्रथम संसकरणः 1988 1.

डॉ. परमानंद श्रीवास्तवः समकालीन कविता का यथार्थ, हरियाणा अकादमी, चंडीगढ़, प्रथम संस्करण: 1988।

डॉ. राजकुमार शर्माः कविता की रचना-यात्रा, लोकालोक प्रकाशन साहिबाबाद, गाजियाबाद, प्रथम संस्करणः 1984।

डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारीः समकालीन हिंदी कविता, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

अभ्यासों के उत्तर/बोध प्रश्नों 8 .15

बोध प्रश्न

1) साठोत्तरी हिंदी कविता में नयी कविता की व्यक्तिवादी-आधुनिकतावादी धारा का विकास हुआ।

2) इसके उदय के कारण उस समय की परिस्थितियों में निहित थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के दौरान मध्य वर्ग ने जो इच्छाएँ और स्वप्न संजोए थे वह पूरे नहीं हुए इसने उन्हें मोहभंग की स्थिति में ला खड़ा किया। इस स्थिति से उभरने के लिए सकारात्मक स्थितियाँ भी मौजूद नहीं थीं।